केन्द्रीय पुस्तकालय
वनस्थली विद्यापीठ

श्रेणी संख्या 891·443
पुस्तक संख्या 953(H):-5
अवाप्ति क्रमांक 57891

कहूंगी और आशा रखती हूं कि वह अस्वीकार न क-
रैगी। तुमको किसी प्रकार का क्लेश न होने पावैगा।
तुम हमारे घर में रहो॥"

इन्द्रनाथ के नेत्रों में पानी भर आया। मुंह फेर कर धीर धारण पूर्वक बोले "सरला, तुमारे चित्त में दया अधिक है, तुमारे स्नेह का पारावार नहीं।—मुझे खाने पीने का दुःख नहीं है, तुमारी सखी मेरे लिये बड़ा यत्न करती है, और यदि वह न भी करै तो मेरे खाने के लिए बहुत स्थान है, मेरे ग्राम छोड़ने का कारण कुछ और ही है॥"

सर। — "तो क्या सत्यमेव जाना ही होगा?"

इन्द्र। — "सरला, क्या मेरे चले जाने पर तुम को कुछ
क्लेश होगा?"

सर। — "होगा नहीं? मेरे और कौन है, बताओ?"

इन्द्रनाथ ने फिर मुंह फेर लिया। राजा समरसिंह की कन्याके केवल दोही सुहृद थे, एक अमला और दूसरा वही ब्राह्मण तनय। इन्द्रनाथ ने बड़े कष्ट से अश्रुप्रवाह रोक कर कहा "सरला, तुमारे आन्तरिक कष्ट को देख कर मेरा हृदय विदीर्ण होता है किन्तु क्या करूं अब मैं इस ग्राम में किसी प्रकार रह नहीं सक्ता। प्यारी सरला, अब मुझको जाने दो यदि कार्य्य सिद्ध हुआ और मैं जीता रहा तो

बंग विजेता ।

पहिला परिच्छेद ।

रुद्रपुर आगमन ।

While the ploughman near at hand,
Whistles o'er the furrowed land,
And the milk-maid singeth blithe.
And the mower whets his scythe,
And every shepherd tells his tale
Under the hawthorn in the dale.

Milton. वा उनके

सन् १२०३ ई० में बंग और बिहार देश से को दण्ड
का राज निर्मूल हो गया, उस समय से सन् १५७६ प्रक्षा गया
इस देश में अफ़गानो वा पठानों का अधिकार था ता। अ-
लोग कभी तो दिल्लीश्वर के आधीन हो कर लहर और
कभी समय पाकर स्वाधीन हो जाते । इन लो॰ छोटे २ गांव
प्रणाली किंचित मात्र युरोपीय फ़िउडल । किन्तु वृक्षों की
थी । जब कभी देश में कोई राजा न आकाश भी निर्मल
लोग अपने में से एक को राजश्रि ती। उन्ह फिरते थे । ग्राम

हाथ पकड़े एक दूसरे का मुंह निरखि रहे थे। इस प्रकार परस्पर देखने से मानो हृदय को कुछ ढाँढ़स होता था।

किंचित काल के अनन्तर इन्द्रनाथ ने मारे स्नेह के सरला की आंखें पोंछ आस्वासन दिया और कहा—

"सरला, मै धर्म के गौरव और पाप के दण्ड के कारण यहाँ से जाता हूं। निश्चय है कि भगवान मेरी सहायता करैं। यदि वह अनुकूल है तो फिर किस का डर है! मै कार्य सिद्ध करके अवश्य आकर तुम से मिलूंगा।" सरला ने धीर धारण पूर्वक कहा, "यदि आवोगे तो कब आवोगे?"

इन्द्रनाथ ने कहा "छ महीने मे आऊंगा। आज पूर्णिमा है, आज से सातवीं पूर्णमासी को आकर फिर तेरा दर्शन करूंगा। यदि न आंऊ तो जान लेना कि इन्द्रनाथ अब इस संसार मे नही है।"

"यदि न मिलैं तो जान लेना कि सरला भी इस संसार मे नही है।"

यही बात चीत होते २ द्वार पर कुछ शब्द सुनायी दिया, सरला ने जाना कि चिन्ता आती है और केवाड़ खोलने को गयी। इन्द्रनाथ एकटक उसकी ओर देखते रहे और मन मे कहने लगे—

"हे विधाता तू मेरी सहायता कर कि यह सुन्दर स्त्री मुझ को मिलै और यदि ऐसा न हुआ तो इसी चन्द्रमा की साक्षी देकर कहता हूं कि अपना प्राण दे दूंगा।"

और कभी ऐसा भी होता था कि स्वयं सेनापति अपने ॥-हुबल से राजा बन बैठता था। देशाधिपति किसी एक उ-त्कृष्ट स्थान को अपने स्वाधीन रख कर शेष प्रदेशों को अपने प्रधान २ सेनाध्यक्षों को सौंप देता था, और वे सब लोग अपनी ओर से अपने २ कर्म्मचारियों को सौंप देते थे। इसी प्रकार क्रमशः राज्य प्रणाली में परिवर्तन होने लगा। सेनापति लोग कभी तो बंगाधिपति का आधिपत्य स्वीकार करते और कभी समय पाकर स्वतंत्र हो जाते थे। बंग देश निवासी हिन्दू यद्यपि साहस और युद्ध कौशल में न्यून तो किन्तु बुद्धिमान और व्यवसायी होते हैं अतएव पठान वकारी उन्हीं को बड़े २ कामों में नियुक्त करते थे, उ-लोगों के साथ जमीदारी का प्रबंध करके प्रजा लोगों ग्रह करते थे और उन्हीं लोगों को विशेष संभ्रम करते थे। यहांतक कि बंग देश के पठान राजाओं में भी कोई २ हिन्दू राजा के नाम पाये जाते हैं। ०५ ई० में कंस नाम राजा ने सात वर्ष तक निरा-न में राज किया। पहिले वह एक साधारण जि-न्तु अपने बाहुबल से राजत्व को प्राप्त हुआ। र धर्म्म अवलम्बन किया और उसके वंश क इस देश का राज रहा। इससे सिद्ध भी राज काज की क्षमता थी

दुर्ग के पीछे का भाग ऐसा नहीं था। उधर एक बड़ी भारी अमराई थी जिस के विभिन्न दूर तक कुछ दिखलाई नहीं देता था। ज्यों २ रात बढने लगी जुगनू की झुंड वृक्षों पर छा गई; नीचे, ऊपर, इधर उधर, जौंगनज्योति व्यतिरिक्त और कुछ दिखाई नहीं देता था। उस आम्र-कानन के मध्य में एक बावली भी बनी थी और उसके चारो ओर अनेक प्रकार के जीव जन्तु स्वेच्छा पूर्वक विहार कर रहे थे।

बाहर से देखने से दुर्ग के प्रासाद अन्धकारमय दीखते थे, केवल एक झरोखे से कुछ प्रकाश दृष्टि गोचर होता था। उस झरोखे में एक अल्प वयस्का स्त्री बैठी हथेली पर मस्तक टेक कर कुछ सोच रही थी।

वह अबला गगनमण्डलस्थित एक तारे की ओर निहार रही थी और उसके मस्तक में भी एक हीरे का नग तारे की भाँति चमक रहा था।

वह क्या चिन्ता कर रहीथी कौन कह सक्ता है ? क्या प्रेम चिन्ता में निमग्न थी ? किन्तु प्रेम चिन्ता में तो वदन मलीन और नम्र होजाता है,--ऐसा गर्व परिपूर्ण नहीं होता।

उस की अवस्था अनुमान सत्रह वर्ष की होगी,—यौवन प्रभाव से नख सिख अनुपम सौन्दर्य धारण किये थी;

इस देश के जमीदार, जागीरदार विशेषतः हिन्दू ही थे, और उन के पास सेना भी रहती थी बरन प्रतिद्वंदी योद्धा लोग उन को अपनी सेनाश्रेणी में परिगणित करने की सर्वदा चेष्टा करते थे ।

संपूर्ण प्रजा और कृषक गण जमीदारों के अधीन रहते थे क्योंकि जब जमीदार निष्कपट और कोमलता के साथ अपनी प्रजा के संग बर्ताव करता है तो प्रजा स्वभावतः उस की वशीभूत हो जाती है । कर जमीदार लोग सर्वदा आपुस में लड़ भिड़ा करते हैं और अपनी और अपने देश दोनों की हानि करते हैं । फलतः उस समय जो जमीदार बुद्धिमान थे वे छल, बल, कल इत्यादि से दूसरों को दबा कर अपना अधिकार बढ़ा लेते । जब कभी प्रजा गण में कोई विवाद अथवा गोलयोग होता तो वे स्वयं अथवा उनके कर्म्मचारी उस को शांति कर देते, चोर डाकुयों को दण्ड देते और ग्राम वासियों की रक्षा करते थे और प्रजा गण भी उन को अपनी माता पिता के तुल्य समझते ोता। अर्थात् जमीदार ही प्रजा गण के हर्त्ता और क लहर और वही उनके रक्षक और राजा थे । , छोटे २ गांव

सन् १५७३ ई० में पठान राजा और किन्तु इधों की सिंहासन पर बैठा । उसी के दूसरे । आकाश भी निर्मल देश पर आक्रमण करने की इच्छा की। उन्हें फिरते थे । ग्राम

"फिर तू इस आश्रम में कैसे आयी ?"—कमला ने उत्तर दिया "जब मैं उस घोरतर पीड़ा को सहन कर रही थी लोगों ने समझाया कि अब मैं न बचूंगी। पिता चन्द्र-शेखर तीर्थपर्यटन करते२ उसी समय आन पहुंचे। उनके शरीर में दया बहुत थी और वे मेरा यत्न करने लगे। उस स्थान पर मेरे जाति कुटुम्ब वाले कोई नहीं थे। निराश्रय विधवा को पिता ने आश्रय दान कर के अपनी नौका पर चढा लिया। तब भी मैं उसी पीड़ा में अचेत थी और सब लोगों ने समझा कि मेरा अन्तकाल उसी नौका में होगा। कई दिन से जल में चलते २ नदी के स्वास्थ वायु से और पिता के यत्न से मैं क्रमशः आरोग्य होने लगी, और शरीर में प्राण आया,—किन्तु पूर्व कथा का कुछ भी स्मरण नहीं हुआ,—मैं कौन हूं, किस की बेटी हूं, किस की स्त्री हूं, इस का कुछ भी ज्ञान नहीं रहा। अच्छी भांति आरोग्य लाभ करने के कुछ दिन पीछे मेरी नौका इसी आश्रम के घाट पर आ लगी,—उस दिन से मैं पिताही के घरमें हूं।"

सुनते २ सरला की आंखों में जल भर आया। धीरे २ कमला के समीप जा कर और उस का दोनों हाथ पकड़ कर बोली 'बहिना! अब मैं अपने लिये दुःख न करूंगी, तुमारा इस संसार में कुछ नहीं है, कोई भी नहीं है इसका हम को दुःख होता है।" सरला का सरल स्वभाव पराये का दुःख देख कर द्रवी भूत होता था।

गर पराजित करके मनाइम खां को अधिकारी बना दिल्ली को प्रस्थान किया। मनाइम खां केवल नाम मात्र सेनापति था ; वस्तुतः क्षत्रिय वंशावतंस राजा टोडरमल ने वंग देश को पठानों से जय किया। उन्हों ने बारम्बार दाऊद खां को परास्त कर के अन्त को कटक के महा युद्ध में पूर्ण जय लाभ की। उसी से भय भीत हो कर दाऊद खां ने सन् १५७४ ई० में वंग और बिहार देश मोगलों को समर्पणकर दिया केवल उड़िस्सा अपने अधिकार में रख छोड़ा। इस के अनन्तर टोडरमल फिर दिल्ली को पलट गये और दाऊद खां ने समय पाकर पुनर्वार बंग देश पर अधिकार कर लिया। सन् १५७६ ई० में अकबर खां ने हुसेन कुलीखां को सेना पति नियत किया किन्तु वह भी केवल नाम मात्र को सेनाध्यक्ष था मुख्य अधिकारी राजा टोडरमल थे। उन्हों ने दूसरी बार बंग देश में आकर राजमहल में दाऊद खां को पराजित किया। इसी युद्ध में दाऊद खां का सत्यानाश ... और पठानों के राज्य का शेष हुआ। दिल्लीश्वर ने ... ली खां को वंग, बिहार और उड़िस्सा का अ... न किया और राजा टोडरमल फिर दिल्लीको ... ली खां और उसके पश्चात चार वर्ष प... ग देश में राज किया। सन् १५८० ई० ...ठा और मुजफ्फर खां मारा गया। अकबर

"जब मेरा सुरेन्द्रनाथ बारह वर्ष का था, मैं उस को लेकर राजा समर सिंह से मिलने को गया था। आप जानते हैं कि राजा मुझ को अपने छोटे भाई के समान जानते और मानते थे; हम से बड़े प्रेम से मिलते थे। हम दोनों जन परस्पर बातें करते थे और सुरेन्द्रनाथ और राजा की कन्या दोनों उसी जगह खेलते थे। खेलते २ उस लड़की ने एक फूल की माला ले कर सुरेन्द्रनाथ के गले में पहिना दिया। राजा कन्या को प्राण से अधिक मानते थे,—लड़की की यह करतूत देख कर बहुत आनन्दित हुए और आंखों में जल भर आया। मुझ से कहा, 'नगेन्द्रनाथ! इस कन्या की बात चीत अनेक राजपुत्रों से लगी थी, किन्तु कन्या ने अपनी प्रसन्नता से जिसके गले में जयमाल दिया उसी से मैं उस का विवाह करूंगा। अब इस कन्या का विवाह तुम्हारे ही पुत्र से होगा।' मैं आनन्दसागर में मग्न हो गया। बङ्गचूड़ामणि राजा समरसिंह अपनी एक मात्र कन्या को एक हम से अकिंचन जमीदार के पुत्र को देंगे ऐसा मुझ को स्वप्न में भी सम्भव नहीं था। उस दिन मुझ से उन से इस विषय में वाक्दान हो गया, किन्तु मैंने उस का प्रतिपालन नहीं किया।"

महाश्वेता घूंघट के भीतर से बड़े क्रोध से देख रही थी और शरीर के उस के रोवें खड़े थे। वह उस दिन के-

शाह भड़ा वुद्धिमान्ली राजा था उस ने देखा कि जिस बीर द्वारा दो बेर बंगदेश पराजित हुआ है उसके अतिरिक्त दूसरा कोई इस शत्रुपूर्ण देश को दिल्ली के आधीन नहीं रख सकता अतएव टोडरमल सेनापति व शासन कर्त्ता नियुक्त हो कर बंग देश को भेजे गये। इस राजपुत्र ने तीसरी बार इस देश को जीत कर दो वर्ष तक किस प्रकार प्रबंध किया वही चरित्र इस आख्यायिका में वर्णित होगा। इस आख्यायिका में १५८० ई० की कथा लिखी जायगी, अतएव उस समय हिन्दू व मुसलमान, जमींदार व रय्यत और पठान और मोगलों के बीच में क्या सम्बध था उस का संक्षेप वर्णन होगा, पाठक गण धीर धारण पूर्वक सुनैं॥

एक दिन प्रातः काल एक ब्रह्मचारी नदिया प्रांत में इच्छामती नदी के तीर पर रुद्रपुर नाम एक क्षुद्र ग्राम की ओर चला जाता था, मार्ग में चारों ओर केवल शस्य संपन्न खेतों के व्यतिरिक्त और कुछ दृष्टि गोचर नहीं होता था। प्रात समीरण के चलने से धान के खेत समुद्र की लहर की शोभा दिखाते थे। बहुत दूर पर कहीं २ दो एक छोटे २ गांव दिखायी देते थे, बस्ती तो दीखती न थी किन्तु वृक्षों की सघनता से ग्राम का बोध होता था। आकाश भी निर्मल था और पश्चि

BVCL 05789

फिरते थे। ग्राम

देखता था उधर सूना जान पड़ता था—पृथ्वी मरुस्थल की भांति दीख पड़ती थी ; पिता नहीं, माता नहीं, बंधु नहीं, बान्धव नहीं, जाति कुटुम्ब नहीं। सहधर्मिणी काल ग्रास हुई,—एक मात्र कन्या जल में गयी—इस प्रकार पुरानी बातों की स्मृति मेरे हृदय को व्यथित करने लगी—नदी के तीर पर बैठ कर रोने लगा।

"वह दुःख रोने से दूर नहीं हुआ, प्रातः काल से सन्ध्या तक रोता रहा, अन्त को फिर रहा न गया और प्राण त्याग का दृढ़ संकल्प किया। संसार में जिसके आगे पीछे कोई न हो, जिस के मर जाने पर कोई रोने वाला न हो उस के मरने में क्या बाधा हो सक्ती है ?

"जल में डूबने का यत्न कर रहा था इतने में किसी ने पीछे से मेरे कंधे पर हाथ रख दिया। उलट कर देखा तो मेरे प्राचीन गुरु खड़े थे। अति गम्भीर स्वर से बोले।

'अभी तेरी माया नहीं छूटी ? अभी तुझ को ज्ञान नहीं हुआ, चन्द्रशेखर, अज्ञान के ऐसा काम मत करो, आवो मेरे सँग चलो।'

"मै उन के सँग २ इसी महेश्वर के मन्दिर में आया और फिर योग साधन करने लगा। गुरु के मरने के पीछे मै महन्त नियत हुआ।"

इसी प्रकार बात चीत होती रही कि एक बालक ने

निवासी भी सिवान में आनन्द पूर्वक गाते चले जाते थे। ब्रह्मचारी ने चलते २ एक किसान से पूछा, "रुद्रपुर अब कितनी दूर है?" कृषक ने उत्तर दिया, "अब दूर नहीं है, धाप भर और होगा॥"

उस खेत में से एक भद्र पुरुष निकल आया और ब्रह्मचारी से पूछने लगा, "महाराज! आप रुद्रपुर जायंगे? चलिये मै भी वहीं चलता हूं; और दोनों जन संग चले। आप का नाम क्या है? आप कहां से आते हैं?" यह कह कर उस ने ब्राह्मण को प्रणाम किया। ब्राह्मण ने उत्तर दिया, "मेरा नाम शिखंडिवाहन है, मै इच्छामती नदी तीरस्थ महेश्वर के मंदिर से आता हूं, तुमारा क्या नाम है?"

"मेरा नाम नवीनदास है, इस स्थान पर मेरी कुछ भूमि है इसी हेतु मै यहां आया था॥"

शिख—"इस वर्ष खेती तो अच्छी है न?"

नवी—मुझ को बीस वर्ष देखते हुआ किन्तु इस वर्ष कीसी खेती कभी देखी नहीं, ईश्वर की अनुग्रह का पारावार नहीं। तब"—

शिख—"तब क्या?"

नवी—"न जाने विधना क्या करने वाला है। मोगल पठानों का इस प्रकार घोर युद्ध हो रहा है, न जाने क्या होनहार है? जिस राह से एक बार सेना निकल जाती है वह स्थान मरुस्थल के समान हो जाता है॥"

देखने लगी। पानी की कलकलाहट उस को सुनाई नहीं देती थी, वृक्षों की हरहराहट भी उस को सुनायी नहीं पड़ती थी, वह लहरें और फेन राशि भी उसको देख नहीं पड़तीं थीं, उस घोर मेघ छटाको भी वह नहीँ देखती थी, केवल चतुर्वेष्ठित दुर्ग की ओर आँख डटी थी और अनेक प्रकार की चिन्ता मन में उठती थी। उस चिन्ता का अन्त भी नहीं होता था। जैसे आकाश अनंत है, जैसा नदी का स्त्रोत अवारित है उसी प्रकार उस की चिन्ता भी अनन्त और अवारित थी। चिन्ता करते २ उस को चारो दिशा शून्य दिखाई देने लगी, उस का स्वाभाविक धीर हृदय द्रवी भूत होने लगा,—देखते २ जब वह दुर्ग अगोचर हो गया, और केवल निविड़ अंधकार दिखायी देने लगा, अपने दोनो हाथों से अपना मुंह ढांप कर रोने लगी। जब तक बहुत शोक, बहुत आघात न हो उस का सा कठिन हृदय विदीर्ण नहीँ होसक्ता;—इतने काल तक और इतना रोई कि आंसू उंगलियों की संधि से निकल कर दोनों हाथों पर से हो कर छाती पर्यंन्त बह चला ।

हा संसार! हा असार जगत! तेरे में रह कर विमला की सी कितनी उन्नत चरित्र, धर्म परायण, अभागिन स्त्रियां अकेली बैठी रात दिन रोया करती हैं, कोई देखता नहीं, कोई सुनता नही, कोई जानता नही; वह

थोड़े काल के उपरांत नवीनदास ने फिर कहा "हमारे जमींदार के पुत्र को न जाने क्या हो गया है, आपने कुछ सुना है?"

मिश्र—"न; क्या हुआ है?"

नवी—"जैसे उन्मत्त हो गया है; और इस का कारण कुछ ज्ञान नहीं पड़ता, पिता ने उस के आरोग्य करने के लिये अनेक यत्न किया किन्तु कोई फलदायक नहीं हुआ। आप भी तो लिखे पढ़े हैं, कुछ विचार कर सक्ते है?"

मिश्र—शास्त्र में उन्मत्तता के अनेक कारण लिखे हैं—बंधु वियोग, रमणी प्रेम इत्यादि॥

नवी—"नहीं, यह नहीं हो सकता; वह तो अनेक प्रकार की अनमिल बातें करता है कि जिस का कुछ ठिकाना नहीं है, ऐसा ज्ञान पड़ता है कि बहुत पढ़ने से पागल हो गया है॥"

मिश्र—"क्या कहता है बतला सक्ते हो?"

नवी—"कभी तो कहता है कि वैर निर्यातन परम धर्म्म है, कभी कहता है कि स्त्री रत्न परम रत्न है,—कौन है, इन्द्रनाथ शर्म्मा? प्रणाम॥"

यह कह कर नवीनदास एक मलिनवसनधारी युवा को पुकार उठा जो मार्ग के एक पार्श्व में बैठा था। वह पुरुष कुछ चिन्ता कर रहा था, अचानक अपना नाम सुन

पहुंच वह घोड़े से नीचे कूद पड़ा; घोड़ा इतने वेग से दौड़ा आया था कि पीठ पर से सवार के उतरते ही पृथ्वी पर गिर पड़ा और दो चार बेर हाथ पैर फेंक कर मर गया।

घोड़े की दशा देखने का किसी को अवकाश नहीं था। चर ने प्रणाम कर के डरते २ कहा "महाराज! हमारे दल के किसी विद्रोही सिपाही ने शत्रुदल को यह सम्वाद दिया था कि आज महाराज दुर्ग से निकल कर शत्रु शिविर देखने को आवेंगे। यह सम्वाद पा कर चार अश्वारोही आप के प्राण नाश की कामना से जंगल में छिपे थे और आध कोस के दूरी पर दो सहस्र सवार प्रतीक्षा कर रहे हैं,—वही दोनों हजार सवार दौड़े चले आते हैं।" चर इतना कह कर थकावट के मारे पृथ्वी पर बैठ गया।

राजा के साथी डरके मारे ज्ञान शून्य हो गये। राजा ने आज्ञा दिया,—"तुम लोग भी तो सवार हो, दुर्ग की ओर भागो, जब तक शत्रु पहुंचै २ हम लोग भीतर जाते रहेंगे।"

सब दुर्ग की ओर दौड़े।

श्रीमान इन्द्रनाथ ने दूर से धूल का उड़ना देख तुरन्त तुरही बजाया, उस के पंचशत सवार उसी आम्र कानन के एक कोने में किसी कारण से छिपे थे, तुरही का शब्द

कर फिर के देखने लगा और उठ कर साथ हो लिया। नवीनदास ने फिर कहा—

"यही मेरा पगला ठाकुर है। क्यों ठाकुर, इतने दिन तुम से भेंट नहीं हुई इसका क्या कारण है? गांव छोड़ कर कहां चले गये थे? और यहां पृथ्वी पर बैठे क्या करते थे? इन्द्रनाथ ने कहा "रात भर चलते२ थक गया हूं।" नवीन ने फिर उस्से कुछ नही पूछा और वही पुरानी बात कहने लगा॥

"मैंने सुना है कि हमारे जमीदार का बेटा कभी कहता है कि वैर लेना परम धर्म्म है और कभी कहता है कि स्त्री रत्न परम रत्न है; कभी कहता है कि बंधु हत्या के समान दूसरा कोई पाप नहीं है और कभी कहता है कि प्रजा के दुःख देखने से मर जाना अच्छा है॥"

शिखंडिवाहन कुछ काल सोच कर बोले, "मुझ को ज्ञान पड़ता है कि उस ने कोई बड़ा पाप किया है; महापाप से भी चित्त उन्मत्त हो जाता है॥"

नवी—"मुझ को तो विश्वास नहीं होता कि वह कोई पाप करैगा॥"

यह कह कर नवीनदास किंचित् काल तक स्थिर हो कर मानो पूर्व कथा का स्मरण करने लगा और फिर बोला, "उस के अन्तः करण में इतनी दया है कि उस से पाप होने

स्वीकार नहीं किया, बरन उड़िस्सा देश के राजा के शरण में चला गया। राजा टोडरमल ने थोड़े दिन में दिल्ली के महाराज को लिख भेजा कि सम्पूर्ण बिहार देश जय हो गया।

इन्द्रनाथ इन सब युद्धों में नहीं थे। सरला के विषय में जो कुछ सुना था इस से उन को विलम्ब करने का समय नहीं मिला। जिस दिन मुँगेर से शत्रु समूह भागा उसी दिन उन्हों ने राजा टोडरमल के पास जा कर विदा चाही। राजा को कुछ विस्मय हुआ बोले,—

"यह क्या इन्द्रनाथ? क्या माजरा है?"

इन्द्र।—"महाराज! आप ने प्रतिज्ञा की थी कि युद्ध समाप्त होने पर मेरे पैतृक आसन को अपने चरण रज से पवित्र करेंगे।

राजा।—"जो मैंने कहा है उस को अवश्य करूंगा किन्तु तुम इतना व्याकुल क्यों होते हो?"

इन्द्र।—"महाराज! यदि आज्ञा हो तो मैं आगे चलूं?"

राजा।—"अभी हम लोगों की लड़ाई तमाम नहीं हुई है, मैं चाहता था कि तुम को साथ ले कर तुमारे घर चलता, किन्तु यदि तुम को बड़ी आवश्यकता है तो आगे जा सक्ते हो।"

इन्द्र।—"मेरी एक और प्रार्थना है।"

की सम्भवना नहीं । आज प्रायः बारह वर्ष हुये मैं एक बेर इच्छापुर गया था, देखा कि दो चार "आसामी बाकी मालगुजारी" के लिये बैठाये थे, उस समय हमारे जमीदार पुत्र केवल पाँच छ वर्ष के थे । उन्हों ने चोरी से द्वार खोल दिया और आसामियों को दो २ रुपया दे कर निकाल दिया । उन लोगों ने आनन्द पूर्वक मालगुजारी भर दिया और चले गये ॥"

इन्द्रनाथ ने घबड़ा कर पूछा, "तब फिर ?"

"तब फिर प्रजा ने मालगुजारी क्यों दिया, और रुपया कहाँ पाया कुछ किसी को जान नहीं पड़ा । अंत को जब वे सब अपने घर चले गये पुत्र ने डरते २ पिता से सारा वृत्तांत कह दिया । पिता नगेन्द्रनाथ ने उस को गोद में ले लिया और चूमने लगे । मैं द्वार पर खड़ा था, मेरी आँखों से आंसू बहने लगे ॥"

इसी प्रकार बात चीत करते २ तीनों जन रुद्रपुर पहुंच गये । नाना प्रकार के बड़े २ वृक्षों से गाँव घिरा था और उन के पत्तों के बीच से सूर्य की किरण नीचे गिरे हुये सूखे पत्तों की ढेर और मार्ग को शोभायमान कर रही थी । डालियों पर अनेक प्रकार के पक्षी बैठे चहचहा रहे थे । कोकिल, श्यामा, और पपीहा इत्यादि के मनोहर कलरव से चित्त को आनन्द प्राप्त होता था । मोगल पठान

तक आये नहीं, इस का क्या कारण है? क्या वे इस अभागिन को भूल गये? रे दैव, तेरे मन की कौन जाने? तेरे जो जी में आवे कर। इन्द्रनाथ! मै तो बिदा होती हूं तुम यदि मुझ को भूल गये, मै तुम को नहीं भूल सकी, मै मरते समय भी तुमारा ही नाम ले कर मरूंगी,—तुमारी ही बातों का स्मरण करते २ मरूंगी तुमारी ही मधुर मूर्ति का ध्यान करके मरूंगी। और तुम यदि जीते रहना तो इस अभागिन का जो तुमारे ही लिये मरती है एक बेर ध्यान अवश्य करना,—जिस भिखारिणी ने विपद मे दुःख में दरिद्रावस्था में एक क्षण भी तुमारा नाम भुलाया नहीं, एक बेर उस का स्मरण अवश्य करना। मेरी और कोई भिक्षा नहीं है,—परमेश्वर तुम को धन देगा, मान देगा, क्षमता देगा, लक्ष्मी के तुल्य स्त्री देगा; किन्तु इन्द्रनाथ! सरला के ऐसा तुमारे साथ कोई अनुराग नहीं करेगा। हे दुःखिनी के धन! हे भिखारिणी के रत्न! हे जीवन के वायु! हे नयनों की मणि! परमेश्वर तुम को सुख से रक्खे, मेरी यही प्रार्थना है।" सरला का कलेजा फटने लगा और आंखों से आंसू की धारा बहने लगी।

अब भी घनघोर वृष्टि हो रही थी। इतने में सरला को एक झनझनाहट का शब्द सुनाई दिया। उस ने घर से बाहर निकल कर चारों ओर देखा किन्तु उस निविड़ अ-

की जय विजय से उन को कुछ चिन्ता हानि लाभ की न थी। बीच२ में ग्राम सरोवर में कमल और कोईं फूल रही थी, और स्थान २ पर वृक्षों के नीचे दो चार कुटी भी बनी थीं। कहीं २ दो एक ग्रामीण गाते हुए चले जाते थे और उन की स्त्रीगण कमर पर मिट्टी का घड़ा लिये हिलते डोलते जल लेने को जाती थीं॥

शिखण्डिवाहन ने पूछा, "एक महाश्वेता नाम ब्राह्मणी इस ग्राम में रहती है, उस का घर कहां है?"

इन्द्रनाथ चौंक उठा और फिर बोला "चलिये मैं उस का घर बता दूं" और कुछ दूर ले जाकर दूर से महाश्वेता का घर दिखा दिया। शिखण्डिवाहन महाश्वेता के घर ठहरे और इन्द्रनाथ अपने प्राचीन सरल स्वभाव बन्धु नवीनदास के घर चले गये॥

सदा यही कहा करते थे कि मै चन्द्रशेखर नाम एक यो॰ गी की कन्या हूं ।"

चन्द्रशेखर का वदन मंडल आनन्द की आंसू से तर हो गया। बोले, "परमेश्वर ने क्या मेरे बुढापे में मेरे ऊपर इतना अनुग्रह किया और मेरी प्राणतुल्य कन्या को मुझ को फिर दिया । यह कह कर कमला को फिर छाती से लगा लिया। फिर बोले, 'कमला एक बात पूछना है, तेरे शरीर में किसी स्थान पर कोई चिन्ह है ?"

कमला पिता को एक अकेली कोठरी में ले गई और अपना अंचल उठाकर दिखाया तो स्तनो के बीच में एक शिव की आकृति बनी थी।

चन्द्रशेखरने मारे आनन्द के विह्वल हो कर रो दिया। कमला को छाती से लगाकर बार २ मुख चुम्बन करने लगी और बोले, "आज कैसे आनन्द का दिन है, यदि मेरी गृहिणी जीती होती तो अपनी प्यारी दुहिता को गले लगा कर हृदय को शीतल करती ।"

फिर चन्द्रशेखर कमला से सब बातें पूछने लगे। इतने दिन तक कहां रही, और आज यह सुखमय संवाद कहां से पाया इत्यादि नाना विषय पूछने लगे। कमला ने कहा पिता श्रवण कीजिये—

दूसरा परिच्छेद ।

प्रत धारिणी ॥

She stole along, she nothing spoke,
The sighs she heaved were soft and low.
And naught was green upon the oak,
But moss and rarest mistletoe ;
She kneels beneath the huge oak tree.
And in silence prayeth she.

Coleridge.

रात एक पहर गयी है । आज शुक्लपक्ष की चतुर्दशी है; किन्तु बादल से आकाश छिपा है; गांव, ग्राम, घर, सब अन्धकार में छिपा है । केवल जुगुनू की चमक से वृक्ष लतादि अन्धेरे में कहीं२ दृष्टि गोचर होते हैं । इच्छा मती नदी कई धारा हो कर लहराती हुई बह रही है और वायु वेग से लहरें और भी ऊंची चलती हैं । निविड़ कुञ्ज वन के भीतर से पवन सन सन चल रहा है । वायु और लहरों के व्यतिरिक्त और कोई शब्द सुनाई नहीं देता । सारी पृथ्वी सो रही है ।

इस प्रकार सघन अन्धकार में एक शुभ्र वसन धारिणी अकेली नदी में स्नान कर रही है ।

करती थी, किन्तु संसार मे जिस के आगे पीछे कोई नहीं है उस का रोना कौन सुनता है, उसके दुःख करने से क्या लाभ ? तात ! आप का तो स्मरण होता नहीं था किन्तु मन मे यह आता था कि जिस समय अगाध सागर मे गिरी थी यदि उसी क्षण मर गयी होती तो अच्छा था ।

"केवल इतनही नही, हे पिता, आप जानते हैं कि मै जन्म से कुछ अन्य मन और चिन्ता शील हूं । इस के लिए हरीदास मेरा कितना तिरस्कार करते थे कह नही सकी । दिन रात अविश्राम घर का सम्पूर्ण काम किया करती थी तिस पर भी यदि कधी कोई काम बिगड़ जाता तो हरीदास मुझे गाली देते थे और झाड़ से मारते थे । मै चुप चाप सहन करती थी और रोती थी ।

"ज्यों ज्यों उस बालक का बयस अधिक होता जाता था उतनेही हरीदास निठुर होते जाते थे वरन और भी अनेक दोष उन मे उत्पन्न होने लगे । यौवन काल मे जो दोष मनुष्य के शरीर में होता है, स्त्री के मर जाने पर हरीदास भी उस के दोषी हुए—क्रमशः उन के घर में अनेक प्रकार के लोग आनेजाने लगे ।

"अन्त मे मै उस घर से भागने की चेष्टा करने लगी—किन्तु एक विशेष कारण से भागी नही । मुझ को जान पड़ा कि हरीदास की निठुरता कुछ मेरी ओर से कम होने

यह स्त्री व्रत धारिणी है। अन्धकार में उस के उज्ज्वल वसन के व्यतिरिक्त और कुछ दीख नहीं पड़ता। स्नानान्तर वह वन पुष्प तोड़ने लगी और एक निकट वर्ती प्राचीन वट वृक्ष के तले एक शिव मन्दिर में जा कर द्वार बन्द कर बैठी।

उस मन्दिर के भीतर एक छोटी सी शिव की मूर्ति और एक दीप के व्यतिरिक्त और कुछ नहीं था। उसी ज्योति द्वारा उस स्त्री का स्वेत वसन दिखायी देता था। जवानी उस की ढल गयी थी और अवस्था भी चालिस वर्ष की होगी, वरन शरीर के देखने से तो पचास वर्ष का धोखा होता था। यदि स्वेत वसन न पहिने होती तो अन्धेरे में घाट पर स्नान करती समय उस को देखने से यही जान पड़ता कि किसी किसान की स्त्री है। किन्तु मन्दिर में उंजियाले में उस का मुख देख कर वह सन्देह जाता रहा। शरीर उस का शीर्ण और दीर्घायत तो था किन्तु कोमल भी था। ललाट ऊंचा और प्रशस्थ था परन्तु चिन्ता के चिन्ह स्पष्ट दिखायी देते थे। स्वेत कृष्ण मिश्रित केश कपोलों पर से हो कर छाती पर्यन्त लटक रहे थे। नयनो की उज्वलता युवतियों को भी लज्जित करती थी। अन्तर्गत चिन्ताग्नि मानो इन्हीं नेत्रों द्वारा फूट निकली थी। ओठ बड़े चिक्कन और दृढ़प्रतिज्ञा प्रका-

कमला ने लज्जित हो कर मुंह नीचे कर लिया, किंतु उसी क्षण फिर सम्हल कर बोली, "मन्त को मुंगेर नगर मे एक ब्राह्मण के पुत्र ने मुझ से विवाह कर लिया। पिता, मै विधवा नही हूं, आप का जमाई अभी जीता है।"

यह कह कर जहां उपेन्द्रनाथ बैठे थे, उसी ओर दृष्टि निक्षेप किया,—किन्तु उपेन्द्रनाथ वहां नही थे।

इतने मे रोने का शब्द सुनायी दिया। सब लोग उसी की ओर देखने लगे—उपेन्द्रनाथ नगेन्द्रनाथ का पैर पकड़ कर रो रहा था और सुरेन्द्रनाथ भी किनारे खड़े दोनों हाथ से मुंह ढापे रो रहे थे। सब लोग देख कर बड़े विस्मित हुए और उत्सुक भी हुए।

उपेन्द्र नाविक ने कहा, "हे पिता, क्षमा कीजिये, मैने आप को बुढ़ापे मे जो दुःख दिया है उस को स्मरण कर के कलेजा फटता है। आप के बड़े बेटे को व्याघ्र ने नही खाया, वह अभागा अभी तक जीता है। अब मै आप को छोड़ कर कहीं न जाऊंगा।"

वृद्ध नगेन्द्रनाथ मारे आनन्द के फूले नही समाते थे और आंसू बराबर बहा चला जाता था, बोले, 'उपेन्द्रनाथ! तुमारा कुछ दोष नही, यह दोष मेरा ही है, मै ही पापात्मा हूं, मैही ने तुम को घर से बाहर निकाल दिया, किन्तु परमेश्वर जानता है, मै उस पाप का

थक थे। उन का शरीर गम्भीर और उन्नत था और वैधव्य सूचक स्वेत वसन धारण करने से और भी गम्भीरता आ गयी थी। स्त्री ने सब फूल शिव मूर्ति के सन्मुख रख दिया और दण्डवत किया।

कुछ काल तक उपासना करते बीत गया। वायु क्रमशः प्रचण्ड होने लगा और वट वृक्ष के भीतर से बड़ी हर हराट का शब्द सुनाई देता था। केवाड़ भी भड़ाभड़ लड़ते थे और दीपक की टेम झुलझुलाती थी, किन्तु रमणी के स्थिर भाव में कुछ विभेद नहीं हुआ। आँख मूंद कर एकाग्र चित्त अनुमान एक पहर पर्यन्त ध्यान करती रही परन्तु उस को क्या कामना थी और किस मनोर्थ के लिये शिव की आराधना करती थी इस की जिज्ञासा करने की हम को अवश्यकता नहीं है।

उपासना समाप्त कर के स्त्री ने दीपक लेकर बाहर जाने की इच्छा से केवाड़ खोला। केवाड़ खुलतही "चिराग गुल" हो गया। उस निविड़ अन्धकार में रात्रि समय उस एकाकिनी का मन किंचित मात्र भी कातर नहो हुआ औरधीरे २ रुद्रपुर के मार्ग से अपनी कुटी की ओर चली। मार्ग बहुत संकीर्ण था; दोनो ओर घनघोर जंगल और किनारे २ सूखे २ पत्तों की ढेर से अन्धकार और भी सघन बोध होता था। उन्ही वृक्षों के तले जहां

से मै तुमारे ऐसा भाई नही पा सक्ता, तुमारी बीरता, तुमारा साहस, और युद्ध कौशल सारे बङ्ग देश मे फैल रहा है, दरिद्र के प्रति दया, प्रजा के साथ प्रीत करना इत्यादि गुण तुमारे भूषण हैं । आज मै नगेन्द्रनाथ का जेठा बेटा हुआ हूं किन्तु जब मै दरिद्र नाविक था उस समय भी तुम ने मेरे साथ भाई के ऐसा बर्ताव किया था और मेरे साथ शयन किया था । जिस को क्षमता और धन होता है, ऐसे सब लोग यदि तुमारे से होते तो यह संसार स्वर्ग के तुल्य होता ।”

चौंतीसवाँ परिच्छेद ।

बिचार ।

Behold where stands
The Usurper's cursed head.

Shakespeare.

आज राजा टोडरमल्ल के इच्छापुर मे विराजमान होने से पुरवासी गण मारे आनन्द के प्रायः उन्मत्त से हो रहे हैं ।

एक बड़े भारी प्रशस्थ क्षेत्र मे सभा मंडप रचा गया जिस की शोभा वर्णन करना बड़ा कठिन काम है । ऊपर

तहाँ एक २ झोपड़ी बनी थीं किन्तु उस ... के निवासीगण सब सो रहे थे। किसी जीव जन्तु का शब्द तक नहीं सुनायी देता था। इस प्रकार महाश्वेता चलते २ अन्त को एक झोपड़ी के द्वार पर खड़ी हो कर केवाड़ खट खटाने लगी। द्वार खुल गया और जब महाश्वेता भीतर चली गयी दीपक हाथ में लिये एक नवीन बयस्का स्त्री ने आकर फिर केवाड़ बन्द कर दिया॥

माहश्वेता मार्ग में चिंता करती आती थी; इस नव यौवना को देखकर वह चिंता अनायासही जातीरही और पवित्र स्नेह भाव मुख मण्डल में दीप्तमान हुआ और बोली, "सरला इतनी रात गयी और तूं अभी तक जागती है? जाव बेटी सोवो।" यह कह कर प्रेम पूर्वक सरला का मुंह चूमने लगीं। सरला ने कहा, "माता, मुझ को कुछ जान नहीं पड़ा कि रात अधिक गयी; ब्रह्मचारी महाराज महाभारत का पाठ करते थे मै बैठी सुन रही थी। मुझे जान पड़ता है कि महाभारत का पाठ सुनने से मै सारी रात जाग सक्ती हूं।"

"नहीं २ सारी रात जागने से पीड़ा होगी।" यह कह कर माता ने सरला को गोद में ले लिया और फिर चूमने लगी। सरला जब दीप ले कर सोने को जाती थी माता एकटक लोचन से देर तक उस की ओर देखती रही और अपने मन में कहने लगी "मेरी प्यारी! क्या अभागिनी

चित्र २ कौतुक दिखा कर, और पहलवान लोग अद्भुत मल्लयुद्ध दिखला कर धन्वीलोग तीरनिक्षेप द्वारा संक्षेपतः जो जिस गुण में प्रवीण था सबों ने आ कर अपना कौशल दिखा कर राजा और अपर सभास्थित लोगों को परितृप्त किया।

अन्त को कवियों की परीक्षा आरम्भ हुई। बंग देश में जितने लोग कविता के पण्डित थे अपना पांडित्य दिखाने के लिये राजा के पास आन उपस्थित हुए। एक एक कर के सबों ने स्वरचित कविता पाठ किया। उस के संग ही व्याख्या और मुद्रा दिखा २ कर सुनने वालों के हृदय में अनेक प्रकार का भाव उपजाते थे। कोई वीर रस की कविता पढ कर वीरों की वीरता को बढाता था, और योद्धा लोगों के खड्ग मानो स्वतः म्यान से बाहर निकल पड़ते थे, कोई भक्ति पक्ष की शान्त कविता पढ कर सब के मन को भक्ति परिपूर्ण करता था, कोई प्रेम रस भरी कविता पाठ कर के श्रोताओं के हृदय को द्रवी भूत करते थे, कोई करुणा रस सम्पन्न दुःख जनक कविता पढ कर सभास्थित लोगों के आंखों से आंसू बहाते थे। कविता की मोहिनी शक्ति से वीरों का हृदय भी द्रवी भूत हुआ और आंखों में पानी भर आया।

उस कवि मंडली में इस बात का विचार करना बहुत

ने यह अमूल्य रत्न, यह अनुपम पुष्प, केवल वन शोभा के लिये बनाया है?" और यही कहती २ जिस कोठरी में ब्रह्मचारी थे उसी में चली गयी॥

सरला ने अपनी कोठरी में जाकर दीपक को धर दिया। माता शयन करने को आवेगी अतएव द्वार को खुला छोड़ दिया और दीप भी जलने दिया। उस की अवस्था यद्यपि पन्द्रह वर्ष की थी किन्तु अभी जवानी अच्छी तरह उभड़ी नहीं थी, मुंह देखनेसे अभी बालिकाही बोध होती थी। उसके अंग अथवा मुख पर कुछ विशेष लावण्यता भी नहीं थी। कवियों ने जैसा युवतियों का रूप वर्णन किया है वह बातें सरला में नहीं थीं। शरीर कोमल था और मुख मण्डल में गम्भीरता और सरलता के चिन्ह दिखाई देते थे,—देखने से ज्ञान पड़ता था मानो उस के हृदय में कुटिलता का लेश भी नहीं है, केवल सुशीलता, सरलता और साधारण मनुष्यों के प्रति प्रेम और स्नेहराशि झलक रही थी। अधिक सुन्दरता उस की दो आँखों में थी। ओंठ दोनों बहुत चिकने नहीं थे किन्तु देखने से अमृत की संपटी से ज्ञान पड़ते थे। काले२ घूंघर वाले बाल मुंह पर छिटके हुये किशोरता को अधिकतर बढ़ाते थे। सारा अंग कोमल और सुस्निग्ध था। दिन भर परिश्रम करने के अनन्तर सय्या पर जाते ही निद्रा आगयी, मानो विकासित कमल फिर बन्द हो गया॥

कि राज काज छोड़ कर भिक्षा कर के शरीर पालन करें और ऐसी अपूर्व कविता सीखें। आप का नाम क्या है, घर कहां है?,, यह कह कर गले से एक सोने का हार निकाल कर कवि को दे दिया।

कवि ने उत्तर दिया, "महाराज, वर्द्धमान के जिला में दामुन्य नाम ग्राम में मेरा घर है, मेरे पितामह का नाम जगन्नाथ मिश्र था, पिता का नाम हृदय मिश्र औ मेरा नाम मुकुन्द राम चक्रवर्त्ती है। इस समय मैं बांकुड़ा के जमीदार के यहां रहता हूं, वही मेरे अन्नदाता हैं, मैं उन के पुत्र को शिक्षा देता हूं।"

राजा ने कहा, "मै तुमारी कविता से बहुत सन्तुष्ट हुआ, उमा के प्रति तुमारी इतनी भक्ति है तो एक 'चन्डी काव्य' नाम ग्रन्थ की रचना करो, तुमारा नाम अक्षय हो जायगा।" यह कह कर दूसरे कवि को पाठ करने की आज्ञा हुई।

सब लोगों ने संकेत द्वारा वृद्ध कवि को कविता पाठ करने से रोका। कहने लगे, "मुकुन्दराम के सामने तुमारा कविता पाठ करना वृथा है, क्यों अपनी हंसी करावोगे, क्यों नहीं हार मान लेते और प्रतिष्टा के साथ घर जाते?"

किन्तु कवि ने किसी की बात न सुनी और कवित्त पाठ करन लगा

जिस झोपड़ी में माता और कन्या रहती थी वह अति ही सामान्य थी। गांव के और २ घर जैसे थे वह मड़ई भी उसी प्रकार की थी। केवल एक छोटासा रसोई का घर और एक गौ शाला और दो बड़े २ घर थे, एक में माता और कन्या और एक दासी सोती थी और दूसरे में दिन को काम काज होता और जब कोई अतिथि आ जाता तो उसीमें टिकाया जाता था। गौशाला में दो तीन गाय थीं; आंगन में एक गाड़ था जिस में अन्न संचित किया जाता था। गृह के समीप ही एक छोटी फुलवाड़ी भी थी जिस में अनेक प्रकार के फूल वृक्ष लगे थे और सरला ने कुछ नवीन फूल पत्ती भी लगा रक्खा था। यद्यपि मड़ई बहुत सामान्य थी किंतु बाहर के देखने वालोंको उसके निवासी सहसा सामान्य नहीं बोध हो सक्ते थे। भीतर की सम्पूर्ण वस्तु इस प्रकार स्वच्छ और परिस्कृत थी कि उस ग्राम में दूसरे के घर नहीं थी। वस्त्र भी यद्यपि सामान्य तो थे किन्तु सुठि और पवित्र। घरभी ऐसा 'साफ' था कि आंगन में एक तिनका भी नहीं दिखायी देता था। इन स्त्रियों के आचार व्यवहार देख सुन कर पहिले पहिल ग्राम वासी लोग अनेक प्रकार का तर्क करते थे किंतु छ सात वर्ष एकत्र रहते २ अब उन लोगों को नवीन अनुभव होने लगा। सभों ने विचारा कि महाश्वेता किसी धनाढ्य की स्त्री है,

जिला के फुलिया नाम ग्राम के मुरारि ओझा का पौत्र हूं, नाम मेरा कीर्त्तिवास ओझा है।"

"कीर्त्तिवास! आप की कीर्त्ति चिरकाल तक बंग देश में वास करैगी, बालक वृद्ध वनिता सब आप की कविता का पाठ करैंगे, आज जैसे इस सभा के लोग इस अलौकिक कविता को सुन कर रोये हैं, युग युगान्तर में भी इसी प्रकार क्या बालक, क्या वृद्ध, क्या पुरुष, क्या स्त्री सब इस कविता को पढ़ कर आंसू बहावैंगे।" राजा ने सब को कुछ कुछ पारितोषिक देकर विदा किया।

इस के अनन्तर राजा ने आज्ञा दी, "अब आमोद प्रमोद का काम नहीं है, अभी हम को एक अति आवश्यक काम करना बाकी है, बन्दी को ले आवो।"

चार जन सैनिक पुरुषों ने तुरन्त शकुनी को ला कर सन्मुख खड़ा कर दिया। मलिन वस्त्र पहिने, दोनो हाथ बांधे बन्दी एकदृष्टि पृथ्वी की ओर देख रहा था। सुरेन्द्र नाथ ने हाथ जोड़ कर कहा, "महाराज! मैं महात्मा समरसिंह की आश्रय हीन विधवा और अनाथ कन्या की ओर से निवेदन करता हूं कि इस दुष्ट ने राजा समरसिंह के पवित्र नाम पर मिथ्या दोष लगा कर उन का प्राण लिया है। समरसिंह दिल्लीश्वर के आज्ञाकारी अनुचर थे—दिल्ली के सम्राट के प्रतिनिधि और सेनापति

पुरुष ने बुढ़ापे में दूसरा व्याह कर लिया उस पर पूर्व्व पत्नी छल कर अपनी कन्या को ले कर अलग हो कर इस ग्राम में रहती है ॥

इधर महाश्वेता ने आदर पूर्वक शिखंडिवाहन ब्रह्मचारी को भोजन कराया और स्वयं भी कुछ जल पान किया। तदनन्तर ब्रह्मचारी को एक आसन पर बैठा आप पृथ्वी पर बैठी बात चीत करने लगी। समस्त रात बार्तालाप होता रहा, हम इस स्थान पर उस का कुछ संक्षेप वर्णन करते हैं ॥

शिखंडिवाहन ने कहा "बहिन, मैं धर्म्म पिता चन्द्रशेखर के यहां से आता हूं, वे अभी तीर्थाटन से पलट कर आये हैं। सात वर्ष हुए धर्म्म पिता तीर्थ यात्रा को गये थे उस समय मोगल पठानों में कुछ कलह नहीं था, इसी सात वर्ष के बीच में हिमालय से कावेरी पर्यंत सम्पूर्ण तीर्थ कर आये ॥"

महा—"पिता का जीवन सफल है ॥"

शिख—"अंत को मुंगेर के समीप किसी ग्राम में ध्यान करते २ उन को स्वप्न हुआ कि रक्त की नदी के बहने से एक महा अग्नि का निर्वाण हुआ और एक प्रचण्ड ज्योति अंधकार में लीन हो गयी।" स्वप्न का मर्म कुछ २ अनुभव कर के बंग देश को पलट आये और मेरे मुख से तुमारे क-

म्भव है कि तेरा आगम सुधर जाय; इस समय तो अब तेरे पाप की क्षमा नहीं है।"

शकुनी ने धीरे से उत्तर दिया, "मैं निर्दोषी हूं।" राजा फिर अपने क्रोध को सम्हाल न सके, बोले, "जल्लाद अब विलम्ब करने का काम नहीं है।"

तब शकुनी ने कहा, "महाराज! आप ने मेरे शत्रुओं की सब बातें सुन लीं,—मुझ को भी कुछ कहना है।"

राजा ने कहा, "शीघ्र कह, क्या कहना है, अब तेरा समय आन पहुंचा?"

शकुनी गम्भीर स्वर से कहने लगा, "यद्यपि मेरा दोष प्रमाणों द्वारा सिद्ध हो जाय तथापि मैं ब्राह्मण हूं, और ब्राह्मण अवध्य है। आप आर्य धर्म के पूरे भक्त हैं और शास्त्र भी आप का पढ़ा है, शास्त्र के अनुसार ब्राह्मण अवध्य है। अत सहस्त्र दोष करने पर भी ब्राह्मण अवध्य है। मैं आश्रय हीन बंधुवा हूं दोनो हाथ मेरे बंधे हैं, जिधर आंख उठा कर देखता हूं मेरे शत्रुही देख पड़ते हैं। आप की आज्ञा रोकने वाला कोई नही है, मेरी सहायता करने वाला कोई नही है। आप के मुंह से निकलने की देर है और मै अभी मारा जाऊंगा, किन्तु इस से शास्त्र की अमर्यादा होती है। अनुमान चार सौ वर्ष से मुसलमान लोग बंग देश का शासन करते हैं,—वे विरुद्ध धर्मावलम्बी प्रति-

ठिन व्रत का समाचार सुन कर उन को बड़ा विस्मय हुआ। उन्हो ने व्रत विषय अपना मत प्रकाश नहो किया किन्तु मुझ को शंका होती है कि व्रत से कुछ अनिष्ट होगा। बहिन, अब भी मान जाव॥"

महाश्वेता ने कहा "भाई, इस-विषय में मुझ को क्षमा करो, यह व्रत तो मेरे प्राण का अंग और जीवन का आधार है। इतना शोक संताप सह कर मै जीती हूं, इस भयानक अवस्था को पहुंचकर मै स्वच्छन्द हूं, यह केवल इसी कठिन वैरनिर्यातन व्रत के निमित्त। जिस दिन इस व्रत से उद्धार होगा उसी दिन मेरे जीवन का भी अन्त होगा॥"

यह उत्तर सुन कर शिखण्डिवाहन चुप हो रहे। कुछ कालानन्तर फिर बोले "वैरनिर्यातन के लिये कोई विशेष उपाय भी करती हो?"

"मैने एक सिद्ध पुरुष से एक भयंकर मंत्र लिया है। उन्हों ने उस मंत्र के साधन का जो अनुष्ठान बताया है वह और भी भयंकर है, किन्तु मैने उस के साधन में पूरी कमर बांधी है। नित्य प्रति संध्या समय स्नान कर के दो पहर रात तक उसी मंत्र द्वारा देवदेव महादेव की आराधना करूंगी,—जब तक महादेव शत्रु का नाश नही करैंगे उतने दिन कन्या कारी रहैगी,—सातवें वर्ष में यदि वैरी का नाश न होगा तो उसी महादेव के आगे कन्या को मार कर सती हो जाउंगी॥"

कुछ काल तक दोनों चुपचाप रहे। ब्रह्मचारी ने कहा "मै तेरे व्रत को भली भाँति जानता हूं। मैने यह पूछा था कि व्रत विभिन्न वैरनिर्यातन का कोई और भी उपाय किया है ? "

महाश्वेता ने गम्भीर भाव से उत्तर दिया कि "जिस ने इस अखण्ड संसार को सृजा है उस की सहायता व्यतिरिक्त स्त्री जाति और क्या उपाय कर सक्ती है ? "

सरल स्वभाव ब्रह्मचारी ने महाश्वेता को इस भयंकर व्रत परित्याग करने का एक बेर और भी अनुरोध किया। महाश्वेता ने कहा "यदि तुम को पूर्व कथा सब ज्ञात होती तो ऐसा अनुरोध कदापि न करते,—मै कहती हूं सुनो और महात्मा चन्द्र शेखर से भी कह देना ॥"

प्राचीन कथा का स्मरण करते २ महाश्वेता का शरीर काँपने लगा, मुख की आभा बिगड़ गयी, रोमांच खड़े हो आये और उज्वल नेत्रों से अग्नि की वर्षा होने लगी। दीप झलमुला रहा था, चारो ओर घर में अंधेरी छा रही थी, वायु सन्नाटे से बह रही थी और महाश्वेता की मड़ई भी हिल रही थी किन्तु स्मृतजनित चिंता वायु उस से भी सहस्र गुण महाश्वेता के हृदय कुटी को हिला रही थी। शिखण्डिवाहन इस प्रकार विकार देख कर महश्वेता को पूर्व कथा वर्णन से रोकने की चेष्टा कर रहे थे किन्तु

उन के मुह से शब्द नहीं निकला । कुछ काल चुप रह कर महाश्वेता बोली, मैं बड़ी पापिन हूं ; जो दूसरे के अनिष्ट साधन के निमित्त सात वर्ष पर्यंत व्रत धारण कर सक्ती है वह पापिन नहीं तो क्या है ? परंतु सामान्य अत्याचार के कारण मैंने यह व्रत धारण नहीं किया है । सुनिये ॥"

सरल स्वभाव शिखण्डि वाहन् अनायास चुप चाप रहे ।

तीसरा परिच्छेद ।

जलधारिणी की पूर्व कथा ।

But o'er her warrior's bloody bier
The lady dropped nor flower nor tear.
Vengeance deep brooding on the slain
Had locked the source of softer woe,
And burning pride and high disdain
Forbade the rising tear to flow.

Scott.

"मेरे स्वामी राजा समरसिंह बंग देश के भूषण थे। पठान दाऊद खां से जब मोगलों से युद्ध आरम्भ हुआ और अकबरशाह ने स्वयं आकर पटना नगर घेर लिया और गंगा पार हाजीपुर लेने को लालसा से आलम खां को भेजा उस समय राजा समरसिंह ने एक सहस्र घोड़ सवार लेकर बड़ा पराक्रम दिखलाया था; इन्हीं द्वारा वह नगर पराजित हुआ। इस महावीर का वृत्तांत सुन कर दिल्लीश्वर ऐसे चमत्कृत हुये कि कुछ दिन के अनन्तर जब पटना जय कर के दिल्ली जाने लगे तो मेरे पति को सेनापति के पद पर नियुक्त किया, और राजा की पदवी दिया। इस के थोड़े ही दिन पीछे मोगल सेना सागर

तरंग की भांति सारे बंग देश में फैल गयी। तरीयागढ़ी जीत कर बंग देश के राजधानी तन्डा नगर को ले लिया। वहां से मनाइम खां और टोडरमल को थोड़ी सी सेना के साथ भागते हुए दाऊद खां के पीछे भेजा,—राजा समरसिंह सानन्दचित्त टोडरमल के साथ शत्रु परिपूर्ण बंग देश में युद्ध करने को प्रस्तुत हुए। तन्डा से वीरभूमि, वीरभूमि से मेदनीपुर, और मेदनीपुर से काटक, अर्थात्--जहां२ टोडरमल गये थे मेरे पति सर्वदा उन का साथ देते रहे। टोडरमल ने जहां २ जय लाभ किया प्रत्येक युद्ध में राजा समरसिंह ने अपना अपूर्व वीरत्व और साहस प्रकाश किया। उस वीरत्व और साहस का क्या यही पुरस्कार है?

"इस के पीछे काटक में जो समर हुआ था उस में तो मनाइम खां आप ही वर्तमान था, मोगल लोग प्रायः पराम्त हो गये थे और मनाइम खां खेत से भाग चला था; आलम खां मारा गया, किन्तु राजा समरसिंह और टोडरमल के शरीर में तो भय का नाम भी नहीं था। टोडरमल ने कहा, आलम खां मर गया तो क्या हुआ; मनाइमखां भाग गया तो क्या चिन्ता है, राज हमारे हाथ में है तो हमारे ही हाथ में रहेगा। इतना उनके मुंह से निकलने नहीं पाया था कि राजा समरसिंह कूद कर शत्रु समूह के बीच जा पड़े और मोगल सेना बंगाली ज-

मीदार का साहस देख कर फिर लड़ने लगी और दाऊद खां को हरा दिया। इसके अनन्तर जो संधि हुई उस समय मनाइमखां ने दाऊदखां से पूछा, 'महाशय, आप तो प्रायः एक वर्ष से हम लोगों से लड़ रहे हैं यह तो बताइये कि हमारे सेनापतियों में आप को कौन सब से अधिक साहसी देख पड़ा ?' पठान राजा ने उत्तर दिया 'सब से उत्तम तो क्षत्रियकुलतिलक राजा टोडरमल और उन के पीछे बंग देशीय जमींदार राजा समरसिंह।' इतना उसके मुंह से निकलते ही सारे दर्बार में कोलाहल मच गया और जय ध्वनि होने लगी। वरन सम्पूर्ण देश में "वाह वाह" फैल गयी। दुर्ग में,—जहाँ मैं अकेली बैठी समय २ पर अपने स्वामी के विषय अनेक प्रकार की तर्कना कर रही थी, इस समाचार के पहुंचतेही मेरे शरीर में रोमांच हो आया। और फिर उसी समरसिंह का विद्रोह अपवाद के कारण सिर काटा जाय! इस का क्या इस जगत में प्रतीकार नहीं है! परमात्मा के यहां इसका विचार नहीं है ?"

इतने में तारभग्न वीणा की भांति महाश्वेता की बोली बन्द हो गयी। शिखण्डिवाहन ने कहा "वहिन, प्राचीन वार्त्ता स्मरण करने से यदि क्षोभ होता है तो उस के वर्णन करने का क्या प्रयोजन है ? और विशेष कर के

राजा समरसिंह का वृत्तान्त बंग देश में कौन नहीं जानता? समर सिंह की पत्नी को वह वृत्तान्त वर्णन कर के दुःख सहने का क्या प्रयोजन है?"

"समर सिंह की पत्नी नहीं मैं उन की राजमहिषी थी, अब तो आश्रय हीन बिधवा हूं!—अब मुझ को बहुत कहना नहीं है, सुनिये॥"

शिखण्डिवाहन फिर चुप हो गये और महास्वेता कहने लगी॥

"एक दुष्टात्मा जमीदार ने जिस का नाम मैं न लूंगी इस युद्ध में दाऊद खां से मिल कर समर सिंह के मारने का यत्न किया था। टोडरमल मेरे स्वामी को बहुत चाहते थे, समर समाप्त होने पर उन्हों ने उस को प्राण दण्ड की आज्ञा दिया। जमीदार भय के मारे मेरे स्वामी के चरण पर गिर पड़ा और क्षमा का प्रार्थी हुआ—उदार चित्त राजा समर सिंह ने उस के अपराध को क्षमा कर दिया और राजा टोडरमल से विनती कर के आश्रयहीन ब्राह्मण जमीदार को बचा दिया। उस पाखण्डी ने इस अपमान को अपने हृदय में गोपन कर रक्खा,—मेरे स्वामी की जमीदारी बहुत थी उस को देख कर लोभ हुआ। जब राजा टोडरमल बंग देश से चले गए उस जमीदार ने अवसर पाकर बहुत सा 'जाली कागज' प्रस्तुत कर के यह

प्रगट किया कि समरसिंह विद्रोही पठानों से मिल कर प्रपंच रचता है। इसी मिथ्या दोषारोपण से स्वामी को प्राण दण्ड हुआ,—वह नमोदार ब्राह्मण का बेटा—चाण्डालपुत्र—सूबेदार का प्रिय पात्र बन कर दिवान हो गया॥"

शिखण्डिवाहन को बड़ा आश्चर्य हुआ और मन में कहने लगे कि "तो क्या बंग देश के दिवान राजाधिराज सतीशचन्द्र पापिष्ट नरहत्याकारी हैं?" कुछ देर इस प्रकार चिन्ता करते रहे। महाश्वेता ने कहा "मैं जो बात कहा चाहती थी वह तो अभी तक कहा ही नहीं॥

"आज प्रायः छः वर्ष मेरे स्वामी को मरे हो गए। उस के दो वर्ष पीछे टोडर मल फिर इस देश में आए थे और राजमहल में एक बेर फिर दाऊद खां को हरा कर इस देश से पठानो को उच्छिन्न कर दिया। समर समाप्त होने पर उन्हो ने दिवान से मेरे स्वामी का कुशल समाचार पूछा। उस दुष्ट ने सत्य कथन से भयभीत हो कर कहा 'राजा समर सिंह को सांप ने काटा और वह मर गए।' यद्यपि यह एक प्रकार सत्य था किन्तु सर्प में इतना विष कहां। मैने स्वामी से एक विषम प्रतिज्ञा की है। मरने के कुछ दिन पहिले से उन को अपने अन्त दशा की सूचना हो गयी थी। एक दिन सन्ध्या समय मुझ को

दुर्ग से बाहर ले जाकर गंगा के तीर पर बैठ कर कहने लगे, 'प्राण प्यारी मैं तुझ से एक बात कहा चाहता हूं, वचन दे तो कहूं।' मैंने कहा 'प्राण नाथ ! किस बात की प्रतिज्ञा आप मुझ से चाहते हैं ?' तब उन्हों ने मुझ से गंगा जल स्पर्श करने को कहा। सन्ध्या समय के उस निबिड़ अन्धकार में हम दोनो गंगा किनारे बैठे देर तक जल स्पर्श करते रहे। तब स्वामी गम्भीर स्वर में बोले 'मैंने सुना है कि उस दुष्ट ब्राह्मण का अनिष्ट संकल्प सिद्ध हुआ, अब मेरे मरने में कुछ सन्देह नहीं है किन्तु कोई बैर लेने वाला नहीं है इसी से बड़ा दुःख हो रहा है। न कोई भाई है, न बेटा है, केवल एक बालिका है और तूं मेरी स्त्री है। प्रतिज्ञा कर कि स्त्री का जहां तक पराक्रम चल सका है तू इस दुष्ट से बदला लेने में कोई बात उठा न रक्खेगी।' मैंने प्रण किया कि 'जहां तक स्त्री का पराक्रम चल सका है मैं बैर लेने में कोई यत्न उठा न रक्खूंगी' और क्रोधाग्नि प्रचण्ड ज्वाला की भांति हृदय में जल उठी। वह अग्नि आज तक शान्ति नहीं हुई—वह प्रतिज्ञा अभी तक पूरी नहीं हुई।"

शिखण्डिवाहन ने देखा कि महाश्वेता को इस व्रत से विचलित करना कठिन है और बोले,—

"तो मैं यह सब वृत्तान्त धर्म पिता से कहूंगा ?" म-

हाश्वेता ने कहा "हाँ कहना। और यह भी कहना कि पक्षि शावक जब बधिक द्वारा मारा जाता है तो अपने दुःख के मारे मर जाता है किन्तु मानवती सांपिन जब पैर तले दब जाती है तो दबाने वाले को अवश्यमेव काटती है और जयलाभ के आनन्द में मग्न हो कर प्राण त्याग करती है।"

यह कहते २ महाश्वेता उठ खड़ी हुई और उस के शरीर के रोयें खड़े हो आये। उस समय को उस की आकृत देख कर शिखण्डिवाहन को कुछ भय भी होने लगा। महाश्वेता ने धीरे से घर का द्वार खोला और प्रभात काल का प्रकाश देख कर कुछ सहम गयी। वृक्षों के शिखर पर बाल रवि की अरुण छटा छिटक रही थी और पक्षि सब शाखाओं पर बैठे चह चहा रहे थे॥

चौथा परिच्छेद ।

सरला और अमला ।

We Hermia, like two artificial gods,
Have with our needles created both one flower,
Both on one samplet, sitting on one cushion,
Both warbling of one song, both in one key;
As if our hands, our sides, voices and minds
Had been incorporate. So we grew together,
Like to a double cherry seeming parted,
And yet a union in partition,
Two lovely berries moulded on one stem.

Shakespeare.

प्रातः काल के पूर्वही उठ कर सरला घर का काम काज करने लगी। घर, द्वार, आंगन, इत्यादि में झाड़ू देकर परिस्कृत कर दिया। पाठक गण को सन्देह होगा कि राजकुमारी हो कर सरला क्या अपने हाथ से घर बोहारती है? सरला को अपने राजपुत्री होने का कुछ भी ज्ञान नहीं था। पिता के मरण समय वह बहुत छोटी थी,—उस समय की बातों को उस को कुछ सुध नहीं थी। उस की माता ने भी कभी उसने कुछ नहीं कहा। नित्य प्रति किसान की बेटी सी काम करती २ वह अपने को

किसानपुत्री ही बोध करती थी। उस के कोमल हृदय में अहंकार इत्यादि का लेश मात्र भी नहीं था। रात दिन मड़ई में बैठी माता से प्रीति करना, किसानों की स्त्रियों के संग बात चीत करना और खेलना, सामान्य कर्म कर के अपना भरण पोषण करना इस के व्यतिरिक्त सरला के सरल अन्तःकरण में कोई उच्च आशा प्रवेश नहीं करती थी। गृह कर्म कर के घड़ा ले कर सरला नदी स्नान को चली। वह सर्वदा सूर्योदय के पूर्व स्नान करती थी। मार्ग में एक घर के सन्मुख खड़ी हो कर मीठे स्वर से पुकारने लगी "सखी" किन्तु कोई बोला नहीं। फिर पुकारा "अमला" भीतर से शब्द हुआ "आती हूं" और एक षोड़स बर्ष की कटीली आंखें वाली चंचला किनारेदार साड़ी पहिने, हाथों में संख की चूड़ी, पैरों में कड़ा, कमर पर कलसा रक्खे बाहर आयी। आतेही उस ने सरला का जूड़ा पकड़ कर खींच लिया और चिकोटी काट कर बोली 'तैं कैसी बौरहिया है, स्वामी घर में हैं, तिस पर हुड़ स्वामी, इतने तड़के हम को कैसे छोड़ेगा ! तुझ को क्या, माता ने विवाह किया नहीं सारी रात चिन्ता में नींद नहीं आती अतएव अंधेरा रहते ही घर से निकल खड़ी होती है।' यह कह कर फिर एक बार उस को चिकोटी काट लिया और हंसते २ गाल भी पकड़ लिया।

सरला ने कहा 'तो इसमें मेरा क्या दोष है बहिन !, तूं मुझ से कहती है तब मैं तुझ को बुलाने आती हूं।'

अम।—"और न बुलाऊंगी तो न आवेगी ?"

स।—"आऊं क्यों नहीं ?"

अम।—"क्यों आती ?"

सर।—"यह तो मै नहीं कह सक्ती किन्तु तेरे न बुलाने पर भी अवश्य आती।"

अम।—"नहीं सखी इसका तो कारण बतलाना पड़ेगा।"

सर।—"मैं सत्य कहती हूं मुझ को इस का कारण नहीं मालूम किन्तु तूं न भी बुलावे तो भी मैं आऊं। प्रात होतेही तेराही ध्यान आता है। यदि एक दिन तुझको न देखूं तो काम काज में मन नहीं लगता। नित्य प्रति देखती हूं कि नहीं इसी से ऐसी प्रकृति हो गयी है।"

अमला ने स्थिर भाव से सरला की ओर देखा,—सरला प्रेम सागर में झकोरें ले रही थी,—सहसा मुंह फेर लिया। सरला ने कहा 'सखी तेरी आंखों में आंसू क्यों भर आये ?'

अम।—"कुछ नहीं बहिन,—एक तिनका आंख में पड़ गया। तू ने कुछ और भी सुना है,—जमीदार की कचहरी का कोई नतन समाचार सुना है ?"

सर।—"नहीं बहिन मैंने तो नहीं सुना, क्या समाचार है?"

अम।—"हमारे जमीदार ने अपने बेटे का विवाह किसी बड़े घर की लड़की से ठहराया है। लड़की बड़ी सुन्दर है उस की छवि मानो चन्द्र की छटा सी है और आंखें दोनों तो तेरी ही सी हैं॥"

सर।—"सखी ठट्ठा क्यों करती है, फिर क्या हुआ?"

अम।—"और अब सब ठीक ठाक होगया जमीदार के बेटे ने कहा कि मैं इस स्त्री से बिवाह न करूंगा॥"

सर।—"क्यों?"

अम।—"यह तो मैं नहीं जानती किन्तु सुना है कि वह गांव की किसी ब्राह्मण की स्त्री पर आसक्त है और उस को छोड़ कर दूसरी से व्याह नहीं करैगा। क्या उसने कहीं तुझ को तो नहीं देखा है?"

सर।—"फिर ठट्ठा करने लगी। वाह, बाप एक से व्याह कराता है और बेटा दूसरी से किया चाहता है॥"

अम।—"जो जिस को चाहै, बाप जिस से बिवाह कराता है वह उस को नहीं चाहता॥"

सर।—"क्यों नहीं चाहता॥"

अम।—"तूं ऐसी पगली है तुझको कहांतक सिखाऊं" माता से कह कि तेरा व्याह कर दे तब सब सीख जायगी॥"

यह कह कर फिर उस के गाल में एक खुदुका मार दिया ॥

इसी प्रकार बात चीत करते २ दोनों नदी के तट पर पहुंच गयीं। वहां क्या देखती हैं कि एक बड़ी काली, लम्बी चौड़ी स्त्री, चिथड़ा लपेटे खड़ी है। गले में मूड़ों की माला पहिने है, हाथ में दण्ड, शरीर में भस्म और आंख लाल २ और चढ़ी हुई हैं। उस को देख कर दोनो डर गयीं। अमला ने उससे पूछा "तू कौन है रे ?"

उसने उत्तर दिया कि "मैं बिश्वेश्वरी पगली हूं।" अमला ने कहा "हां, हां, हमने बिश्वेश्वरी पगली का नाम सुना है। तू पहिले भी एक बेर इस गांव में आई थी न ?"

बिश्वे।—"हां आई थी।"

अम।—"तू तो हाथ भी देख सक्ती है न ?"

बिश्वे।—"हां देख सक्ती हूं।"

अम।—"अच्छा मेरा हाथ देख तो।"

पगली हाथ देख कर बोली "तू तो दिवान की गृहिणी होगी।"

अम।—"दुर पगली, मेरा तो स्वामी जीता है और तू कहती है कि दिवान की स्त्री हूंगी। मेरा बुढ़वा जीता रहे मुझ को दिवान वजीर से क्या काम है। भला देख तो मेरी सखी का व्याह कब होगा ? विवाह के शोच में उस को नींद नहीं आती।"

पगली कुछ देर तक उलट-पुलट कर उस का हाथ देखती रही, और बीच बीच में उस के मुंह की ओर भी ताक देती थी, और फिर हाथ देखने लगती थी। अन्त को बोली—"तेरा तो आगम अंधेरा है; अंधकार के अतिरिक्त और कुछ दिखाई नहीं देता। इस समय तो बड़ा हल चल है अन्त में न जाने क्या होगा। तीन दिन में बड़ा उपद्रव होगा, गांव छोड़ कर भाग जा, भाग जा, भाग जा।"

सरला तो डर गयी। अमला उस की वह दशा देख कर पगली की ओर मुंह कर के बोली "कहने को कुछ कहती है कुछ,—मैंने पूछा कि मेरी सखी का व्याह कब होगा और वह आकाश, पाताल बाधती है। खड़ी तो रह मैं तुझ को कैसा छकाती हूं।"

यह कह कर अमला उस पर छींटा उड़ाने लगी और पगली धीरे २ पीछे हट गयी। वहां से फिर उसने सरला की ओर देख कर कहा "भाग जा, भाग जा, भाग जा!" और अंतर ध्यान हो गयी।'

तब से तो घाट पर किसानो की स्त्रियों का झुण्ड एकत्र हो गया। रामा, बामा, श्यामा, नाम अनेक ग्राम ललनाओं ने आकर घाट छेंक लिया और नाना प्रकार की बात चीत और रंग रस होने लगा। इच्छामती नदी भी

इतनी रूप राशि अपने पार्श्व देश में एकत्र देख कर द्विगुण आनन्द में बहने लगी। सरला और अमला जल भर २ कर अपने २ घर गयीं।

अमला के स्वामी को तो पाठक लोग पहिले ही से जानते हैं। नवीन दास इस ग्राम का एक ब्राह्मण था और कुछ व्योहार भी करता था। स्वभाव उस का अच्छा शान्त और सरल था। उस के पास कुछ समाई भी थी। चालिस पचास बिगहा खेत था, बीस पचीस गोरू थे, चार पांच हल चलते थे और आंगन में आठ दस बखार भी थीं। लोग यह भी कहते थे कि उस के पास कुछ गड़ा हुआ धन भी है। इस के व्यतिरिक्त उस की स्त्री के पास कुछ भूषण आभरण भी थे। अपनी प्रथम पत्नी के पन्द्रह दिन मरने के पीछे उस ने पैंतीस वर्ष की अवस्था में एक दस वर्ष की कन्या अमला से विवाह किया था। यद्यपि वह अभी बूढ़ा नहीं था किन्तु अमला उस को सदा "बूढ़ा पति" कह कर पुकारा करती थी। अमला स्नेह करती तो थी किन्तु उस का स्वभाव 'हंसना' था। रात्रि दिन अपने वृद्ध स्वामी की सेवा किया करती परन्तु उपहास करने में भी संकोच नहीं करती थी। पर बूढ़े पति के कारण उस को कुछ खेद नहीं था क्योंकि भाग्य में यही लिखा था। इस प्रकार दोनों प्रेम संयुक्त रहा करते थे।

जब से सरला इस गाँव में आयी अमला उस को अपनी बहिन के तुल्य प्यार करती थी। दुःख के समय जब सरला का निर्मल मुख कमल देखती सारा क्लेश भूल जाती थी और सुख में जब उस को देखती तो फूल कर दूनी हो जाती थी। छः वर्ष एकत्र रहने के कारण उन दोनो के परस्पर प्रेम की सीमा न थी। जब सरला को अवकाश मिलता था वह भी अमला के घर जाती थी और जब अमला को छुट्टी मिलती थी वह उस के गृह जाती थी। कभी २ दोनो मध्याह्न समय एक वृक्ष के नीचे बैठ कर काम काज करतीं और कभी आधी रात तक अकेली बात किया करती थीं। अर्थात् दोनों 'द्वै शरीर मन एक' हो रही थीं।

जब सरला फिर कर घर आयी माता और ब्रह्मचारी दोनों बाहर निकले। सरला ने पूछा "मा आज रात भर तू सोयी नहीं?"

महाश्वेता ने कहा, "नहीं बेटी, ब्रह्मचारी बात चीत करते २ सारी रात बीत गई। आज तुझ को घाट से आने में बड़ा विलम्ब हुआ क्यों, देख तो सूर्य्य निकल आये।"

सर।—"हां माता, आ घाट किनारे एक विश्वेश्वरी पगली आयी थी, और सारा वृत्तान्त उस का कह गयी।

माता सुन कर चिहुक उठी और उस को चारो ओर ढु-ढवाया किन्तु कहीं पता नहीं लगा। महाश्वेता को बड़ा शोच हुआ।

सरला ने पाकशाला में जाकर अपने हाथ भोजन ब-नाया और सब ने जीमा शेष जो कुछ बचा सन्ध्या के लिये रख दिया गया। घर में केवल एक दासी थी, उस का नाम चिन्ता था। जब से यह लोग इस गांव में आये तब से वह इन के यहाँ रहती थी।

ब्रह्मचारी भोजन कर के विदा हुए और महाश्वेता भी भोजन करके जाकर सो रही और सरला अपना गृह-स्थी का काम करने लगी। गृहस्थी का काम क्या? ब्रा-ह्मण की अनाथ कन्या अपना कुल मर्याद पालन पूर्वक जो कुछ कर सकीं हैं सरला भी वही सब काम करती रही। गाँव से दो तीन कोस पर एक हाट थी, चिन्ता वहाँ से रूई लाया करती थी और सरला सूत कात कर बेचा कर-ती थी। माता ने उस को कुछ सीना पिरोना भी सिखाया था, इस के द्वारा भी वह कुछ लाभ कर लेती। जो कुछ वस्तु सीकर प्रस्तुत करती थी अमला को दे देती और वह उस को अपने स्वामी द्वारा बेच दिया करती थी। यदि कभी कोई वस्तु न बिकती अथवा थोड़े दाम पर बिकती अमला कुछ अपने पास से मिला कर उस का पूर्ण मूल्य

सरला को ईर्षा करती थी। इस के व्यतिरिक्त गृह के समीप दो चार आम, कटहल और नारियल के वृक्ष थे उनके फल के विक्रय से भी कुछ आय हो जाता था। राजा समर सिंह की पुत्री आनन्द पूर्वक यह सब गृहस्थी के कार्म किया करती थी और इतना यत्न करती थी कि इस थोड़ी सी आमदनी से तीन प्राणी खाते थे और अन्त को कुछ बच भी जाता था।

सन्ध्या हो गयी और महाश्वेता नियमानुसार स्नान को गयी, चिन्ता भी अभी रुद्रपुर से नहीं लौटी, घर में केवल सरला अकेली बैठी कुछ काम कर रही थी और धीरे २ मधुर स्वर से कुछ गाती भी जाती थी। इतने में पीछे से किसी ने आकर पुकारा—

"सरला ?"

जिस ने पुकारा वह एक ब्राह्मण का लड़का था, अवस्था उस की अनुमान बीस वर्ष की होगी। मुंह उसका अत्यन्त सुन्दर और औदार्य सूचक था किन्तु काले२ बालों के मस्तक पर से इधर उधर लटके रहने के कारण किञ्चित श्यामता छा गयी थी। आखें दोनो यद्यपि स्वच्छ तो थीं किन्तु दरिद्रता के कारण, अथवा किसी दुःख कष्ट के वा चिन्ता से चतुर्दिक कालिमा विराजमान थी। ललाट प्रशस्त और ऊंचा, छाती चौड़ी, बाहु प्रलम्ब और शरीर स्थूल और

शान्त था। जब तक सरला गाती थी वह चुप चाप पीछे खड़ा सुन रहा था। पाठक महाशय इस ब्राह्मण को पहिलेही से जानते हैं। किञ्चित कालान्तर इन्द्रनाथ ने फिर कहा—"सरला?"

सरला पीछे देख कर बोली "कौन है, इन्द्रनाथ?" इन्द्रनाथ ने कहा "सरला, क्या तू संसार से विरक्त हो गयी कि ऐसी विरह की गीत गाती है, जान पड़ता है कि इस का कोई कारण है?' सरला और भी कुण्ठित हो गयी और बोली—

'नहीं मेरे मनमें कुछ भाव नहीं है, मुझ को यही एक गीत आती है अतएव बार २ उसी को गाती हूं। अमला ने मुझ को कई गीत सिखाया किन्तु मुझ को यही अच्छी जान पड़ती है, जब अकेली रहती हूं गाया करती हूं। मैं क्या जानू कि तुम पीछे खड़े सुन रहे हो?" यह कह कर उस ने माथा नीचा कर लिया॥

इन्द्रनाथ ने देखा कि सरला लज्जित हो गयी और दूसरी बात छेड़ कर बोले—

"आज इतनी बेला तक अकेली बैठी काम कर रही है इस का क्या कारण?" सरला ने कहा "आज चिन्ता हाट को गयी है अतएव उसका भी काम मुझी को करना पड़ा। तुम बैठो, मा पूजा करने गयीं हैं, आधी रात के पहिले

तो आवैगी नहीं और एक पीढ़ा ला कर उस के बैठने को धर दिया। कब की अकेली बैठी सरला कुछ मलिन मन हो गयी थी चिर परिचित से इतने दिन पीछे भेंट होने से आनन्द पूर्वक बात चीत करने लगी। किन्तु उस की बात ही क्या ? बालिकाओं की जैसी तोतरी बात होती है उसी प्रकार करने लगी। कभी अपनी माता की बात कभी अपने काम की बात करती और कभी स्वख-चित चित्रों को लाकर इन्द्रनाथ को दिखाती और कभी वाटिका में ले जाकर अपने पुष्प वृक्षों को दिखाती थी और इन्द्रनाथ प्रेम पूर्वक देखते सुनते थे। इतने में वृक्षों के कुञ्ज में से चन्द्र छटा दिखायी दी। पहिले आकाश स्वर्ण वर्ण हो गया तत्पश्चात वृक्षों की डालियों के अन्तर से पूर्ण चन्द्र की ज्योति दिखायी देने लगी। क्रमशः चन्द्रमा ऊपर चढ़ आया और नील वर्ण आकाश प्रकाश मय हो गया। उस चन्द्रप्रभा में सरला का चन्द्रानन द्विगुण प्र-काशमान हुआ। सुन्दर २ मधुर ओठों की छवि और ही दिखायी देने लगी : नयनों में प्रेमरस झलकने लगा। सरला कभी तो फूल तोड़ कर इन्द्रनाथ को देती थी और कभी चन्द्रमा की ओर देखती थी और उस की प्रशंसा करती थी। बहुत सा फूल तोड़ कर उस ने एक एकावली माला बनायी। "देखो तो यह माला कैसी सुन्दर बनी

है ?" यह कह कर उस को इन्द्रनाथ के मस्तक पर छोड़ दिया और वह सरक कर उनके गले में चली गयी। इन्द्रनाथ ने कहा "सरला, क्या तूने हमको जैमाल पहिनाया है ?" सरला लज्जित हो गयी, आखें दोनो बन्द हो गयीं और फिर मुंह से कोई बात नहीं निकली। इन्द्रनाथ भी चुपके रहे और स्नेहमय नयनों से उस रूपराशि को देखते रहे। वह काले २ घूंघर वाले बाल, वह कुटिल भृकुटी, वह प्रेम परिपूर्ण नेत्र, वह अमिय मय अधर, वह मनोहर मुख कमल हृदय में धंस गया। किञ्चित काल के अनन्तर बोले—

"सरला।"

इन्द्रनाथ का गम्भीर भाव देख कर सरला के मन में कुछ विस्मय उत्पन्न हुआ और वह उस के मुंह की ओर देखने लगी। इन्द्रनाथ का मुंह और भी मलिन हो चला।

इन्द्रनाथ ने फिर कहा "सरला, जान पड़ता है अब मुझ से तुम से फिर देखा देखी न होगी।" सरला आखों में आंसू भर कर बोली "क्या, अब तुम रुद्रपुर में न रहोगे ?"

इन्द्र।—"न, अब मैं रुद्रपुर में न रहूंगा, इस का कारण तुम को पीछे जान पड़ेगा॥"

सर।—"क्यों, क्या सखी तुम को घर में रहने नहीं देती ? तुम हमारे घर क्यों नहीं रहते ? मैं माता से

फिर आकर भेंट करूंगा नहीं तो यही अन्तिम मिलन है।"

इन्द्रनाथ के मुंह से और बात नहीं निकली और सरला के नीलोत्पल सदृश नेत्रों में आंसू भर आये। प्रथम एक बूंद गिरा दो बूंद गिरा फिर तो नदी प्रवाह की भांति धारा चलने लगी। सरला इन्द्रनाथ को अपने भाई के सदृश जानती थी, उस को इस भाव के अतिरिक्त दूसरे किसी भाव के प्रादुर्भाव का ज्ञान नहीं था और न यही जानती थी कि दोनों के वियोग से इतना क्लेश होगा। बोली "जाने कहें!" ये शब्द जिस प्रकार से उच्चारित हुए वह केवल स्त्री के मुख से बन सकता है। केवल स्नेहमयी प्रेम परिपूर्ण रमणीही के हृदय से वह स्वर निकल सकता है। सरला ने उसी स्वर से पूछा "अब जावगे?" इन्द्रनाथ से फिर रहा न गया। सरला के अश्रु परिपूर्ण आंखों को देख कर, मनुमय चन्द्रानन को निहार के और स्नेह लिलित बातों को सुन कर उससे रहा नहीं गया। अपने दोनों हाथों से सरला का दोनों हाथ पकड़े खड़े रहे, दोनों के शरीर कांपते थे, कलेजा फटने लगा और आंसू की धारा मुख पर हो कर बहने लगी।

उस पूर्णमासी की रात्रि को उस निर्जन स्थान में चांदनी के प्रकाश में दोनों चुप चाप खड़े थे—दोनों परस्पर

पांचवां परिच्छेद ।

रुद्रपुर परित्याग ।

And there were sudden partings, such as press
The life from out young hearts, and choking sighs
That ne'er might be repeated. Who could guess,
If e'er again should meet those mutual eyes,
Since upon a night so sweet such awful morn could rise.

Byron

इन्द्रनाथ की प्रेम उपासना तो पाठक महाशय को विदित ही हो चुकी है अब हम इस स्थान पर कुछ विशेष परिचय दिया चाहते हैं।

राजा समरसिंह सम्पद्‌काल में सम्पूर्ण बंग देश के राजाओं के परम बन्धु थे और विपद काल में उन के एक मात्र अवलम्ब और आश्रय थे। उन्हों ने अपने बाहुबल और पराक्रम से जो मान और क्षमता प्राप्त किया था उसके द्वारा सर्वदा स्वधर्मावलम्बी बंगदेशीय जमीदारों के गौरव बढ़ाने की चेष्टा किया करते थे। जिसका फल यह हुआ कि उस देशमें ऐसा कोई जिमीदार नहीं था जो विपदकालमें उनका उपकार न करता। इच्छापुर का जमीदार नगेन्द्रनाथ राजा समरसिंह का विशेष प्रेमभाजन था और वहभी उनको

अपने ज्येष्ठ भ्राता के तुल्य जानता था और वे उन की आज्ञा कोई काम नहीं करता था।

राजा समरसिंह के मरण पश्चात नगेन्द्रनाथ ने उनकी विधवा रानी और राजकुमारी को बहुत ढुंढवाया परन्तु वे दोनों वेष बंचवाता करके पूर्वही दुर्ग से भाग गयीं थी। राजकुमारी के प्रति उस का प्रेम तो बहुत था किन्तु वह बार २ उस का नाम नहीं लेता था कि कहीं राजाधिराज सतीशचन्द्र अप्रसन्न न हो जायं। यह सोच कर उस ने अपने स्नेह को गोपन करके रक्खा। मनुष्य के हृदय में स्वार्थ परता बहुत प्रबल होता है अतएव दिन प्रति दिन नगेन्द्रनाथ अपनी उन्नति के यत्न में दत्त चित्त होने लगे और वही यत्न करते थे जिस में धन मान इत्यादि बढ़े और राजा के निकट प्रिय समझे जायं। दिन पर दिन वह अनाथ कन्या विस्मृत होने लगी और वर्ष के भीतर नितान्त भूल गयी। अब यह भी ज्ञान न रहा कि समरसिंह के कोई स्त्री और कोई कन्या थी। पाठक महाशय अपने मन में कहते होंगे कि नगेन्द्रनाथ बड़ा कृतघ्न था, किन्तु हमतो यह कहेंगे कि यदि नगेन्द्रनाथ को यह लांछन लगाया जाय तो इस संसार में १०० में से ९९ ऐसे निकलेंगे। टुक इस भूमण्डल की ओर दृष्टि करके देखिये तो इस में कितने ऐसे हैं जो उपकार के प्रत्युपकार करने के लिये अपने मार्ग में कांटा संधते हैं।—कितने ऐसे हैं जो पूर्व कृत उ-

पकार को स्मरण कर के अपने स्वार्थ साधन से विरत होते हैं? स्नेह, दया, माया यह सब स्वर्गीय पदार्थ हैं किन्तु स्वार्थपरता के सामने स्नेह कब तक ठहर सक्ता है? हम तो नगेन्द्रनाथ पर रोष तब कर सक्ते हैं जब आप ऐसा काम न करें। हमारे कुटुम्ब में बहुत ऐसे लोग हैं जो केवल हमारी ही आशा रखते हैं चाहिये कि उन को सहाय प्रदान करें। बहुतेरी अनाथ विधवा कष्ट के मारे मर रही हैं चाहिये कि हम उन को सहायता करें। इस दुःख पूर्ण संसार में चारो ओर दुःखराशि दीख पड़ती है जिसका निवारण मनुष्य जाति से सम्पूर्ण रूप असाध्य है। ऐसी दशा में यदि हम किसी एक भी भूखे को भोजन प्रदान करें, प्यासे को पानी दें, किसी एक भी अनाथनी का क्लेश निवारण कर सकें तो हमारा जन्म सफल है।

सुरेन्द्रनाथ नगेन्द्रनाथ के पुत्र का जन्म इस जगत में वृथा नहीं था। स्वार्थ साधन से वह ऐसा विरक्त रहता था कि प्रायः लोग उसको उन्मत्त कहा करते थे—संसार में धीमान वही समझा जाता है जो अहर्निशि स्वार्थ साधन में लीन रहे। यद्यपि वह धनवान का पुत्र तो था किन्तु धन को लोष्ठवत जानता था,—उच्च वंश में जन्म तो उस का अवश्य हुआ था किन्तु किसानों से बात चीत करने में उस को बड़ा प्रेम था,—प्रायः उन्हों के बीच में रहा करता था

और सर्वदा उन को अपना बन्धु समझता था। कभी २ ऐसा भी होता कि भेष बदल कर किसानों के गांव में फिरा करता। गोधूली समय जब किसान लोग अपनी गौवों को लाकर शालावों में बांधते और स्थान २ पर दीप प्रदान में विरत रहते सुरेन्द्रनाथ कभी इस कुटी के और कभी उस कुटी के समीप भ्रमण करते दिखायी देता था। बहुधा कृषक लोगों की सामान्य बातों को भी सुना करता था।—इस गांव में एक पोखरा खोदा जाता है, उस गांव में अन्न बहुत महंगा है, अमुक स्थान का महाजन बहुत शिष्ट पुरुष है, अमुक कोठी का गुमास्ता बड़ा दुष्ट है—सुरेन्द्रनाथ इन बातोंको आग्रह पूर्वक सुना करता था। ऐसी अवस्था में वह अपनी धन मर्यादा को भूल जाता, अपने कुल गौरव को विस्मृत कर देता वरन ग्राम निवासी को अपने सहोदर भ्राता की भांति ज्ञान करता और उनकी सहायता में विरत रहता था। ऐसे मनुष्य को यदि लोग उन्मत्त न कहैंगे तो क्या कहेंगे ?

जब महाश्वेता अपनी कन्या को लेकर दुर्ग से भागी सुरेन्द्रनाथ अपने पिता का घर परित्याग कर उस के ढूंढ़ने को निकला और अनेक दिन पश्चात इच्छा मती तीर पर महन्त चन्द्रशेखर के स्थान में उन को पाया। वहां जाकर सुरेन्द्रनाथ ने उन सबों से भेट की और सहायता करने की

एच्छा प्रकाश की किन्तु अभिमानिनी महाश्वेता का इस अवस्था में भी गर्व दूर नहीं हुआ था और उसने सहायता ग्रहण करना स्वीकार नहीं किया। सुरेन्द्रनाथ ने बारम्बार अनुरोध किया परन्तु महाश्वेता ने नहीं छोड़ कर हां नहीं कहा और बोली कि "यद्यपि राजा अमरसिंह का वंश इस समय दरिद्र होगया है किन्तु उसका मान कहीं गया नहीं है—किसी को भिक्षा नहीं ग्रहण कर सक्ता।" इसके अनन्तर फिर सुरेन्द्रनाथ को कुछ कहने का साहस नहीं हुआ। अन्त को बोले कि "तुमारे स्वामी ने हम लोगों का बड़ा उपकार किया है उस का ऋण हमारे मस्तक पर है यदि किसी प्रकार प्रत्युपकार न कर सके तो हमारा जन्म निष्फल है। अतएव यदि अर्थ दान स्वीकार न करो तो यह बताओ कि और किस प्रकार हम तुमारा उपकार कर सक्ते हैं?" महाश्वेता ने कहा कि "अच्छा अपनी जमीदारी में हम को रहने को एक स्थान दो हम उस का वार्षिक कर दिया करेंगे और किसी नदी के तीर पर एक मन्दिर बनवा दो कि वहीं पर हम शिव की मूर्ति को स्थापित कर के पूजन किया करें। इस के व्यतिरिक्त हम को और कुछ नहीं चाहिये।" सुरेन्द्रनाथ ने रुद्रपुर में एक मन्दिर बनवा दिया और महाश्वेता अपनी कन्या को लेकर वहीं रहने लगी।

सुरेन्द्रनाथ जब चन्द्रशेखर के स्थान पर गये थे उस समय उन का भेष बदला था—उसी समय उन्हो ने अपना नाम इन्द्रनाथ रक्खा था। उसी भेष में उन्हो ने देश २ भ्रमण कर के सहारवेता का अनुसन्धान पाया था, उसी भेष मे उस निर्जन स्थान मे उन से पहिले पहिल सरला से साक्षात हुआ था। इच्छामती के तीर पर अनेक बार उन्होने उस बालिका को खेलाया था, अनेक बार उस्से बात चीत किया था, और अनेक बार उस को गले लगा कर चुम्बन किया था। इस प्रकार छ वर्ष में सरला और इन्द्रनाथ में भाई बहिन का सा प्रेम हो गया था। इस के व्यतिरिक्त और कोई दूसरा भाव उन के हृदय में उत्पन्न नहीं हुआ था, यह बात आज इस पूर्णिमा की रात्रि के पहिले कोई नहीं जानता था॥

प्रेम का कैसा प्रबल प्रताप है। जिस सरला के बाल हृदय में कभी कोई विकार नहीं होता था आज उसका मन कैसा चंचल हो रहा है। लड़िकाई से सुरेन्द्रनाथ परोपकार व्रत अवलम्बन करते थे, किन्तु आज उस को त्याग कर प्रेम व्रत धारण किया। अब वह परोपकारी सुरेन्द्र नहीं है वरन स्वार्थ परबश इन्द्रनाथ॥

प्रेम परायणता और स्वार्थपरता क्या एक ही वस्तु है? जिस पवित्र प्रेम के बशीभूत हो कर लोग अपने प्रेम पात्र

के उपकारार्थ प्राण तक देने को प्रस्तुत होते हैं, क्या वह पवित्र प्रेम स्वार्थ परता का कोई अंग हो सक्ता है ?—कवि लोग जो चाहैं सो कहैं, रसिक लोग चाहैं जो कहैं किन्तु हमारी तो यह अनुमति है कि वह पवित्र प्रेम केवल स्वार्थपरता का एक विशेष नाम है। जिस भाव कर के आप अन्ध प्राय हो कर सम्पूर्ण जगत में केवल अपने प्रणय पात्र की प्रतिकृति को देखते हैं,—जिस के प्रभाव से आप विचारते हो कि यह सुन्दर नभमण्डल, सुन्दर वृक्षलतादि और अनेक प्रकार की मनोहर फूल पत्तियाँ केवल आपही के प्रणय और सुख वर्द्धन के निमित्त रची गयी हैं,—जिस भाव के प्रभाव से आप अपने और अपनी प्रणयनी के सुख से विभिन्न और सब वस्तुओं को भूल गये, वह भाव यदि स्वार्थपरता नहीं है तो क्या है ?

आधी रात को महाश्वेता पूजन कर के घर में आयी इन्द्रनाथ उस्से विदा होने के लिये मार्ग प्रतीक्षा कर रहे थे, बोले;—

"तुम ने तो ऐसा व्रत धारण किया है कि यदि तुम्हारा सतीशचन्द्र का नाश न हुआ तो जान पड़ता है कि तुम्हारी कन्या को प्राप्त करने की लालसा भी व्यर्थ है॥"

महाश्वेता।—"निसन्देह व्यर्थ है।"

इन्द्र०।—"अच्छा मुझ को आशीर्वाद दो,—मै आज ही

उस काम की सिद्धि के हेतु प्रस्थान करता हूं। आशीर्वाद करो कि मनोर्थ सफल हो।"

महा।—"मैं आशीर्वाद देती हूं कि देव देव महादेव तुमारी मनोकामना पूरी करैं। किन्तु तुम बालक हो, यह मेरे समझ में नहीं आता कि उस बुद्धिकुशल पामर को कैसे परास्त करोगे?"

इन्द्र।—"अभी, तो मेरे भी समझ में नहीं आता, देखा चाहिये क्या होता है।"

महा।—"तुमारी जय अवश्य होगी,—यदि धर्म की जय न हो तो जगत का नाश हो जायगा,—और फिर कोई किसी देव देवी की आराधना क्यों करैगा?"

इन्द्रनाथ टुक सोच कर बोले, "यदि धर्म की सर्वदा जय होती तो तुमारे स्वामी का प्राण न जाता, सतीशचंद्र भी वंग देश का दिवान न होता, मनुष्य कभी धर्म पथ परित्याग न करते। जब कि चारो ओर पाप की वृद्धि हो रही है, अत्याचारी और कपटाचारी धन मान और ऐश्वर्य प्राप्त कर रहे हैं; जब कि परम धार्मिक पवित्र हृदय और परोपकारी दुःख सहन करते हैं और पद दलित हो रहे हैं, तो अब संसार के नाश होने में क्या शेष रह गया है? यदि सर्वदा धर्म की जय होती तो पाप और दुराचार इस संसार से निर्मूल हो जाता। तथापि यह कोई नहीं

कह सका कि अधर्म की जय क्यों होती है। भगवान की लीला अपरमपार है॥"

फिर महाश्वेता ने विश्वेश्वरी पगली की कथा इन्द्रनाथ से कह सुनायी। इन्द्रनाथ विस्मित हो कर बोले "यह पगली न जाने मनुष्य है, योगिनी है, अथवा राक्षसी है परन्तु उस का कहना कभी झूठ नहीं होता॥"

महाश्वेता।—"कभी झूठ नहीं होता। उस ने मेरे स्वामी का मरण भी पहिले ही से गिन कर बता दिया था। मैंने उन से कहा था और चाहा था कि सब लोग भाग जाँय किन्तु उस वीर पुरुष ने जो उत्तर दिया वह अद्यावधि मुझ को भूला नहीं। उन्हों ने कहा कि रणक्षेत्र में आज तक किसी हिन्दू या मुसलमान, मोगल या पठान ने समरसिंह की पीठ नहीं देखी, अब क्या हम पामर सतीशचन्द्र के भय से भाग कर अपना नाम धराऊँ? यदि मरना है तो मरूंगा, वीरों को इससे क्या भय है? सुरेन्द्रनाथ! अब पहिली कथा तुम से क्या कहूं? जो अग्नि मेरे भीतर जल रही है उस का भीतर ही रहना अच्छा है।"

इन्द्रनाथ ने कहा कि "इस के व्यतिरिक्त और भी उस पगली ने दो तीन बार आगम की बात कही थी और

वह भी सत्य हुई। मेरा तो परामर्श यही है कि अब तुम इस गांव को छोड़ कर भाग जाव।"

महाश्वेता सोचने लगी। पगली ने इसी प्रकार और भी दो तीन बार अनायास प्रगट हो कर जो जो बात कहा कोई मिथ्या नहीं हुई। उस को निश्चय जान पड़ा है कि पामर सतीशचन्द्र समरसिंह की आश्रयहीन विधवा की अनिष्ट चेष्टा करता है और सतर्क करने को आयी थी। यह विचार कर उस ने कहा "आजही भागना उचित है, और दूसरा कोई उपाय नहीं है।"

इन्द्रनाथ ने पूछा "कहाँ जावगी? अपने घर तो अब तुम को लेचलनेको जियेकाही नहीं सक्ता।"

महाश्वेता ने उत्तर दिया "मै फिर महेश्वर के मन्दिर के महन्त चन्द्रशेखर के निकट जाउंगी।" इन्द्रनाथ कुछ उदास हुए किन्तु बोले नहीं और उसी क्षण ग्राम परित्याग करने के उद्योग हेतु प्रस्थान किया।

महाश्वेता नें सरला को सोते से जगा कर चलने का समाचार कहा। उस का कोमल मुख मण्डल कुछ मलिन हो गया। छ वर्ष रुद्रपुर में रहने से सब वस्तुओं से एक प्रकार प्रेम हो गया था। वह मंड़ई, वह वाटिका, वह स्वहस्तरोपित पुष्प वृक्ष सब छूट जांयगे। प्रातःकाल उठ कर अब रुद्रपुर के पक्षियों का कलरव न सुनाई देगा

अब फिर दो पहर को अकेली बैठ कर उस अमराई में काम करने का समय न मिलेगा—सन्ध्या समय अब वह अमला का सुविकसित मुख कमल देखने को न मिलेगा। यह अन्तिम दशा सोच कर उस के नेत्रों में आंसू भर आए, बोली "माता, मैं सखी से विदा हो आऊं।" महाश्वेता ने कहा "बेटी जा किन्तु शीघ्र आना।"

सरला अपनी सखी से विदा होने को चली।

अमला के गृह के समीप जा कर "सखी" २ पुकारने लगी। अमला बाहर निकल आयी और हंसते २ बोली "इतनी रात को ?" और सरला का मुख देख कर कुछ गम्भीरता चेहरे पर आ गयी और हंसी जाती रही। सरला के नेत्रों से पानी बह रहा था। अमला निकट आ कर स्नेह पूर्वक सरला का हाथ पकड़ कर पूछने लगी, "क्यों सखी क्या हुआ ?"

सरला ने उत्तर दिया "माता ने कहा है कि हमलोग आज इस गांव को छोड़ कर चली जांयगी,—अब तुम से जान पड़ता है कि फिर भेट न होगी।" यह कह कर सरला अमला की गोद में मुह डाल कर रोने लगी। इतनी रात को अमला को यह समाचार बज्राघात के समान बोध हुआ। पहिले तो उस को बिश्वास नहीं हुआ किन्तु सरला की बात चीत से फिर सन्देह जाता रहा।

अमला को इस का कारण नहीं मालूम पड़ा परन्तु मन में प्रतीत होने लगी कि अब फिर प्रिय सखी से मिलना न होगा और अपने को सम्भाल न सकी। सरला को अमला अपनी सहोदर भगिनी के समान जानती थी। छ वर्ष एकत्र रहने से दोनों में बड़ी प्रीत हो गयी थी। अब उस सखी से चिर विच्छेद हुआ। छ वर्ष की कथा एक २ करके आंखों के सामने आने लगी। अमला के भी आंखों से पानी जारी हो चला किन्तु सरला को रोती देख उस ने धीर धारण कर के कहा "यह मेरा तेरा अन्तिम मिलन नहीं है। तू जहां रहेगी मैं आकर तुझ से भेट करूंगी, तू इतनी चिन्ता क्यों करती है? और यह गांव छोड़ कर तुम सब जाती क्यों हो, यह तो बतलाओ?"

सरला कुछ शान्त हो कर बोली "मैं तो नहीं जानती, माता ने कुछ कहा नहीं किन्तु हमलोग इच्छामती नदी के तीर पर महेश्वर के मन्दिर में जाती हैं।"

अमला।—"क्यों जाती है, तू नहीं जानती? मैं बताऊं?"

सरला।—"बतावो।"

अमला।—"तुमारी मा ने तुमारा विवाह ठहराया है।"

सरला का दुःख अनायासही भूल गया और कुछ हंसी भी मालूम हुई। अमला ने फिर कहा—

"महेश्वर का मन्दिर और रुद्रपुर कहीं दूर थोड़ ही

है मैं नित्य आ कर तुम से भेंट करूंगी और तेरे विवाह के समय आ कर मंगल गाऊंगी।"

इस प्रकार कुछ काल तक वार्तालाप होता रहा। एक दूसरे को छोड़ने नहीं चाहती थी—ऐसा जान पड़ता था कि अलग होने से दोनों की छाती फट जायगी। अन्त को अमला की बातों से सरला का चित्त कुछ शान्त हुआ। अमला के नाक पर तो हंसी थी और आंखों में आंसू भरा था, अन्तः करण की क्या दशा थी पाठक महाशय स्वतः विचार करें।

कुछ काल के अनन्तर अमला ने कहा, "सरला तुम ठहरो मैं आती हूं और घर में चली गई। और कुछ देर के पश्चात फिर बाहर आई। सरला ने देखा कि उसका वस्त्र भींग गया था और आंखों में पानी भरा था। बाहर आकर उसने सरला के अंचल में कुछ बांध दिया। सरला ने पूछा "यह क्या है सखी?" अमला ने कहा "कुछ नहीं है मार्ग में कहीं भूख लगे अतएव थोड़ा सा लाई और फुटेहरा बांध देती हुं, तुझ को मेरे सिर की सोगंध कहीं फेंक न देना। यह कह कर उसके खूंट में २०/ की एक पोटली बांध दी। अमला ने फिर कहा "स्वामी के घर जाने से हम को भूल तो न जायगी?"

सरला उत्तर नहीं दे सकी, उस के नेत्रों से पानी भर

आया और कंठ फंस गया। अमला ने कहा "रोती क्यों है, मैं जानती हूं कि तू मुझ को न भूलेगी? तथापि यह एक स्मारक चिन्ह तुझ को देती हूं।"

यह कह कर उस ने अपने गले से सोने की टीका निकाल कर उस के गले में पहिना ने लगी। सरला ने निषेध करने की चेष्टा की तब अमला ने कहा कि यदि न पहिनेगी तो मैं जानूंगी कि तू मुझ को भूल जायगी,—और यदि इस को फेर भी देगी तो भी मैं जानूंगी कि तू मुझ को भूल गयी।" सरला से कुछ उत्तर देते नहीं बना और अमला ने वह टीका उस को पहिना दिया। पहिनाते समय अमला फिर उस कोमल मुख की ओर देखने लगी। उस काले २ घूंघर वाले लटों से घिरे हुये मुख, और खंजन-वत चंचल नेत्र और सुमधुर अधरनधर की जोड़ी को देख कर उस ने अपने मन में कहा कि क्या अब इस प्रेम पुतली को फिर हृदय में न लगाने पाऊंगी! और फिर विह्वल हो गयी।

टीका पहिना ने के बहाने अमला ने सरला को छाती से लिपटा लिया और आखों में आंख मिला कर मुख चूम लिया। सरला ने देखा कि अमला को इस अवस्था में कुछ विशेष विलम्ब हुआ और वस्त्र भी उस का सब भींग गया बोली "सखी, क्या रोती है?" अमला ने कहा "मैं नहीं

रोती हूं तू रोती है "—और झट घर के भीतर चली गयी। सरला धीरे २ अपनी कुटी की ओर चली। थोड़ी दूर गयी थी कि अमला के घर की ओर से मन्द २ शब्द सुनायी दिया मानो कोई स्त्री अति करुण स्वर से रो रही है। सरला को कुछ भेद ज्ञान नही पड़ा। उस ने अपने मन मे कहा कि मेरी सखी तो सोने चली गयी यह रोती कौन है? यही सोचते २ शीघ्रता से अपने घर पहुच गयी।

इधर इन्द्रनाथ ने एक नौका ठीक कर रक्खाथा। महाश्वेता, सरला इन्द्रनाथ तीनो उस पर चढे और एक संग मरमर की शिव मूर्ति और दो एक अति आवश्यकीय वस्तु को छोड़ और कुछ साथ नही लिया। नौका धीरे २ चली। कहीं २ नदी का पाट बहुत चौड़ा था और दोनो तीर पर प्रान्तर, अटवी और वृक्ष लतादि चान्दनी रात मे अधिक शोभा देते थे और कहीं २ पाट ऐसा छोटा था कि दोनो करारे परस्पर मिल रहे थे और पार्श्वस्थ वृक्षों के पत्तों के बीच होकर चन्द्रमा की स्वच्छ कौमुदी इच्छामती नदी के स्फटिक जल की स्वच्छता को और भी बढ़ाती थी। उस जल के ऊपर से इन यात्रियों की नौका वेग से चली जाती थी। सरला तो यह सुन्दर शोभा देखते २ सो गयी। इन्द्रनाथ ने उसके मस्तक को उठा कर अपनी रान पर रख लिया और सारी रात चांदनी में उसके सुगठित मुख को देखते

रहे। प्रातः काल नौका एक छोटे से ग्राम के समीप लगी। उस गांव के चारो ओर निविड़ जंगल था और वहां से महेश्वर का मंदिर अनुमान आध कोस के दूरी पर था। मंदिर के महन्त और और २ पुजारी लोग कभी २ आकर इसी गांव में ठहरा करते थे और इस को वनाश्रम के नाम से पुकारते थे। सब लोग नौका से उतरे और धीरे २ चन्द्रशेखर के घर पहुचे। आश्रम वासी लोगों ने आदर पूर्वक इनको उतारा। इन्द्रनाथ ने सरला से विदा मांग कर कहा "आज से सातवीं पुर्णिमा को यदि तुम से भेट न करूं तो जान लेना कि इन्द्रनाथ अब इस संसार में नहीं है— तब तक मुझ को भूल न जाना।" सरला के मुह से कुछ बात नही निकली आंखों में आंसू भर कर उनके मुह को ओर निहारती रही। उसके चेष्टा से जान पड़ता था कि इन्द्रनाथ से प्रतिउत्तर में कह रही है कि "जब तक इस शरीर में प्राण है तू मुझे नही भूलेगा।" इन्द्रनाथ देखते २ आंखों की ओट हो गए। सरला अनेक काल पर्यन्त शून्य हृदय ओर सजल नयन उसी ओर देखती रही और फिर आश्रम की ओर फिरी।

छठवां परिच्छेद ।

विमला ।

Now nought was heard beneath the skies,
The sounds of busy life were still,
Save an unhappy lady's sighs,
That issued from the lovely pile.

Mickle.

संध्या हो चली और उस बड़े पटपर में चतुर्वेष्टितदुर्ग और उसके प्रासाद अति भयदायक बोध होने लगे। यमुना नदी उसके चारो ओर होकर बही थी । दुर्ग के चारो ओर अति मनोहर दृश्य दीखता था और आगे की ओर जहां तक दृष्टि पहुच सक्ती थी ज्ञान पड़ता था कि हरित वर्ण मखमल बिछा है । सूर्य अस्त हो गए थे तथापि पश्चिम दिशा में कुछ लालिमा छाए थी और उसकी आभा नदी जल में पड़कर औरही शोभा दिखलाती थी । चारो ओर सून सान था और ज्यों २ सन्ध्या के पश्चात अन्धकार बढता था त्यों २ और भी सन्नाटा होता जाता था । दूर से दो एक वट वृक्षों की छाया मात्र दृष्टि गोचर होती थी और वायु प्रवाह द्वारा दूरस्थ ग्राम वासियों का मन्द २ शब्द कर्ण कुहर में प्रवेश करता था ।

दुर्ग के पीछे का भाग ऐसा नहीं था। उधर एक बड़ी भारी अमराई थी जिस के विभिन्न दूर तक कुछ दिखलाई नहीं देता था। ज्यों २ रात बढ़ने लगी जुगनू की झुंड वृक्षों पर छा गई; नीचे, ऊपर, इधर उधर, जींगनज्योति व्यतिरिक्त और कुछ दिखाई नहीं देता था। उस आम्रकानन के मध्य में एक बावली भी बनी थी और उसके चारो ओर अनेक प्रकार के जीव जन्तु स्वेच्छा पूर्वक विहार कर रहे थे।

बाहर से देखने से दुर्ग के प्रासाद अन्धकारमय दीखते थे, केवल एक झरोखे से कुछ प्रकाश दृष्टि गोचर होता था। उस झरोखे में एक अवम वयस्का स्त्री बैठी हथेली पर मस्तक टेक कर कुछ सोच रही थी।

वह अबला गगनमण्डलस्थित एक तारे की ओर निहार रही थी और उसके मस्तक में भी एक हीरे का नग तारे की भांति चमक रहा था।

वह क्या चिन्ता कर रहीथी कौन कह सक्ता है? क्या प्रेम चिन्ता में निमग्न थी? किन्तु प्रेम चिन्ता में तो वदन मलीन और नम्र होजाता है,—ऐसा गर्व परिपूर्ण नहीं होता।

उस की अवस्था अनुमान सत्रह वर्ष की होगी,—यौवन प्रभाव से नख सिख अनुपम सौन्दर्य धारण किये थी;

किन्तु यह सौन्दर्य साधारण नारि जाति का नहीं था,—अलौकिक उदार स्वभाव और चित्तोन्नति सूचक। इस रूप राशि के सन्मुख खड़े होने से सहसा प्रेम का संचार नहीं होता था वरन श्रद्धा और सन्मान का। शरीर उसका कुछ क्षीण, उन्नत और दीर्घायत था किन्तु कोमलता परिपूर्ण। ललाट, सुन्दर सर्वांकिम किंतु उन्नत और प्रशस्त। ऐसा ऊंचा और प्रशस्त ललाट कदाचित किसी पुरुष का होता है परन्तु स्त्री का तो होता ही नहीं। नयनों की स्थिर चञ्चलता, अधर सधर की चिक्कनता और मुख मण्डल की गम्भीरता से अन्तः करण का महत्व, चित्त की उदारता और शिष्टता प्रकाश होती थी; सम्पूर्ण शरीर के भाव को देखने से ज्ञान पड़ता था कि यह अनुपम रूपराशि मानुषी नहीं है,—किसी योगीश्वर की स्त्री स्वर्ग परित्याग कर मर्त्यलोक में आयी है।

ऐसी अवस्था में वह बाला सन्नाटे में खिड़की पर बैठी निर्मल आकाश की ओर देख रही थी। उस का वदन मण्डल भी अत्यन्त निर्मल और स्वच्छ था। रजनी धीरे २ गम्भीर होने लगी, नीलवर्ण आकाश भी अन्धकार से आच्छादित हो गया;—अबला का हृदय आकाश भी अधिकार चिन्ता रूपी अन्धकार से आच्छादित होने लगा और उस प्रशस्त ललाट पर श्यामता आने लगी; भौहें और

भी तिरछी हो गयीं और आंखों में तीक्ष्ण उज्ज्वलता छा गयी।

उसी समय एक पुरुष ने घर में आकर पुकारा "बिमला!" बिमला ने फिर कर देखा कि पिता सतीशचन्द्र सामने खड़े हैं।

जो मनुष्य इस समय घर में आया उस का वय अभी पचास वर्ष का नहीं था किन्तु आकार देखने से साठ वर्ष का बोध होता था। मस्तक के बाल अधिकतर श्वेत हो गये थे, ललाट में खलो पड़ गयी थी, शरीर का चमड़ा झूल गया था और सारा अंग शिथिल हो गया था किन्तु आंखो की ज्योति मगी थी और मुख मण्डल सदा चिन्ता में निमग्न रहता था। नाना प्रकार की दूरदर्शिता और बहु दूर-व्यापिनी कल्पना सदा चित्त में समायी रहती थी। कोठरी में पहुंच कर कन्या को शोचसागर में निमग्न देख कर पहिले चुप रहे फिर कुछ मुसकिरा कर बोले "बिमला!"

पिता को देख कर बिमला की गम्भीर भावना कुछ भूल गयी और मुख पर पितृ स्नेह का पवित्र भाव छा गया। पिता कब से आये हैं मैने जाना नहीं यह विचार कर कुछ लज्जित हो गयी। सतीशचन्द्र ने पूछा "बिमला! तेरे इस समय तक मौन धारण कर के बैठने का क्या कारण है? क्या कोई क्लेश है?"

त्रिमला ने कहा "आप कल जायगे, न जाने कब फिर आवैं तब तक यह प्रकाण्ड दुर्ग सूना रहैगा इसी चिन्ता से मै व्यथित हूं,—चित्त को धीर नही होता।"

पिता ने कहा "यह कौन बात है! क्यों मिथ्या शोच करती है? हम शीघ्र पलट आवेंगे—क्या मै तुझ को छोड़ कर बहुत दिन तक बाहर रह सक्ता हूं?"

त्रिमला।—पिता यह मै जानती हूं कि आप मेरे पर बड़ा स्नेह करते हैं, इस्से बढ़ कर पिता कन्या पर स्नेह नही कर सक्ता।"

सती।—फिर क्यों चिन्ता करती है? मै तो प्रति वर्ष एक वेर राजधानी को जाता हूं इस वेर क्या कारण है कि तूं दुःख करती है?"

त्रिम।—"प्रति वर्ष मुझ को ऐसी भावना नही होती थी, इस वेर अनायास भय मालूम होता है। हे पिता! इस वेर घर में रहो, कहीं मत जाव।"

अन्त के शब्दों को उस ने बहुत धीरे से कहा, सुन कर सतीशचन्द्र के हृदय पर भी कुछ चोट सी लगी और भय मालूम होने लगा। कुछ काल पर्यंत चुप रह कर सतीशचंद्र ने कहा,—

"त्रिमला, क्यों व्यर्थ भय करती है, मुझ को जाना अवश्य होगा, जाती समय रोना मत।"

विमला ने कहा "पिता मेरा भय व्यर्थ नहीं है, मैंने काल रात को स्वप्न देखा था कि मेरी मृत माता आयी है और आंखो मे आँसू भर कर मृदु स्वर से कहती है कि "पाप के प्रायश्चित मे विलम्ब नहीं" और फिर गुप्त हो गयी। अभी तक उस का सूखा मुह और जल भरी आंखे मेरे नेत्रो के सामने नाच रही हैं। क्या पाप किया है जान नही पड़ता: किस पाप कर के ऐसी स्नेह मय माता छूट गयी जान नही पड़ता;—और अब किस पाप का प्रायश्चित होने वाला है केवल ईश्वर ही जानता है। हे पिता, क्षमा करो। मेरे जी मे आता है कि यदि आप इस बेर जांयगे तो फेर फिर कर न आवैंगे।"

यह कह कर विमला रोती हुई जाकर अपने पिता के अंक मे चिपट गयी। पिता का भी मुख मण्डल विवर्ण हो गया। स्वप्न वृत्तांत सुन कर रोयें खड़े हो आये,—मानो कोई प्राचीन कथा स्मरण हो गयी; मानो किसी पाप का प्रायश्चित वास्तविक प्रारम्भ हो गया। विमला पिता के अंग मे चिपट कर रोती थी और पिता को इतना धीर न रहा कि उस को शान्त करते। किन्तु किंचित काल के अनन्तर अपने मन को बटोर के स्थिर भाव धारण कर के बोले—"विमला यह तेरा मिथ्या भय है। दिन भर तू मिथ्या बातें सोचा करती है उसी से रात को भय दायक

स्वप्न देखती है। मैं देखता हूं कि कई दिन से तू संतत चिंता मग्न रहती है, सच बताव कि क्या सोचा करती है?"

विमला ने कहा, "पिता, आप पूछते हैं तो मैं अवश्य उस का उत्तर दूंगी, मुझ को किसी बात के छिपाने की कोई आवश्यकता नहीं है। इस मेरी चिन्ता के कारण आप ही हैं। आज एक महीने से देखती हूं कि आप किसी दुःख अथवा चिन्ता द्वारा व्यथित रहते हैं और वह चिन्ता रात दिन बढ़ती ही जाती है, भोजन अच्छा नहीं लगता, रात को नीन्द नहीं आती और यदि आती भी है तो बुरे २ स्वप्न दिखायी देते हैं। मैंने कई बेर दिन को आपके कोठरी के समीप छिप कर देखा है कि आप निरन्तर उसी चिन्ता में मग्न रहते हैं। रात को मैंने कई बेर आपके शयनागार में जाकर देखा है कि कुस्वप्न के प्रभाव से आप का ललाट सिकुड़ा रहता है और वदन मण्डल विह्वल दिखायी देता है। वह कौन ऐसी कठिन चिन्ता है जिस से आप को इतना दुःख हो रहा है? छोटे २ जमींदार और गृहस्थ लोग भी दिन भर श्रम करने के पश्चात रात्रि को सुख से विश्राम करते हैं। आप बंग देश के राजाधिराज दिवान हैं किन्तु आप को चैन नहीं मिलता।"

यह कह कर विमला एक क्षण चुप हो रही और देखा कि पिता स्थिर भाव धारण पूर्वक उस की बातों को सुन रहे हैं,—फिर बोली।

"गत एक मास से आप के पास इतने चर क्यों आते हैं? क्या कारण है कि वे चुप के से आते हैं और फिर चुप चाप चले जाते हैं? आप भी रात दिन किसी गुप्त परामर्श में लीन रहते हैं। यह मैं जानती हूं कि बंग देश के दिवान का काम बड़ा भारी है किन्तु देशशासन और प्रजा के मङ्गलसाधन का काम आधी रात को केवाड़ बन्द कर दो चार चरों को बैठा कर नहीं होता। बालिका को इन सब बातों की जिज्ञासा करना उचित नहीं है, मेरा अपराध क्षमा कीजिए, किन्तु आप तो बुद्धिमान और बिचक्षण हैं बिचार कर देखिये कि केवल कपटी और दुराचारी लोगों की सर्प गति होती है, उदारचेता लोगों की गति सरल होती है। जिसका चरित्र सरल है उस का उद्देश्य भी सरल होता है, उस की क्यों कुटिल चाल होगी? हे पिता मेरी बातोंको सुनो और कपटी लोगों के संग परामर्श करना छोड़ दो धर्म्म पथ अवलम्बन करो जिस्में आप को कोई दुःख न हो। पाप के मार्ग में सदा भय रहता है किन्तु धर्म पथ निष्कन्टक है।"

यह कहते २ बिमला के उदार ललाट और चन्द्रानन मे एक प्रकार की ज्योति आगयी और आंखों का प्रकाश भी कुछ उज्वल हो गया। बिमला यद्यपि पितृभक्त तो थी किन्तु उस के हृदय में स्वर्गीय गौरव और धर्मबल बिराज मान था। उसी अलौकिक गौरव के कारण सतीशचंद्र, जिन्हो

ने राज सभा में वाकपटुता के लिये अनेक प्रकार प्रशंसा पाया था, एक सत्रह वर्ष की कन्या की बातों का उत्तर नहीं दे सके ।

"पाप के मार्ग में सर्वदा भय है किन्तु धर्म पथ निष्कंटक है" यही बात बोलते २ सतीशचंद्र बाहर चले गये ।

सातवां परिच्छेद ।

पापिष्ट पापिष्ट ।

Try what repentance can: What can it not ?
Yet what can it when one can not repent ?
O wretched state ! O bosom black as death !
O limed soul that struggling to be free,
Art more engaged. Help angels, make assay !
Bow stubborn knees ! and hearts with strings of steel,
Be soft as sinews of the new born-babe,
All may be well.

Shakespeare.

सतीशचंद्र अपनी बाहर की कोठरी में जाकर भृत्य को पुकार कर बोले कि "शकुनी को बुला लाव ।" वह पहिले उन की सेवा करने को आता था किन्तु सतीशचंद्र ने उसको एक जूता मारा और कहा कि "पहिले शकुनी को बुलाव।" भृत्य शीघ्रता पूर्वक बाहर चला गया ।

यह कोठरी अति प्रशस्य और "खूब सजी" थी। दीवारों में सुन्दर चित्रमय वस्त्र मढ़े थे। प्रत्येक द्वार और खिड़कियों पर परम सुगन्धमय पुष्प की माला टंगीं थीं, स्थान स्थान पर फूलों की ढेर लगी थी, आगे एक सुगन्धमय तैल परिपूर्ण दीप जल रहा था और उस दीप के भी चारो ओर फूल के गुच्छे सजे थे। सतीशचन्द्र के बैठने के स्थान पर रक्त वर्ण "काशानी मखमल" बिछा था,—उसी सुन्दर कोठरी और अनुपम गद्दी पर महापराक्रमी और महा धनवान राजाधिराज दीवान सतीशद्र आज विषण्ण बदन बैठे हैं। पाप सिर पर नाच रहा है।

पाठक महाशय यदि आप विषयी हैं तो बताइए कि जैसा लोग आप को सुखी समझते हैं आप यथार्थ में वैसा ही सुखभोग करते हैं? बताइए तो संसार में सुख वर्णन कर के उदार चरित्र लोग जैसा सुख भोग करते हैं आप भी धन संचय कर के उसी प्रकार आनन्द मग्न रहते हैं? प्रेम पात्र का मुंह देखने से जैसे प्रेमी का मन आनन्दोत्फुल्ल रहता है, प्राकृतिक शोभा देख कर कवि का हृदय जैसे आनन्दित होता है, उच्च पद प्राप्त कर के क्या आप का अन्तः करण भी उसी प्रकार उल्लासित होता है? काव्य-रस अथवा बन्धुसम्मिलन से जैसे अन्तः करण प्रफुल्लित होता है क्या धन संचय से भी उसी प्रकार आनन्द होता

है? यदि नहीं होता तो फिर क्यों रात दिन धनोपार्जन में दत्त चित्त रहते हो? फिर क्यों और सुखों को कि जो उससे बढ़ कर हैं छोड़ देते हो? और यदि वास्तविक आनन्द प्राप्त होता है तो बताइये हम भी आप के अनुगामी होंगे।

इसी सुसज्जित कोठरी में बैठ कर सतीशचन्द्र चिन्ता करते थे। उन का हृदय पाप कर के कलुषित हो रहा था, पाप रूपी अन्धकार से आच्छादित था, किन्तु उस अन्धकार में एक पुण्य भी खद्योत की भाँति चमकता था,—विमला के प्रति निर्मल अपत्यस्नेह की एक सूक्ष्म ज्योति उस निविड़ अन्धकार में दृष्टि गोचर हो रही थी। सतीशचन्द्र कन्या को अपने प्राण से भी अधिक चाहते थे, और उस का बड़े प्रेम से लालन पालन करते थे। स्त्री के मरने के पश्चात यही एक कन्या उनकी जीवनाधार थी,—विषय कर्म की बात भी कभी २ उससे कहते थे इस कारण कन्या निर्भय हो गयी थी और कभी २ उनको उपदेश भी देती थी। विमला भी बड़ी स्नेहवती कन्या थी और सर्वदा पिता के सुख वर्द्धन का यत्न किया करती थी किन्तु अपने उन्नत स्वभाव के कारण पिता के कपटाचार से नित्यप्रति क्षोभित रहा करती थी। जैसे प्रकाश के प्रादुर्भाव से अन्धेरे का नाश होता है और सत्य और धर्म के सन्मुख पाप का प्रभाव-

होता है उसी प्रकार सरलस्वभाव विमला के सामने सतीशचन्द्र के मुंह से बात नहीं निकलती थी। यद्यपि पिता के पाप की सीमा विमला को मालूम नहीं थी, और न उसको यह ज्ञान था कि इनके सकल चरित्र पाप मय हैं तथापि बाहरी चाल व्यवहार देख कर उस का मन सन्देह में रहा करता था और इसी संदेह के कारण उस का चित्त सर्वदा दुखित रहता था।

कभी २ कोई कथा वार्ता या संगीत सुन कर सतीशचन्द्र का हृदयकमल प्रफुल्लित हो जाता था किन्तु अनायास ही फिर प्राचीन बातों का स्मरण हो आता और अन्तःकरण में वेदना होने लगती थी। लड़कपन में जो खेल खेला था और जो कुछ पठन पाठन किया था वह सब स्मरण होने लगा। जिस विद्या ने उन के पक्ष में विषमय फल धारण किया उसकी प्रारम्भ दशा स्मृतिपथारूढ होने लगी। समरसिंह के संग पाठशाला में पढने जाते थे और नित्यप्रति निष्कपट चित्त से उन के संग खेला करते थे। हा! वह भी दिन कैसा था यद्यपि इस समय सारा बंग देश अपने अधिकार में है और लाखों रुपये की सामग्री घर में है परन्तु किस काम की। अब क्या वह दिन फिर आ सक्ते हैं? कदापि नहीं। अब तो शैशव व्यतीत हो कर यौवन काल प्राप्त हुआ और अनेक प्रकार की पाप वासना

चित्त में समाई हैं। कुछ विद्या का गर्व है, कुछ धन का गर्व है और सब से बढ कर उच्चाभिलाष का गर्व है। कि न्तु उच्चाभिलाष के गर्व ने तो उन के पक्ष में विषमय फल धारण किया है।

इसी समय उस प्रजावत्सल महानुभव वीर पुरुष राजा .समर सिंह की कथा पामर सतीशचन्द्र को स्मृति हुई। जो महात्मा वंग देश के गौरवस्तम्भ स्वरूप थे, प्रजा लोगों को पितृस्नेह द्वारा पालन करते थे और जमीदारों के ज्येष्ठ भ्राता के समान सहायक थे ऐसे म- हान पुरुष के प्राण संहार के- निमित्त इस पामर ने यत्न किया था। यह यत्न इसका फली भूत नही हुआ किन्तु जब उस उदार चित्त राजा को यह बात मालूम हुई उस ने इस दुष्ट को क्षमा कर दिया परन्तु सादी नाम एक पा- रसी के महा कवि ने कहा है कि "निकोई बा बदां करदन चुनांनस्त कि बद कर्दन बजाये -नेकमर्दां।" अन्त में इस क्षमा का फल यह हुआ कि राजा स्वयं मारा गया। आज उस छिन्नसिर वीरपुरुष का फिर स्मरण हुआ और ऐसा जान पड़ा कि वह सिर सामने खड़ा कह रहा है कि "पाप के प्रायश्चित को अब विलम्ब नही है।" सतीशचन्द्र का "कलेजा" दहल गया और उसने दिया बुझा दिया किन्तु यह नही समझा कि यद्यपि वह बाहरी दीप तो बुझ

गया किन्तु भीतर का "अंधकार" कौन बुझावेगा । इसी अन्धकार में बैठा वह चिन्ता करने लगा और उस समय जो क्षोभ उस को होता था या तो उसी का हृदय जानता था या उसी प्रकार के जघन्य कर्म करने वाले अनुभव कर सके हैं। उस घोरतर भ्रूणहत्या रूपी पाप का स्मरण कर के उसका मन बारम्बार यही कहता था कि "क्या इस पाप का प्रायश्चित्त नहीं है?" यदि प्राण दान करने से भी यह पाप मोचन हो सके तो मैं मुंह न मोड़ूंगा। हे भगवान ! तू सहाय हो अब मैं बालिका के कथनानुसार आचरण करूंगा और इस कुटिल गति को छोड़ कर धर्म पथ अवलम्बन करूंगा। सत्य का अनुसरण करूंगा और अपने पाप की क्षमा मांगूंगा और यदि क्षमा न पाऊं तो अपना शरीर त्याग कर के निस्तार प्राप्त करूंगा।"

इतने में शकुनी आ पहुंचा और बोला "हैं! यह क्या? आज आप अकेले अंधेरे में क्यों बैठे हैं?"

सतीशचन्द्र ने गम्भीर स्वर से उत्तर दिया कि "दीपक की ज्योति सही नहीं जाती, हृदय में निविड़ अन्धकार छा रहा है और बोध होता है कि मेरा जीवनरूपी दीपक भी शीघ्रही निर्वाण होगा। अब मेरा अन्तकाल आ पहुंचा।"

शकुनी कुछ उत्तर न दे सका और सेवक को दीपक ज-

जाने का आदेश किया। सेवक दीप जलाकर फिर बाहर चला गया।

सतीशचन्द्र ने फिर कहा कि "शकुनी, मैंने तेरेही कहने से इतना काम किया परन्तु उसका फल क्या हुआ? मेरी पूर्व अवस्था तो हवा गई ही पर यह अवस्था भी अब नष्ट होती है। मैं तेरेही प्रेरणा से इस पाप में निमग्न हुआ अब तू क्या करने को लगा है? अब मुझ को छोड़ दे और कहीं जाकर डोल लगा। मैं भी अब इस घोर पाप के प्रायश्चित का यत्न करता हूं।"

शकुनी स्वामी की यह बात सुन कर विस्मित हुआ। उस ने जाना कि इस समय सतीशचन्द्र महा क्रोध में आसम हो रहा है। आखों में आंसू भर कर बोला—

"अपने स्वामी के गौरव काल में मैं उनके स्नेह भाजन होने की चेष्टा रखता था,—और अब, ईश्वर करे कि ऐसा न हो, यदि कोई अनिष्ठ घटना उपस्थित है तो मैं अपने प्रभु का चरण छोड़कर अनत नहीं जा सकता।"

सती।—"शकुनी! तेरी बातैं बड़ी मीठी हैं,—विधाता ने विष घट को क्षीर से भर रक्खा है।"

शकु।—मैं तो पापी अवश्य हूं यदि ऐसा न होता तो स्वामिभक्तिता का यही फल मिलता? यह कह कर शकुनी रोने लगा। सतीशचन्द्र देखकर कुछ शान्त हुए और बोले।

"मै यह जानता हूं कि तू सर्वदा मेरी उन्नति कि श्रांकांक्षा रखता है किन्तु पाप का मार्ग स्वभावतः विपद सम्पन्न रहता है। शकुनी। क्या इसके व्यतिरिक्त मेरी उन्नति का दूसरा उपाय नहीं था ?"

शकुनी ने देखा कि अश्रु प्रवाह निष्फल नहीं हुआ और धीमे स्वर से बोला कि "यदि प्रभु की भक्ति पाप कर्म है तो मै निसन्देह पापी हूं किन्तु इस को छोड़ कर दूसरा पाप तो मैंने नहीं किया।"

सती।—"तूने नहीं किया—वंग चूड़ामणि राजा समर सिंह के विनाश को परामर्श किसने दी थी?"

शकु।—"राजा की श्राज्ञा से उन का दण्ड हुआ था?"

सती।—"अच्छा उन की जमीदारी किस ने पाया?"

शकु।—"सूबेदार ने अनुग्रह पूर्वक जो धन जिस को दिया उसने अपने सिर आंखों पर रक्खा।"

शकुनी अब मुझ को भुलावा मत दे। आज मेरी दिव्य दृष्टि खुल गयी है और मै अपना अन्तःकरण भीतर से इतना कलुषित और अन्धकार मै देखता हूं कि अब मेरा चित्त ठिकाने नहीं है। आज मेरी कन्या ने मुझ को उपदेश दिया है।" यह कह कर सतीशचन्द्र ने विमला से जो बात चीत हुई थी सब स्पष्ट रूप से कह सुनाया और कहा

कि "पाप के मार्ग में सर्वदा विपद रहती है और आज मैं उसी विपद सागर में निमग्न हो रहा हूं।"

शकुनी ने कहा कि "वंगदेश के राजाधिराज दीवान को क्या कन्या की बात सुन कर डरना चाहिए?"

सतीशचन्द्र ने कहा कि कन्या यदि कोई सत्य बात कहे तो क्या केवल कन्या की कही हुई बात होने से उस को ग्रहण न करना चाहिए? पाप पथ में सर्वदा विपद है यह मै भली भांति जान गया।"

शकु।—"यदि आज्ञा हो तो कुछ कहूं, आप को क्या विपद पड़ी है मै जाना चाहता हूं?"

सती।—"आज ६ वर्ष हुआ जब राजा टोडरमल पहिली वेर वंग और विहार देश जय कर के कटक के समीप दाऊदखां से सन्धि कर के दिल्ली को फिर गए उसी के थोड़े दिन पीछे पुण्यात्मा समरसिंह मेरे द्वारा मारेगये और यह पाप कर्म केवल तेरेही परामर्श से हुआ।"

शकु।—"वंग और विहार के सेनापति मनाइम खां की आज्ञा से समरसिंह मारा गया।"

सती।—"यह सत्य है किन्तु उस के मूल कारण हमी लोग थे। उसके दो वर्ष पश्चात जब राजा टोड़रमल ने राजमहल के युद्ध में दाऊद खां को परास्त कर के मारा और दूसरी बार वंग देश को जय किया समरसिंह

के मृत्यु विषय कितना झूठ बोलना पड़ा क्या तुझ को भूल गया ?"

शकु।—"फिर ?"

सती।—"फिर बंग देश में दो सूबेदार हुए उनमें से हुसेन कुली खां से तो यह बात बड़े यत्न से छिपायी गयी और मुजफ्फर खाँ अपने काम में व्यस्त था इस कारण अभी तक प्राण बचा रहा। अब टोडरमल फिर सेना पति और सूबेदार होकर मुंगेर में आए हैं अब बचने का कोई उपाय नहीं है।"

शकु।—"जिस यत्न द्वारा इतने दिन यह बात छिपी रही अब क्या वह यत्न फली भूत न होगा ?"

सती।—"उस धोखे में हुसेन कुली मुजफ्फर खां आगये परन्तु टोडरमल के साथ अब कोई युक्ति न चलेगी। तू राजा टोडरमल को जानता नही।"

शकु।—"यह दूरदर्शी राजा भी एक बेर इसी युक्ति करके परास्त हुआ था।"

सती।—"यह बात सत्य है किन्तु उस बेर वे केवल एक दो महीने के लिये आये थे, इस बेर सूबेदार हो कर आते हैं और अनेक दिन यहाँ रहेंगे। शकुनी अब निषेध करना निष्फल है, मैं सब वृत्तान्त उनसे कह दूंगा उन्हो ने एक बार क्षमा किया है सम्भव है कि फिर

क्षमा करें। फिर मैं इस असार संसार में न रहूंगा—योगी बन कर इस महा पाप का प्रायश्चित करूंगा।"

शकु।—"ऐसा करने से भी आप इच्छा पूर्वक संसार त्याग नही कर सकें। प्रियसुहृद समरसिंह के हत्याकारी को राना टोडरमल तुरन्त जल्लाद द्वारा हत करावेंगे।"

यह व्यंग वचन सुन कर सतीशचन्द्र के मर्म्म स्थान में चोट लगी किन्तु कुछ बोले नही। अपने मन में विचार किया कि शकुनी की बात सत्य है। गुप्त कथा के छिपे रहनेकी सम्भावना तो है किन्तु प्रकाश होनेसे प्राण रक्षा की सम्भावना नही है। कुछ काल सोच कर बोले—

शकुनी! तू मुझ से भी महा पापी है किन्तु यद्यपि तू साक्षात पाप स्वरूप है तथापि तेरे परामर्श अवलम्बन व्यतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है, तेरा तर्क सही है।"

शकुनी।—"मैं आप के संग तर्क नहीं करता, किस का प्राण भारी है जो बंग देश के दीवान से विरुद्ध हो कर सूबेदार से जाकर मिलेगा? हे स्वामी! मेरी बातों को सुनो जो विषय छ वर्ष पर्यन्त छिपा रहा वह अब प्रकाशित न होगा। मैं प्रण कर के कहता हूं कि यदि इस विषय को छिपा न रक्खूं तो फिर आपके सामने मुंह न दिखलाऊं।"

आशा का बड़ा चमत्कार प्रभाव है। जिस आशा कर के मनुष्य को अनेक प्रकार का सुख और आनन्द होता है उसी आशा से नाना भांति के दुःख भी उत्पन्न होते हैं। दुःख के समय आशा कोमल मन कर चित्त को ढांढस देती है और सुख के समय वही आशा दुःखप्रद भी हो जातीहै और मनुष्य का हृदय भी विचित्र है कि आशा के लोभ में फंस जाया करता है। विपद काल में, पीड़ा के समय, और दुःख के समय हृदय में धर्म का भय उत्पन्न होता है किन्तु विपद दूर होते ही, पीड़ा शान्त होते ही वह भय धीरे २ दूर हो जाता है। देखो अभी सतीशचन्द्र को विपद की आशंका हो रही थी। पाप से घृणाऔर धर्म का प्रादुर्भाव हो रहा था इतने में। आशा ने आकर कान में कहा कि 'डरते क्यों हो? विपद कहां है? क्यों व्यर्थ चित्त को दुखी करते हो?" इन्हीं बातों में भूल कर सती शचन्द्र ने अपने मन में विचार किया कि क्या ऐसा सम्भव नहीं है कि विपद न आवै और वह भय दूर हो गया, उसी के संग धर्म का भय भी जाता रहा। मनुष्य के हृदय में विपद का भय जैसा प्रबल होता है यदि धर्म का भयभी उसी प्रकार प्रबल होता तो संसार में इतना दुःख क्यों होता?

कुछ काल सोच कर सतीशचन्द्र बोले "शकुनी! मै तेरे

ही ऊपर छोड़ता हूं बता तो विपद मोचन का कोई शीघ्र उपाय है ?"

शकुनी समय विचार कर बोला, शीघ्र हो या विलम्ब किन्तु गुप्त कथा के प्रकाश होने की कोई सम्भावना नहीं है और यदि मान लिया जाय कि विपद आवै भी तो क्या ऐसे समय में आप ऐसे महापुरुष को भय करना चाहिए ? बंग देश में आप के यश और साहस की कौन प्रशंसा नहीं करता ? आप की सी क्षमता किस की है ? आप के ऐसा गौरव किस का है ? आप के ऐसा अधिकार किस का है ? एक कन्या की बात पर यह सब परित्याग कर देना क्या बंग देश के राजाधिराज दिवान महाशय को उचित है ? मैं आप को कोई उपदेश नहीं दे सक्ता, आप स्वतः विचार कर देखिये कि इस देश में आप को परामर्श देने वाला कौन है?"

सतीशचन्द्र ने इन बातों का कुछ उत्तर नहीं दिया। मन में सोचने लगे कि "क्या मै यथार्थही उन्मत्त हो गया— कन्या की बातों से डर गया ?" यह सोचते २ मन में लज्जा मालूम होने लगी। शकुनी ने उन का मुह देख कर आन्तरिक भाव जान लिया, मन में कहने लगा वाह ! क्या अभी शकुनी के हाथ से छूटोगे ? अभी हुआ क्या है ? और प्रकाश में बोला "रुद्रपुर में जो आप ने चर भेजे थे उन का कुछ समाचार मालूम हुआ ?"

सती।—"नहीं, उसी की तो विशेष चिन्ता है, सुनता हूं कि समरसिंह की विधवा सामान्य स्त्री नहीं है। टोडरमल के देश में आने पर वह बड़ा बखेड़ा खड़ा करेगी।"

शकु।—"उस का कुछ भय नहीं है। टोडरमल के आने के पूर्वही समरसिंह के वंश का मुह बन्द हो जायगा।"

सती।—"तो क्या जो चर हम लोगों ने भेजा है वे समरसिंह की विधवा को ले आये?"

शकु।—"नहीं, अभी तक तो नहीं लाये किन्तु शीघ्र कार्य सिद्ध होने की सम्भावना है।"

सती।—"अभी तक क्यों नहीं लाये?"

शकु।—"मैंने सुना है कि उन सबों को दो एक दिन आगे ही खबर मिल गयी थी, उसी पगली ने बता दिया था।"

सती।—"वह चुड़ैल हमारे सब कामों में बाधा करती है उस को पकड़ नहीं मंगा सकते?"

शकु।—"कुछ कठिन बात तो नहीं है, किन्तु उसका कुछ पता नहीं मिलता। जान पड़ता कि निश्चय उस को कुछ पैशाचिक शक्ति है यदि ऐसा न होता तो हम लोगों की गुप्त बातों को वह कैसे जान लेती है, सौ २ दूत फिरते हैं किन्तु उसका पता नहीं पा सके?'

सती।—"तो अब क्या किया जाय?"

शकु।—"आप चिन्ता न करें, थोड़े ही दिनों में सब का

मुह बन्द हो जायगा। अब रात थोड़ी है, आप चल कर सोवैं शकुनी के पंजे से कोई बच नही सक्ता।"

यह कह कर शकुनी चला गया किन्तु जाती समय हो एक बेर सतीश्चन्द्र की ओर देख कर मन में कहता गया "और तू भी नही बचैगा।"

सतीश्चन्द्र भी अपने शयनागार में गये। सन्ध्या से जो अपूर्व भाव मन में उत्पन्न हुआ था उसी का विचार करने लगे। उन्नत चरित्र विमला का तिरस्कार अपने हृदय की भीरुता, पूर्व कथा स्मरण, शकुनी का सन्तोष, समरसिंह की विधवा और पगली इत्यादि सम्पूर्ण बातें एक२ कर के ध्यानागार में नाचने लगीं। थोड़ी देर में निद्रा आगयी।

आठवां परिच्छेद।

धूर्त्त धूर्त्त

Curse on his perjured arts ! dissembling smooth ?
Are honor, pity, conscience, all exiled ?
Is there no pity, no relenting truth ?

Burns.

दूसरे दिन प्रातः काल दिवान जी बड़े धूम धाम से मुंगेर को चले। जब कन्या से बिदा होने को गये उस ने

कहा, "हे पिता आप तो जाते हैं मुझ को भी आज्ञा दीजिये तो महेश्वर के मन्दिर में जा कर आप के प्राण रक्षा के निमित्त महादेव की आराधना करूं। मैं तीन दिन वहां रहूंगी।" पिता ने आज्ञा दे दी और वहां से चले। कन्या की आंखों से आंसू टपकने लगे और जब पिता चल गये उन की ओर देख मन में कहने लगी "इस जगत में आप के व्यतिरिक्त मेरा कोई नहीं है, आप के पीछे मुझ को संसार असार और शून्य है। ईश्वर आप को कुशल से रक्खे और धर्म में रति दे। आप का चरित्र स्वभावतः उदार और कपट रहित है किन्तु शकुनी से आप से बुरी लग्न में भेंट हुई है।"

शकुनी से बिदा होने के समय उस ने कहा "आप आगे चलिये मैं भी समरसिंह की विधवा को उपयुक्त स्थान में रख और अन्यान्य समुचित कर्म समापन कर के आप के पीछे आता हूं।" सतीशचन्द्र ने कहा कि "जो उचित हो सो कर।" मैं तेरेही भरोसे हूं।" शकुनी ने कहा "सेवक की बुद्धि जहां तक काम करैगी मैं आप के हित साधन में त्रुटि न करूंगा।" जब सतीशचन्द्र बाहर गये शकुनी ने मनमें कहा "शकुनी की बुद्धि तीक्ष्ण है कि नहीं अभी जान पड़ेगा, बहुत बिलंब नहीं है।"

शकुनी से और सतीशचन्द्र से आठ वर्ष से परिचय है।

जब इन दोनो से पहिले पहिल भेट हुई शकुनी बीस वर्ष और सतीशचंद्र चौबीस वर्ष के थे। शकुनी देखने में सुन्दर था और छोटे पन से सतीशचंद्र के यहाँ पालित हुआ क्योंकि एक तो ब्राह्मण का लड़का था दूसरे अनाथ। सतीशचन्द्र ने जिस दिन से उस को अपने घर में रक्खा था मानो साँप का पोआ पाला था।

तीव्र बुद्धि शकुनी ने धीरे २ सतीशचंद्र के आन्तरिक भाव को जान लिया, उस के दुर्द्दमनीय उच्चाभिलाष को पहिचान लिया और दिन प्रति उस जलती हुई आग में आहुति देने लगा, आहुति पाने से वह अग्नि और भी द्विगुण हुई और ज्वाला आकाश तक पहुची। इसी मद में उन्मत्त हो कर सतीशचन्द्र ज्ञान शून्य हो गये, धर्म्माधर्म्म का भेद जाता रहा आंखों के आगे पर्दा पड़ गया।

शकुनी को अवसर मिला क्योंकि अन्धे को कुटिल मार्ग में ले जाना कठिन नहीं है, अच्छी बात छोड़ कर बुरी बात सिखलाने लगा, सत मार्ग छोड़ असत मार्ग पर चला अन्त को ऐसे कीचड़ में ले जा कर डाला कि जहाँ से निकलना मनुष्य पक्ष में असम्भव था। तब सतीशचंद्र की आंख खुली और क्रमशः भ्रम उत्पन्न होने लगा। किंतु फिर तो पश्चाताप को छोड़ कोई उपाय शेष नहीं रह गया। शकुनी की इच्छा पूरी हुई—प्रभु को सम्पूर्ण रूप से अपने हाथ में कर लिया।

शकुनी के घर में आने के थोड़ेही दिन पीछे सतीशचन्द्र ने उस की तीक्ष्ण बुद्धि का परिचय पाया था। उस के विनीत भाव से सन्तुष्ट थे और उसके परामर्श से प्रसन्न रहते और नित्यशः उस से स्नेह करते थे अर्थात उस को अपने पुत्र के सदृश प्यार करते थे। कभी २ उसको दत्तक पुत्र बनाने की इच्छा करते और कभी २ अपनी कन्या से विवाह करने की भी चेष्टा करते थे। किन्तु यह सोच कर कि निराश्रय ब्राह्मण को कन्या देने से मान हानि होगी उस को गृह जामाता नहीं बनाया। धीरे २ कन्या का वयक्रम बढ़ने लगा किन्तु कुलीन की कन्या की अवस्था बढ़ने से कोई हानि नहीं होती। विशेषतः स्त्री के मर-जाने से सतीशचन्द्र को उस्से अधिक प्रीत हो गयी थी, विवाह होने पर वह अपने घर चली जायगी और गृह शून्य हो जायगा अतएव इस विषय में उस का मन स्थिर रहा और अन्त को यही संकल्प दृढ़ होने लगा कि शकुनी को कन्या दान देकर उसको अपने घर में रक्खैं॥

पीछे जब पापपंक में पड़ कर उस की आंख खुली तो फिर यह संकल्प दूर हो गया; पाप ऐसा घृणित पदार्थ है कि एक पापी दूसरे को देख नहीं सक्ता। शकुनी सतीशचन्द्र की आंखों में गड़ने लगा। उन्नत चरित्र धर्म परायण कन्या कुटिल पापात्मा शकुनी के हाथ लगेगी यह ध्यान

दुःख दाई बोध होने लगा। मन में बिचार किया कि "मैं तो पापी हुई हूं किन्तु पाप की भी तो सीमा है। यद्यपि मैंने धर्म परायण समरसिंह की हत्या तो की किन्तु अपनी आंख की पुतली बिमला को नर्क में नहीं डाल सका। मेरा जो होना हो सो हो परन्तु बिमला धर्म पथ परित्याग नहीं करेगी।" सतीशचन्द्र इस प्रकार बिचार करते थे किन्तु शकुनी से कुछ नहीं कह सके थे क्योंकि यदि वह जाकर सूबेदार से कुछ कह दे तो प्राण बचना कठिन था॥

चतुर्वेष्ठित दुर्ग के एक प्रशस्थ दालान में शकुनी अकेला टहल रहा था और चारो ओर के शस्य सम्पन्न खेतों की बहर ले रहा था। नीचे यमुना नदी कल कल करती हुई बह रही थी—कभी २ दुर्गस्थित अन्तःपुर की ओर भी उस की दृष्टि जाती थी। चेहरे पर उस के आनन्द के चिन्ह दीख पड़ते थे,—स्वार्थ साधन होने पर स्वार्थी लोगों को जैसा आल्हाद होता है वैसेही चिन्ह उसके चेहरे पर अंकित थे। मन में चिन्ता करता था कि—

"यह विस्तीर्ण जमीदारी, प्रशस्थ दुर्ग और अन्तःपुर वासिनी समदशवर्षीया सुन्दरी शीघ्रही नवीन स्वामी के हस्त गत होगी; समरसिंहकी प्रजा और सतीशचन्द्रकी प्रजा शीघ्रही शकुनी का नाम उच्चारण करेगी, दुर्गपदवाहिनी

यमुना भी शकुनी का यश गान करेगी। और तू विमला! मुझ से घृणा करती है? किन्तु अब वह दिन गये; चाहे तेरी इच्छा हो या न हो अब तो मुझ को स्वामी कर के मानना ही पड़ेगा तिसपर भी यदि घृणा करेगी तो इसी पतंग की भांति तुझको मींज कर फेंक दूंगा। मै प्रेम के कारण तुझ से विवाह नही करता, प्रेम तो लड़कों का खेल है। कुछ तेरे रूप लावण्य से मोहित होकर तेरा पाणिग्रहण नही करता—यहां रूप लावण्य का क्या काम। और यदि हो भी तो क्या 'राजा के घर में मोती का काल?' फिर क्यों न हो? सतीचन्द्र! देखो आज तुम को यम मन्दिर में भेजता हूं—इतने दूत नियोजित हुए हैं कि अब निश्चय सब बात प्रगट हो जायगी,—और शकुनी का अपराध भी तुमारे ही सिर आवेगा। फिर? फिर सतीचन्द्र के पीछे उसका दामाद अधिकारी होगा। तीक्ष्ण-बुद्धि वालों की सर्वदा जय होती है।"

इस प्रकार चिन्ता करते २ शकुनी ने देखा कि विमला महल की खिड़की पर अभी तक बैठी है। यद्यपि पिता तो चले गए किन्तु वह उसी ओर देख रही थी। रोते २ मुंह की कान्ति कुछ मलिन होगयी, आँखों में अभी तक पानी भरा है, ओठ कांप रहे हैं और छाती फूल आयी है। अंचल आंसू से तर है। विमला की समस्त आकृति विषाद कर

के और भी उन्नत दीखती थी, उज्ज्वल मुख मंडल और भी उज्ज्वल रक्त वर्ण हो रहा था ॥

यह देख कर शकुनी भी बाहर की दालान की खिड़की पर खड़ा होकर आंखों से आंसू बहाने लगा। दुःख की सीमा न थी, आंसू तर तर जारी थे। विमला ने आंख उठा कर देखा कि शकुनी खड़ा है। क्रोध से भृकुटी चढ़ा कर वहां से हट गयी और विमला के मन हरन का पहिला उद्योग शकुनी का निष्फल हुआ ॥

नवां परिच्छेद ।

उपासक उपासक ॥

Enamoured, yet not daring for deep awe
To speak her love:—and watched his nightly sleep,
Sleepless herself, to gaze upon his lips,
Parted in slumber, whence the regular breath
Of innocent dreams arose: then when red morn
Made paler the pale moon, to her cold home
Wildered and wan and panting, she returned

Shelly.

चतुर्वेष्टित दुर्ग से पांच सात कोस इच्छामती नदी के तीर पर महेश्वर का प्रसिद्ध मन्दिर था। सन्ध्या समय शि-

मला डोली पर चढ़ कर इसी मन्दिर को चली, उस के संग कई एक बूढ़ी स्त्रियां और अनेक दास दासी भी थीं, अर्थात् बंग देश के दीवान की एक मात्र कन्या को जैसे जाना चाहिए विमला उसी प्रकार महेश्वर के मन्दिर को चली। उस की तो इच्छा थी कि केवल दो चार बूढ़ी स्त्रियों को संग लेकर सामान्य रूप से जाय किन्तु पिता की आज्ञा ऐसी न थी। महेश्वर का मन्दिर बड़ा भारी स्थान था जहाँ बहुत २ दूर से लोग आते जाते थे। वृद्ध स्त्रियाँ अपने पुत्र कन्या के कुशल कामना से आती थीं, युवा पुत्र की लालसा से आती थीं, रोगी रोग शान्ति की कामना से आते थे, योधा जय लाभ की इच्छा से, कृपिण धन की लालच से, विद्यार्थी विद्या की लालसा से, इस प्रकार नाना देश के लोग नाना प्रकार की कामना से महेश्वर के दर्शन को आते थे, धन भी इस मन्दिर में बहुत एकत्रित हुआ था और गृह भी एक से एक नित नये बनते जाते थे। बीच में मन्दिर था और चारो ओर सुन्दर स्वच्छ सभामंडप बना था। यात्री लोग इसी सभामंडप में आकर टिका करते थे और उस्से जो कुछ आय होता था वह उसी मन्दिर के भण्डार में जाता था॥

यह स्थान बहुत चौड़ा और गोल बना था और बीच में आंगन भी बहुत प्रशस्त था। उसी के बीच में महेश्वर

का मन्दिर था, मन्दिर में जाने के लिये चारों ओर चार सिंह द्वार थे। गाड़ी वा पालकी इसी द्वार तक जाती थी भीतर नहीं जा सकी थी। इस द्वार के भीतर पहुंचते ही धनमान औ गौरव का भेद नहीं रहता था। राजा "रंक" धनी निर्धन, गृहस्थ सन्यासी सब समान थे क्योंकि धर्म के सामने क्या ऊंच क्या नीच, क्या धनी क्या दरिद्र सब बराबर हैं।

यद्यपि भीतर का आंगन बहुत चौड़ा भी था किन्तु कभी २ इतने यात्री एकत्र होते थे कि तिल धरने को स्थान नहीं रहता था। केवल यात्री ही थोड़े ही रहते थे खे-लौना बेचने वाले, अलंकार बेचने वाले, मिठाई बेचने वाले और वस्त्र बेचने वाले इत्यादि अनेक दुकान्दार और वणिक भी मेले में जुटते थे। इस पवित्र स्थान में स्त्रियां पुरुषों के सन्मुख होने में संकोच नहीं करती थीं; सामा-जिक नियम यहां प्रचलित नहीं था।

विमला को मन्दिर में पहुंचते २ रात हो गयी। आ-हारादि करते कराते आधी रात हुई। संगिनियों ने वि-मला को उस रात पूजन करने से निषेध किया किन्तु उस का हृदय तो चिन्ता से पूर्ण था, उन्ने कहा कि हम बे पूजन किये नहीं सो सकते और यदि सोऊं तो नींद नहीं आवेगी। यह कह कर विमला अकेली धीरे २ मन्दिर

हैं और इतना कोलाहल होता है कि जिस का वर्णन नहीं हो सका, संध्या होते २ फिर जन समूह घटने लगता है और रात को सम्पूर्ण सूनमान और शान्त हो जाता है। विमला ने विचार किया कि हम लोगों के जीवन की भी यही गति है,—शैशव में तो मन की वृत्ति धीर रहती है, यौवनावस्था में अति दुर्दन्त और प्रबल हो जाती है और फिर बुढ़ापे में उस का तेज घट जाता है। तब फिर इस विडम्बना का क्या कारण है? इतने दर्प, गर्व, कौशल और मन्त्रणा का क्या कारण? इतना क्रोध, इतना लोभ, और इतने उच्चाभिलाष का क्या कारण? इस का कारण कौन बतला सका है? विधाता के प्रपंच को कौन जान सका है? जो पतंग कि एक क्षण में भस्म हो जाता है उस को आकाश में उड़ने का क्या प्रयोजन? जो ओसकणिका मनुष्य के पद के नीचे पड़ कर विनाश हो जाता है अथवा सूर्य की कीर्ण द्वारा सूख जाता है उस में इतनी ज्योति क्यों होनी चाहिये?

इसी भांति चिन्ता करते २ अर्ध रात्रि सूचक घंटनाद विमला के कर्ण गोचर हुआ और उस की प्रतिध्वनि दशो दिशा में छा गयी। उस घंटा की गूञ्ज समाप्त नहीं होने पायी कि आधी रात (शयन की पूजा) प्रारम्भ हुई और भजन होने लगा। गायक गण ज्यों २ ऋषभ गान्धार

आदि सातों सुर अलापते थे उसी प्रकार उपासकों का हृदय भी इन्ही भूग होता था। विमला ने मन्दिर की ओर देखा जान पड़ता था कि उस का शिखर गगन स्पर्शहित उन्नत सिर खड़ा है,—गायकों के सुर में मिल कर आप भी त्रि-हवन्त हो कर गाने लगी और अन्तः करण पवित्र प्रेम और उल्लास से परिपूर्ण हो गया और यही यथार्थ पूजन है। गला फाड़ २ कर ईश्वर का नाम लेने से पूजा नही होती—प्रकृति की शोभा देख कर, विशुद्ध पवित्र चिन्ता में निमग्न हो कर यदि हृदय में पवित्र प्रेम और उल्लास का प्रादुर्भाव हो तो उसी को आन्तरिक उपासना कहते हैं, यदि इस से हृदय शान्त हो तो उसी को मन की शान्ति कहते हैं।

विमला शीघ्र मन्दिर में घुस गयी तो क्या देखती है कि एक ओर गायक और बजनिये बैठे भजन गा रहे हैं किन्तु सत्य उपासक को जो रस उस गीत का मिलता था वह गवैयों को कहां मिल सका है! एक ओर दासी लोग नाच रही थीं किन्तु क्या सब शुद्ध प्रेम बश नाचती थीं? कदापि नही। अन्त को विमला पूजन स्थान पर पहुची।

पूजा का स्थान महादेव की प्रतिमा के समीपही था। वहीं पुजारी लोग एकत्र होते थे किन्तु जब विमला पहुची उस समय वहां कोई नहीं था और जो कोई थे भी वह

अपनी २ उपासना में व्यस्त थे। मन्दिर के महन्त चन्द्रशेखर उस समय निकटस्थ ग्राम में गये थे। विमला पूजा करने लगी।

प्रायः एक पहर पूजा में व्यतीत हुआ। आंख बन्द कर के एकाग्रचित्त हो कर विमला पूजन करती थी और अन्तःकरण के शुद्ध मनोकामना सूचक चिन्ह वदन मण्डल पर प्रकाश मान हो रहे थे। न तो उस के माता थी, न भाई था, न बहिन, न स्वामी, न बन्धु, कोई नहीं था, केवल एक पिता भक्ति के आधार थे, वही स्नेह के पात्र थे, वही परम बन्धु, वही पूजनीय देवता। अतएव विमला का अपार स्नेह स्रोत, अपरिसीम भक्ति स्रोत, पवित्र प्रेम स्रोत, अनिर्वचनीय श्रद्धा स्रोत उसी एकमात्र आधार की ओर धाव मान हुआ। पिताके दुःख से दुःख, पिताके आनन्द से आनन्द, पिता के विपद की चिन्ता, पिता के सम्पद का भरोसा—विमला का जीवन केवल पिता के जीवनाधार था। उसी पिता के मंगलार्थ प्रार्थना करते २ विमला का हृदय कपाट खुल गया और भक्ति रस से परिपूर्ण हो गया। उपासना समापन कर के साष्टांग दण्डवत किया और फिर हाथ जोड़ कर खड़ी हुई। उस समय उस का हृदय संपूर्ण रूप चिन्ता शून्य और शान्त था।

इस के उपरान्त विमला औत्सुक्यफुल्ल लोचन से

मन्दिर के चारो ओर देखने लगी। देव मूर्ति हेम मय आभरण से सुसज्जित थी, स्थान २ पर पुष्पों की ढेरी लगी थी। बहु दिनान्तर मन्दिर में आने से सम्पूर्ण वस्तु नवीन देख पड़ती थी। कभी सुनिर्मित प्रशस्त अट्टालिका पर आंख जाती थी, कभी स्वर्ण मंडित पुष्पासंहात खम्भ माला में चित्त लोभाय रहता था, कभी दीवारों पर सोने रूपे और हाथी दांत की चित्रकारी में मन फंस रहता था। इसी प्रकार चारो ओर फिर २ कर मन्दिर की शोभा देख रही थी और यदि कोई मिल जाता तो उस से उस देवस्थान का पूर्व वृतान्त जिज्ञासा करने लगती। उस समय भीड़ भाड़ तो थी नहीं इस कारण उस के इस आनन्द भोग में कोई बाधा नहीं हुई।

एक कोने में एक उपासक पड़ा सो रहा था। एका एकी विमला की दृष्टि उस पर जा पड़ी, उस की अलौकिक तेज पूर्ण सुन्दरता को देख कर मन में विस्मय उत्पन्न हुआ और अटल लोचन से उसी ओर देखती रही। उस युवा का ललाट यद्यपि चिक्कन और प्रशस्त तो था किन्तु सुषुप्त्याव-स्था में भी मानो किसी गाढ़ चिन्ता अथवा दृढ़ प्रतिज्ञा के कारण कुंचित हो रहा था। आंखे मन्द थीं, और मुंह की आभा उज्ज्वल और वीर दर्प प्रकाशक। उन्नतस्कंध और वक्षस्थल के ऊपर यज्ञोपवीत पड़ा था, बाहु युगल प्रलम्ब

और मांगल थे। उस की नख शिख शोभा देख कर विमला को बोध हुआ कि यह कोई वीर पुरुष है वीर व्रत धारण कर के दूर देश को जाता है, मार्ग में मन्दिर देख कर दर्शन हित चला आया है, थकाहट के कारण अथवा दूसरा विश्राम स्थान न मिलने के कारण यहीं आकर सो रहा है। विमला के अबला हृदय में भी वीरता का लेश था अतएव युवक की वीर आकृति देख कर उस का शरीर कंटकित हो आया। किन्तु ऐसा उस का मन क्यों चलायमान हो गया कुछ ज्ञान नहीं पड़ा। जै वार विमला उस पुरुष को देखती थी उतनीही नव अभिलाषा उत्पन्न होती थी, शरीर अवसन्न हो गया और चित्र लिखित इव उसी की ओर देखती थी।

पाठक महाशय! कभी आप को प्रथम दर्शन से प्रेम हुआ है? कभी किसी मन मोहनी को देख कर कामशर का आघात हुआ है? कभी आप का मन किसी मृग नयनी के प्रेमपाश में फसा है? कभी किसी मदनमदमतवाली को देख कर आप का चित्त चलायमान हुआ है? यदि हुआ है तब तो आप विमला के अन्तः करण का भाव कुछ अनुभव कर सक्ते हैं। हम को तो विधाता ने ऐसा अवसर नहीं दिया अतएव हम उस की मनोगति को कुछ नहीं समझ सक्ते, हमको तो वह अबोध बालिकाही बोध होती है।

इतने में युवक की निद्रा टूट गयी, आंख खोल कर देखा तो आगे एक परम रूप लावण्य संयुक्त प्रेम की प्रकाका खड़ी है। दोनों की चार आंखें होतेही विमला को ज्ञान हो गया और अनजाने पुरुष की दृष्टि बचाने के लिये लज्जा से सिर नीचा कर लिया और धीरे २ मन्दिर से बाहर निकल गयी॥

भोर हो गया, ! प्रातःकाल की प्रथम कीर्ण विमला के मुंह पर पड़ी और लोग इधर उधर आने जाने लगे। विमला को लोगों के सामने पैदल चलने का संयोग तो कभी हुआ नहीं था शरीर को सिकोड़ कर जल्दी से अपने डेरे की ओर चली, यदि स्त्रियां पूछेंगी कि इतने कांल तक क्या करती रही तो क्या उत्तर देगी—क्या अभी तक पूजा करती रही ?

विमला के मन में अनेक प्रकार की चिन्ता होने लगी, यह वीर पुरुष कौन है ? किस व्रत के कारण सारी रात पूजा करता रह गया ? ऐसे भाग्यशाली पुरुष को क्या संकट पड़ा ? क्या मै उसका कुछ उपकार नहीं कर सक्ती ? धन, ऐश्वर्य, भूमि मेरे किसी वस्तु का अभाव नहीं है तो क्या मै उस की कुछ सहायता कर सक्ती हूं ? इसी अवसर पर ज्ञान ने आकर कहा "रे अज्ञान ! यह पुरुष तेरा कौन है जो तू उस की सहायता करने को उद्यत होती है ? इस

का उत्तर विमला नहीं दे सकी और चिन्ता को परित्याग किया।

थोड़ी देर में फिर सोचने लगी—इस का घर कहाँ है? उस के माता पिता कौन हैं? क्या उस का विवाह हुआ है? फिर ज्ञान ने कहा, हुआ है वा नहीं तुझ को क्या? इस प्रश्न का भी उत्तर नहीं दे सकी। यदि विमला अपने अन्तर्गत इच्छा को जानती और उत्तर दे सक्ती तो कहती कि वे हमारे प्राण के अंश हैं।

दसवां परिच्छेद।

प्रेमी प्रेमी।

Amid the jagged shadows
Of mossy leafless boughs,
Kneeling in the moonlight,
To make her gentle vows;
Her slender palms together prest,
And heaving sometimes on her breast;
Her face resigned to bliss or bale,-
Her face, O! call it fair not pale,-
And both blue eyes more bright than clear,
And each about to have a tear

Coleridge.

समस्त रात्रि जागरन करने के पश्चात् विमला अपने डेरे में जा कर लेट रही किन्तु दिन को भली भांति निद्रा नहीं आयी, ज्यों ही आंख लगी कि अनेक प्रकार का स्वप्न दिखायी देने लगा—वही देव मन्दिर, वही चान्दनी रात, वही गीत गान, वही उपासक, वही युवा पुरुष, अर्थात् जो २ वस्तु रात्रि को देखा था स्वप्न में दिखायी देने लगी, अंत में जो स्वप्न हुआ वह अति ही भयानक था,—ऐसा बोध हुआ कि आप पूजन कर रही है किन्तु जो पुष्प महेश्वर के चरण पर चढ़ाना चाहिये उस को मकरध्वज के चरण पर चढ़ा रही हूं, जै बार महेश्वर के पदारविन्द के छूने का यत्न करती है उतनही बार कन्दर्प का चरण हाथ में आता है, किसी यत्न से महेश्वर का पूजन नहीं करने पाती, यह देख कर महेश्वर को क्रोध हुआ और आज्ञा दिया कि "इस स्त्री का अंतः करण पाप कर के कलुषित है, इस का हृदय विदीर्ण करो।" और उसी क्षण उस अपरिचित युवक ने तरवार से "कलेजा" निकाल कर खंड खंड कर के दूर फेंक दिया और विमला चिल्ला उठी।

उठ कर देखा तो घर में घाम आ गया था; आंगन में लोग भर गये थे और चारो ओर जनरव हो रहाथा। रात के जागने से आंखों में श्यामता छा गयी थी और स्वप्न के प्रभाव से मुंह पर स्वेतता आ गयी और ग्रीव और वक्ष

स्थल में पसीना हो गया था। विमला ने पहिले अपने विखरे हुए बालों को सुधारा और उठ खड़ी हुई, मन में विचार करने लगी कि "पाप का उचित दंड हुआ, कहावत है कि "आये थे हरि भजन को ओटन लगे कपास" घर से पिता के मंगलार्थ मन्दिर में आयी किन्तु यहाँ आकर अपरिचित पुरुष के चिन्ता जाल ने आ घेरा इसी कारण यह अनिष्ट दर्शन स्वप्न में दिखायी दिया, मैं अब इस चिन्ता को त्याग करूंगी—जड़ मूल से त्याग करूंगी।" यह कह कर बाहर चली गयी।

उस दिन दिन भर विमला बड़ी उदास रही, स्वप्न चिन्ता बार २ मन को व्यग्र करती थी, विचार किया कि "यदि मैं पापी हूं तो उस महात्मा ने क्यों मेरा हृदय छेदन किया? किन्तु कुछ स्थिर न कर सकी, और ऐसा कोई संग में नहीं था जिस से अपने मन की चिन्ता प्रगट करती अतएव आगम की बात कुछ मालूम नहीं होती थी।

सन्ध्या समय फिर विमला पूजन करने को गयी, यद्यपि दिन भर उस का मन उदास रहा किन्तु पूजन के समय कुछ स्थिरता आगयी और द्विगुण भक्ति के साथ महेश्वर की आराधना करने लगी। पहिले पिता के मंगलार्थ प्रार्थना किया और फिर अपने पाप मोचन की कामना प्रगट की। विमला की महेश्वर में परम भक्ति थी, पूजा

करती २ उस के नयनों से प्रेम वारि बहने लगा अन्त को साष्टाङ्ग प्रणाम करके बाहर चली।

उस समय फिर उस अपरिचित युवक पर दृष्टि पड़ी किन्तु पहिली बेर की अपेक्षा इस बेर उस का मन स्थिर रहा। थोड़ी देर उस युवक की ओर देख कर मन्दिर से बाहर चली गयी।

युवक के मन में कुछ विस्मय हुआ दो दिन बराबर वह सुन्दरी उस को देख पड़ी और दोनों दिन आंखें लड़ाती हुई चली गयी, युवक को निश्चय था कि देव मन्दिर में भी कुलटा स्त्रियां प्रेम पाश फैलाने को आया करती हैं किन्तु विमला की आकृति देख कर इस बात का सन्देह नहीं होता था अतएव उस ने अपने हृदय में स्थिर किया कि जान पड़ता है कि इस को कुछ कहना है, पर लज्जा के कारण कह नहीं सकती है। पहिले तो मन में आया कि चल कर उस से पूछूँ किन्तु पराये घर की युवा स्त्री से कैसे बोल सकते थे, फिर दो दिन की बातों का ध्यान कर के सोचे कि "यदि मैं न कुछ बोलूं तो बात छिपीही रह जायगी और सम्भव है कि जिस कारण यह स्त्री मन्दिर में आयी है वह निष्फल हो जायगा।"

धीरे २ विमला के समीप जा कर बोले रानी! मैं कुछ तुम से पूछा चाहता हूं.यदि अपराध क्षमा हो तो कहूं?

BVCL 05789

मुझ को ज्ञान पड़ता है कि तुम मुझ से कुछ कहने की इ-च्छा रखती हो, यदि है तो कहो।"

उस युवा पुरुष की मधुर वाणी सुन कर विमला की प्रातःकालिक प्रतिज्ञा और सन्ध्या काल की स्थिरता जाती रही, शरीर कांपने लगा और सिर नीचा कर ठिठक रही।

जब युवक ने देखा कि विमला खड़ी है किन्तु कुछ उत्तर नहीं देती फिर कहा।

"तुम कहो, मैं सुनता हूं,—और यहां कोई नहीं है।" विमला से फिर न रहा गया और बहुत धीरे से बोली "आप का नाम क्या है?"

युवा ने उत्तर दिया,—"अभी नाम बतलाने योग्य न-हीं है,—आप मुझ को इन्द्र नाथ के नाम से पुकारिये।"

विमला ने फिर पूछा "आप के उपासना का कारण जान सक्ती हूं?"

इन्द्र।—"संक्षेप से कहता हूं सुनो—मैंने एक अनाथ आश्रम हीन स्त्री के सहायता का संकल्प किया है।"

विम।—"धन द्वारा सहायता नहीं हो सक्ती?"

इन्द्र।—"नहीं; किन्तु तुमारी मनोवृत्ति देख कर मुझ को बड़ा आनन्द होता है, ईश्वर तुमारी मनोकामना सिद्ध करे।"

विम।—"तब कैसे सहायता हो सक्ती है?"

इन्द्र ।—"विचार द्वारा, मै मुंगेर जाकर विचार की प्रार्थना करूंगा किन्तु तुम यह सब बातें क्यों पूछती हो ? क्या कुछ तुम को मालूम है ?"

विमला को मुंगेर का नाम सुन कर पिता का स्मरण हो आया, पिता की विपद का ध्यान आया और लज्जा जाती रही, तेज पूर्वक इन्द्रनाथ से कहा "जान पड़ता आप बड़े वीर हैं, यदि साहस हो तो इस किंकरी के एक उपकार साधन की प्रतिज्ञा कीजिये ।"

इन्द्रनाथ बोले "हम को साहस तो नही है किन्तु यथाशक्य यत्न करूंगा ।"

विम ।—"मुंगेर मे आप से वङ्ग देश के दिवान सतीशचन्द्र से भेंट होगी उन पर इस समय एक विपद आयी है आप को उचित है कि उन की रक्षा कीजिये ।"

इन्द्रनाथ के मुंह पर गम्भीरता छा गयी और मस्तक मे सलो पड़ गयी, मन मे विचार किया—यह स्त्री मुझ को पहिचानती है, महाश्वेता के आद्योपान्त वृत्तान्त को भी जानती है, और मेरे व्रत के विषय की भी भेदी है, उसी व्रत के तोड़ने का उद्योग करती है,—चिन्ता के कारण कुछ उत्तर नही दे सके । विमला ने फिर कहा—"आप चिन्ता क्यों करते हैं ? विपद ग्रस्त लोगों की सहायता करना वीर पुरुषों का मुख्य काम है और यदि आप ने उन

के विषय में कुछ और बात सुनी है तो वह सब मिथ्या है, वह सब शकुनी की करतूत है।"

इन्द्र।—"हम तुम्हारी बातों को भली भांति समझ नहीं सके; स्पष्ट कर के कहिये कि शकुनी कौन है?"

विम।—"शकुनी सतीशचन्द्र का साथी है। वही पामर कुल दोषों का कारण है,—सतीशचन्द्र वास्तविक निर्दोषी हैं। हे वीर पुरुष! इसी देव मन्दिर में प्रतिज्ञा करो कि तुम सतीशचन्द्र की सहायता करेंगे।"

यह सब बातें सुन कर इन्द्रनाथ भैचक से हो रहे—कुछ काल के अनन्तर बोले "यदि सतीशचन्द्र निश्चय निर्दोषी हैं तो मैं अपने प्राण पर्यंत उन की सहायता करूंगा किंतु यह तो बतावो कि तुमारा नाम क्या है? तुम कौन हो और क्यों कर मेरे उपासना और प्रतिज्ञा का कारण जान लिया?"

विमला मुसकिरा कर बोली "इन्द्रनाथ! आज्ञा हो तो आप के प्रश्न के उत्तर देने के पहिले एक बात पूछूं? आप ने अपना वंश तो नहीं बताया परन्तु यह तो बता सके हैं कि आप का विवाह किस वंश में हुआ है, क्या इस के बतलाने में भी कोई बाधा है?"

इन्द्र।"—अभी तो किसी से मेरा संयोग नहीं हुआ है—मैं क्वारा हूं।"

विमला का शरीर अनायास पुलकित होकर भर भरा आया।—क्यों, इस का कारण ज्ञात नहीं हुआ—आशा की लीला अपरम्पार है! विमला ने धीरे से उत्तर दिया कि "मुझ को भिखारिन के नाम से जानिये" और हंस दिया।

उस मन्द मुसकान को देख कर इन्द्रनाथ को और सब बातें भूल गयीं, बोले—

"भिखारिन! भला यह तो बतलावो कि तुमारी क्या भिक्षा है?"

न रत्नमन्विष्यति, मृग्यते हितत्।"

विमला का मुख लज्जा से और भी चमक उठा,-पलकें झुक गयीं—बदन रक्त वर्ण होगया। गद्गद स्वर से बोली—

"एक भिक्षा तो अपनी कह चुकी,—सतीशचंद्र की रक्षा; और विधाता यदि दिन दिखावेगा तो समय पाकर दूसरी भिक्षा भी प्रकाश करूंगी।"

यह कह कर विमला तुरन्त चली गयी, उस समय का चित्र इन्द्रनाथ के हृदय पटल पर खचित हो गया।

ग्यारहवां परिच्छेद।

नाविक।

How he heard the ancient helmsman
Chant a song so wild and clear,
That the sailing sea-bird slowly
Poised upon the mast to hear
Till his soul was full of longing,
And he cried with impulse strong,-
"Helmsman ! for the love of heaven,
Teach me, too, that wandrous song !"

Longfellow.

मुंगेर का वृहत दुर्ग गङ्गा के तीरपर बना है जिसके नीचे भागीरथी वेग पूर्वक बह रही है उसका वेग इतना प्रबल था कि यदि कोई काष्ट इत्यादि फेंक दिया जाय तो चूर २ हो जाता, मध्य २ इधर उधर के करारे टूट कर गिरते थे उस का इतना भयानक शब्द होता था कि तटस्थ जीव जंतु मारे भय के भाग जाते थे, गंगा के बीच में किसी २ स्थान पर रेत भी पड़ गयी थी जहां अनेक प्रकार के पक्षी गण विहार करते थे,—कितने यात्री भी उसी पर उतर २ कर रसोई पानी करते और फिर अपनी मार्ग को चले जाते थे।

उसी गङ्गा के तीर पर एक युवा पुरुष अकेला भ्रमण कर रहा था, यह वही हमारे पूर्व परिचित मित्र इन्द्रनाथ थे।

इन्द्रनाथ आज ही मुंगेर मे पहुंचे थे,—चिंता सागर में डूबते उतराते इधर उधर फिरते थे। उन की चिन्ता का मर्म तो पाठक महाशय अब समझ सक्ते हैं।

घर छोड़े कई दिन हो गया था। यद्यपि वे इस प्रकार प्रायः घर छोड़ कर बाहर जाया करते थे किन्तु उन के पिता उन के फिर आने की चिन्ता मे सदा व्यग्र रहा करते थे। इस बेर जिस उद्योग से गृह त्याग किया क्या उस से मुक्त हो कर घर फिरने की आशा है? इन्द्रनाथ का हृदय तो स्वभावतः साहसी था,—वे सारे जगत को अपना घर समझते थे और मनुष्य मात्र को अपने भाई के समान बोध करते थे, तथापि संसार मे ऐसा कोई जीव नही है जिस को परदेश मे अपने घर का चेत न हो अतएव इन्द्रनाथ को भी कभी २ घरकी सुध आती थी।

क्या करने को घर से चले थे? समरसिंह के मृत्यु की प्रतिहिंसा साधन करने के लिये, सत्य है, किन्तु वह प्रतिहिंसा कैसे हो सक्ती है? अपना कोई आश्रय नही, सहायक नही, पास द्रव्य नही, कोई जान पहिचान नही, कैसे वह कार्य साधन हो सक्ता है? टोडरमल्ल तो मुंगेर मे हैं

क्या उन के पास जाकर विचार प्रार्थना करने से काम सिद्ध नहीं हो सक्ता? किन्तु अभी तो टोरडमल युद्ध के संयम से लग रहे हैं, दूसरे विषय में कैसे हस्तक्षेप कर सक्ते हैं? अभी तो उन्होने बङ्ग देश जय नहीं कर पाया, फिर कैसे बङ्ग वासियों का विचार कर सक्ते हैं? और यदि विचार करने पर उद्यत भी हों तो अपरिचित मनुष्य का विश्वास कैसे कर सक्ते हैं? इतने बड़े प्रतापी दिवान के विरुद्ध यदि एक अकिंचन ब्राह्मण कुछ दोष रोप किया चाहै तो वह विश्वासनीय कैसे हो सक्ता है? राजा टोरडमल यदि विचार करैं तो इन्द्रनाथ सतीशचन्द्र को दोषी ठहराने के लिये प्रमाण कहाँ पावैंगे?

और सहसा दोषारोप करना भी तो उचित नहीं है। महेश्वर के मन्दिर में उस स्त्री ने जो बातैं कही थीं वह इन्द्रनाथ को भूलीं नहीं। क्या उस ने झूठ कहा था, ऐसा तो विश्वास नहीं होता, और यदि उस की बातैं सत्य हैं तो सतीशचन्द्र निर्दोषी है? क्या ऐसा सम्भव है? जो हो बे निश्चय किये इतने बड़े मनुष्य को दोषी ठहराना उचित नहीं है।

और उस स्त्री ने जो शकुनी का नाम लिया था वह कहाँ है? इन्द्रनाथ जितना ही विचार करते थे उतनाही ज्ञान शून्य होते जाते थे, देर तक उसी गंगा के तीर पर

भ्रमण करते २ सोचते थे परंतु कोई बात मन में बैठती न थी, मन को थक कर उसी जगह बैठ गए मन में कहने लगे "अभी तो कोई उपाय नहीं सूझता, अब कुछ दिन यहाँ ठहरें जब अवसर मिलैगा तब कुछ किया जायगा।"

यह चिन्ता तो शान्त हुई अब दूसरी चिन्ता इन्द्रनाथ के हृदय को व्यग्र करने लगी। जितनी बेर गङ्गा की तरंगों की ओर देखते थे उतनही नवीन भाव उन के मन में उत्पन्न होता था। शास्त्रों में गङ्गा की महिमा सुना था, काव्यों में उस को सुन्दरता का वर्णन पढ़ा था, पुराणों में सैकड़ों बेर इस पाप मोचनी नदी की स्तुति पाठ किया था और लोगों के मुंह से भी इस की महिमा का गुण गान सुना था। जिस समय इस प्रकार के विचार उन के हृदय में लहराय रहे थे गङ्गा की तरंगों के शब्द उन के कान में प्रवेश कर रहे थे, जिस समय उन की दृष्टि उस असीम जल राशि की ओर पड़ी, जब निशा आगमन के समय चन्द्रमा ने उदित होकर सुन्दर उर्म्मिमणी को नवोढ़ा स्त्री के सदृश स्नेह पूर्वक चुम्बन कर के सुवर्ण राशि द्वारा अलंकृत किया, उस समय इन्द्रनाथ के हृदय में एक अभिनव आनन्द उमगा। नीचाशय सब एक २ कर के विनाश होने लगे और महद्भाव और महान आशय उन के स्थानापन्न होने लगे। अनेक क्षण पर्यंत इन्द्रनाथ प्रकृति की शोभा देखते रहे।

इतने में एक अभिनव मुरली की तान उन के कान में पहुंची, आंख उठा कर देखा तो चान्दनी में एक छोटी सी नौका आती हुई देख पड़ी और उस पर एक मनुष्य अकेला बैठा गा रहा था। उस गान की मधुरता का रस हम को तो मालूम नहीं है किन्तु इन्द्रनाथ को तो वह स्वर्गीय गान बोध हुआ। उन के हृदय रूपी यन्त्र में तो उस समय प्रकृति के अनंत संगीत का सुर भरा था अतएव अनुरूप भावों से उस सामान्य संगीत को भी उन्होंने स्वर्गीय संगीत बोध किया। संकेत करने से वह नाविक अपनी नौका तीर पर ले आया। इन्द्रनाथ ने उस पर चढ़ लिया और उससे कहा कि नौका को धारा में छोड़ दे और वही गीत गाता हुआ चल।

उस नाविक ने एक बेर, दो बेर, तीन बेर उस गीत को गाया और कुछ काल के उपरान्त उसने पूछा—

"महाशय! मैंने आप को पहिले कभी इस नगर में नहीं देखा था, क्या आप कभी और भी यहां आये हैं?"

इन्द्र।—"हम तो आजही आये हैं।"

नावि।—"आप का नाम क्या है? और घर कहां है?"

इन्द्र।—"मुझ को तो लोग इन्द्रनाथ कहते हैं, घर मेरा बहुत दूर नदिया के जिला में है।"

नावि।—"नदिया जिला के किस गांव में आपका घर है?"

इन्द्र।—"इच्छापुर में।"

नावि ।—"इच्छापुर में ? आपके पिता का क्या नाम है ?"

इन्द्र ।—"क्यों, क्या तुम इच्छापुर गये हो ?"

नाविक थोड़ी देर चुप रहा, जैसे कोई किसी बात के छिपाने को इच्छा से बहाना देता है, और फिर बोला "हम लोग काम पड़ने पर सब जगह जाते हैं—प्रति वर्ष वादा से चावल लेने को आया करते हैं । आप के पिता का क्या नाम है ? सम्भव है कि हम उन को चीन्हते हों ।" इन्द्रनाथ अपना पता किसी को बतलाते न थे, गुप्त भेष में देश विदेश फिरते थे किन्तु नाविक से उन्हों ने अपने बाप के नाम छिपाने की कोई आवश्यकता न देखी और अपने मन में विचार किया कि घर से निकले बहुत दिन हुए यह मांझी सम्भत उस गांव में गया रहा होगा तो उसमे पिता के कुशल मंगल का समाचार मिल जायगा बोले "इच्छापुर के जमीदार नगेन्द्रनाथ चौधरी हमारे बाप है ।" नाविक को सुन कर आश्चर्य हुआ चित्त स्थिर कर के बोला नगेन्द्रनाथ ! पुण्यात्मा नगेन्द्रनाथ ! हमने बहुत दिन तक उनका नमक खाया है ।"

इन्द्र ।—"तुम क्या उन के यहां चाकर थे ?"

नावि —"हम को उन का घर छोड़े प्रायः बारह वर्ष हो गये, और कुछ सोच कर फिर बोला तब क्या आप का नाम इन्द्रनाथ था ?"

इन्द्र ।—"अब तुम से छिपाने की कोई आवश्यकता नहीं है, हमारा नाम इन्द्रनाथ कभी नहीं था वरन यथार्थ नाम सुरेन्द्रनाथ है। किन्तु हम को प्रायः अज्ञात रूप देश देश भ्रमण करना पड़ता है इस कारण बीच २ में इन्द्रनाथ नाम धारण कर लेता हूं।"

"सुरेन्द्रनाथ" नाम सुनतेही नाविक की आंखों में पानी भर आया और बोला—हमने अनेक बार आप को खेलाया है, गोदी में लेकर प्यार किया है,—जब आप ६ वर्ष के थे तभी से मैं घर छोड़ कर आया हूं। आप हमको चीन्हते हैं?"

इन्द्रनाथ एक २ कर के अपने सब चाकरों का स्मरण करने लगे किन्तु नाविक कब चाकर था ध्यान में नहीं आया परन्तु उस का मुह देखने से यह बोध होता था कि इस को कभी देखा है। अन्त को बोले कि "हम को तो चेत नही आता।"

नावि।—"नगेन्द्रनाथ अच्छे तो हैं?"

इन्द्र।—"हां, हैं।"

नावि।—"उनके बड़े बेटे आज कल कहां हैं?"

इन्द्र।—"बहुत दिन हुआ हमारा जेठा भाई मर गया।"

नावि।—"उनका नाम उपेन्द्रनाथ था न?"

इन्द्र।—"हां।"

नावि ।—"उन की मृत्यु कैसे हुई ?"

इन्द्र ।—"इच्छापुर में व्याघ्र बहुत लगते हैं, हमारे भाई को व्याघ्र उठा ले गया। हम को तो उस का स्मरण भी नहीं है क्योंकि उस को मरे बहुत दिन हुए।"

नावि ।—"माता तो आप को अच्छी हैं ?"

इन्द्र ।—"अपने ज्येष्ट पुत्र के मरण पश्चात उन को बड़ा दुःख हुआ और उसी में वे बीमार पड़ीं और अन्त को उनका देहान्त हुआ।"

यह बात सुन कर नाविक पुक्का फाड़ कर रोने लगा, आंसू की धारा से वस्त्र सब भीग गया—"हा माता ! तू जितना मेरे ऊपर प्रेम करती थी उतना सगी माता नहीं कर सक्ती ! हा विधाता ! क्या मेरे लिये मृत्यु नहीं है ?" इन्द्रनाथ के हृदय में कुछ सन्देह होने लगा। क्या चाकर को अपने प्रभु के प्रति ऐसा प्रेम होना सम्भव है ? फिर मन में आया कि बहुत पुराना होने से हो भी सक्ता है। फिर विचार किया कि यह सब इस का छलछन्द है, यह कभी नगेन्द्रनाथ को नहीं जानता, अधिक द्रव्य प्राप्त करने के अर्थ यह सब कपट कथा बनाकर कहता है अथवा कोई इस्से भी बढ़ कर पाप चेष्टा उस के मन में होगी। फिर मन में आया कि हमने इस को कहीं देखा अवश्य है और इस की बोली भी हम कुछ पहिचानते हैं। निसन्देह पुराना चाकर है।

नाविक ने इन्द्रनाथ के अन्तःकरण की बात कुछ जान ली और फिर बड़ाई देकर दूसरी बात करने लगा।

बात चीत होते २ इन्द्रनाथ ने देखा कि यद्यपि नाविक नीच जाति तो है किन्तु भले मनुष्यों की भांति वार्तालाप करने जानता है और बुद्धि भी उस की विचक्षण है और बहुत दिन पर्यन्त अच्छे लोगों के संग रहने से चतुर भी हो गया है। एक घण्टा वार्तालाप करने से अन्तः मनोवृत्ती भली भांति प्रकाशित होने लगी। इन्द्रनाथ उस की बातों से बहुत सन्तुष्ट हुए और मन का संशय दूर हो गया और नाविक के प्रति प्रीति का प्रादुर्भाव होने लगा।

इस अन्तर में नौका प्रायः एक कोस निकल गयी। गंगा का जल चान्दनी रात में खूब चमक रहा था, आकाश में दो एक टुकड़ा बादल का भी दिखाई देता था जिस्से कभी २ चन्द्रमा छिप जाते थे। आकाश का रंग नीला था और दो एक तारे भी इधर उधर चमक रहे थे, सम्पूर्ण जगत में सन्नाटा छा रहा था केवल बीच २ में एकाध राग दूर से सुनाई देता था। कोई दूसरी नौका भी नहीं चलती थी केवल सुरेन्द्रनाथ की डोंगी शब्द करती हुई चली जाती थी।

एका एकी नाविक ने नौका रोक दी और कुछ देखने

लगा। सुरेन्द्रनाथ की भी दृष्टि उसी ओर पड़ी, देखा कि वृक्ष के पत्तों के बीच से एक ज्योति देख पड़ती है। नाविक देर तक उसी की ओर देख कर बोला—"वह जो प्रकाश देख पड़ता है वही हमारा घर है, और उस के परली ओर जो निकुञ्ज देख पड़ता है वही हमारे प्राण का संस्थित स्थान है।"

नाविक के इस भाव को देख कर सुरेन्द्रनाथ को आश्चर्य हुआ और उस के मुख की ओर देखने लगे तो क्या देखते हैं कि उस की दोनों आंखों से आंसू गिर रहे हैं। सुरेन्द्रनाथ को बड़ा दुःख हुआ और स्नेह पूर्वक उस की आंखें पोंछ कर पूछने लगे कि "तुमारे रोने का कारण क्या है स्पष्ट रूप हमसे कहो, सच कहो? सामान्य मनुष्य के हृदय में ऐसा भाव नहीं होता, सामान्य मनुष्य को ऐसी बुद्धि और वार्तालाप का ज्ञान भी नहीं होता।" नाविक ने अपना वस्त्र खोल डाला और भीतर से यज्ञोपवीत निकाल कर देखाया और कहा "इस समय तो मैं वास्तविक दरिद्र नाभी हूं किन्तु यथार्थ में ब्राह्मण हूं। यदि आप हमारे ऊपर इतनी दया करते हैं कृपा पूर्व हमारे संग हमारी कुटी में चलिये तो सम्पूर्ण वृत्तान्त आप को सुनावें।"

सुरेन्द्रनाथ ने अङ्गीकार किया, नौका तीर पर लगी और दोनो जन उसी नाविक की कुटी की ओर चले।

बारहवां परिच्छेद।

नाविक की पूर्व कथा।

How sweet the days that I have spent,
In yon sequestered bower :
Those citron trees, still sweet of scent,
Had then some magic power.
Or some fair spirit did reside,
In that sweet purling brook,
Which runs by yon green mountain side.
Now haunted by the rook.
No charm was in the spicy grove,
No spirit in the stream,
O' was the smile of her I love,
Now vanished like a dream !

I. C. Dutt.

हमारे पाठकों में से कितने सुरेन्द्रनाथ पर क्रोधित होंगे और भृकुटी चढ़ा कर कहेंगे "क्या इतने बड़े जगीरदार के बेटे को केवट और मांझी के संग मित्रता करना चाहिये ? क्या यही मान सम्भ्रम और कुल मर्यादा है ? सुपुत्र को चाहिये कि बड़े और सभ्य लोगों में बैठे, उन से बातचीत करे, देश में अपनी प्रतिष्ठा बढ़ावे, पिता का नाम रक्खे और कुल का नाम रक्खे न कि भेप बनाये देश २ फिरे और

नीचों के संग सहवास करें। यह निश्चय अधम गुन है और जो उस का चरित्र लिखता है वह भी अधम है।

इस तिरस्कार का हम कुछ उत्तर नहीं दे सके, भय के मारे कुछ कह नहीं सके। हम स्वीकार करेंगे कि सुरेन्द्रनाथ को सांसारिक विषय में बुद्धि कम है—बोध होता है वह वास्तविक मर्यादा रखने नहीं जानते,—संसार में नाम उपार्जन करने के कितने उपाय हैं उन को मालूम नहीं है। बड़े लोगों में परिगणित होने की चेष्टा कर के उन से आलाप करना, बड़ों के बीच में बैठना, जान पहिचान न भी होने पर और लोगों के निकट अपने को बड़े लोगों के बन्धु प्रकाश करना, भीतर चाहे "ढोल में पोल ही हो" बाहर से भरम बनाये रहना, सामान्य लोगों से मुंह से न बोलना और यदि बोलना भी तो गर्व पूर्वक, अपने से उच्च पद वालों के संग समान भाव से बर्ताव प्रगट करना किन्तु भीतर से "खुशामद" करना, सामर्थ्य न रहते भी अपने को सामर्थ्यवान प्रगट करना, मान न भी होने पर अपने को मान सम्पन्न प्रकाश करना, ऐश्वर्य और धन शून्य हो कर भी धनवान और ऐश्वर्यवान बनना, यथार्थ सम्पत्ति को छिपा कर दश गुण सम्पत्ति बोध कराना, छोटी बात को बड़ी बनाना, इस प्रकार संसारकौशल सुरेन्द्रनाथ में नहीं था। उन की बुद्धि अबोध बालक के समान थी, वह

समझते थे कि सत कर्म करने से मनुष्यों में मर्यादा बहुत होती है। वह यह नहीं जानते थे कि सत कर्म कर के लोगों को दिखाना चाहिये वरन उस का दग्ध गुण प्रकाश करना चाहिये। गुप्त सत कर्म करने से क्या होता है?

और हमारे ऊपर तो आप लोगों का क्रोध व्यर्थ है। सुरेन्द्रनाथ यदि अज्ञानी है तो हमारा क्या दोष? हम को भी उस के चाल व्यौहार के देखने से लज्जा आती है किंतु उस के यथार्थ गुण छोड़ कर मिथ्या कैसे लिख सक्ते हैं। जो २ हुआ है हम तो ठीक वही लिखा चाहैं। सुरेन्द्रनाथ ने यथार्थई माझी के संग आलाप किया अतएव हम को लिखना पड़ा। इस यथार्थ इतिहास में क्या हम लोग कोई कपोल कल्पित बात लिखते हैं? हरे कृष्ण!

सुरेन्द्रनाथ और नाविक दोनों उसी कुटी में बैठे। इस ग्राम में सम्पूर्ण मांझी ही बसते थे किन्तु यह मड़ई और घरों से विलग और दूर थी। प्रातः काल का भोजन बना रक्खा था वही दोनों ने खाया और तदनन्तर नाविक अपना वृत्तान्त कहने लगा—

"सुरेन्द्रनाथ! यदि आप के हृदय में क्रोध अथवा दर्प हो तो उस को त्याग कर दीजिये,—इसी दर्प से हमारा सर्व नाश हुआ है। छोटे पन से हम बड़े गर्भी थे। सुना है कि बचपन में भी यदि हमारी इच्छानुसार कोई बात

न होती तो हम दो दो दिन निराहार रह जाते थे। इस प्राकृतिक क्रोध से हमारा सर्व नाश हुआ है।

बाल्य अवस्था में भी मेरी यही दशा थी। मेरा मन स्वभावतः, विद्याध्ययन में रत था किन्तु जब कभी गुरु महाशय व्यर्थ तिरस्कार करते तो मुझ को क्रोध हो आता, पुस्तक फेंक देता था और सहस्त्रों "कोड़े" खाता था पर चूं नहीं करता था और न रोता था। गुरु महाशय मुझ को चाहते तो थे किन्तु मेरा क्रोध देख कर समय २ पर मुझ से बहुत अप्रसन्न होते थे। एक बेर ऐसे रुष्ट हुए कि सम्पूर्ण पाठशाला के छात्रों के सामने बोले कि यह बालक "कोड़ा" मारने से रोता नहीं किन्तु आज यदि इस को रोला कर न छोड़ूं तो हम पढ़ाने के काम ही को छोड़ दूंगा।" यह कह कर उन्हों ने बेंत्राघात इत्यादि मेरी अनेक प्रकार की ताड़ना की परन्तु मैंने दृढ़ प्रतिज्ञा किया था, मुंह से शब्द नहीं निकाला और न आंख से एक बून्द आंसू गिराया। अन्त को गुरु महाशय हार कर कहने लगे कि 'इस को अग्नि से जलावो।' एक चिनगारी आग लाकर मेरे शरीर पर रक्खा, मैं मारे पीड़ा के व्याकुल हुआ तथापि मुंह नहीं खोला,—थोड़ी देर में अचेत हो कर गिर पड़ा। तब गुरु महाशय को ज्ञान हुआ। उन्हों ने पुत्रवत स्नेह पूर्वक मुझ को उठा कर छाती से लगा लिया और मुंह पर पानी छि-

छकने लगे। कुछ काल के अनन्तर मैं सचेत हुआ। तभी से मेरा पढ़ना बंद हुआ और मैं मूर्ख रहगया। गुरु महाशय ने फिर मुझ को नहीं पढ़ाया। मै "बिलकुल" मूर्ख रहा। मेरी माता मुझ से कभी रूखी हो कर नहीं बोलती थी, वह मेरे मन की वृत्ति को जानती थी और मेरे ऊपर बहुत स्नेह रखती थी। उसने कभी एक बात भी ऐसी नहीं कहा कि जिससे मुझ को क्लेश होता। (उस के नेत्रों में आंसू भर आये) मैं भी उस को ऐसा चाहता था कि क्या किसी का पुत्र चाहेगा। मै पिता का कहना नहीं करता था, गुरु का कहना नहीं करता था किन्तु माता की कोई आज्ञा उल्लङ्घन नहीं करता था। घर मे दूसरा कोई मुझ से यदि कुछ कहता अथवा भय दिखाता तो मैं उस पर ढेला फेंकता था परन्तु माता यदि कोई मेरी इच्छा के विरुद्ध कर्म भी करने को कहती तो मैं अवश्य करता था, हाय! अब क्या उस स्नेह वती माता का दर्शन नहीं होगा? इतना कह कर उसका कण्ठ रोध हो गया और मुंह नीचे कर के रोने लगा।

सुरेन्द्रनाथ ने दुःखित होकर पूछा "क्यों। क्या तुमारी माता मर गयी?"

नाविक ने कहा "सुना है कि उनको स्वर्गलाभ हुआ"

कुछ काल रोने के पश्चात् जब चित्त स्थिर हुआ फिर

कहने लगा—

"पिता भी मेरे से प्रीत करते थे किन्तु उनका स्वभाव कठोर था। मैंने क्रोध करना उन्हीं से सीखा है। विशेषतः सांसारिक चिन्ता से दग्ध हो कर कभी २ वे अकारण भी क्रोध करते थे। मुझ को बहुत चाहते थे और मेरी स्तुति सुन कर उन को बड़ा आनन्द होता था अथच निन्दा सुन कर दुःख होता था। तथापि वे अपने स्वाभाविक क्रोध को सम्भाल नहीं सके थे। किसी २ समय उन की आंखें क्रोध से लाल हो जातीं और शरीर कांपने लगता और मुझको व्यर्थ मारने और तिरस्कार करने लगते थे। एकदिन मुझ को अकारण निर्दय हो कर बहुत मारा और बोले कि 'मैं तेरा मुंह नहीं देखा चाहता, तू मेरे घर से निकल जा।' 'अच्छा मैं जाता हूं' यह कह कर मैं चल दिया।

"मारने और पीटने से अनेक बालक सीधे हो जाते हैं किन्तु मैं मारे क्रोध के भूत हो गया। चारों ओर शून्य दिखायी देने लगा और हृदय में आग सी लग गयी। उसी अग्नि में पितृभक्ति, मातृस्नेह और कनिष्ट के प्रति प्रीत सब भस्म हो गई। उसी अग्नि में मेरा भविष्यत संसार सुख और माता पिता का आशा भरोसा हवन हो गया। पिता ने मुझ को निकल जाने की आज्ञा दी मैंने भी स्थिर

प्रतिज्ञा हो कर पैटक गृह को तिलाञ्जलि दे दिया। तभी से फिर पिता के घर नही गया। उस समय मैं ग्यारह वर्ष का था।

"केवल यही नही, मैंने यह भी प्रतिज्ञा किया कि घर से कुछ ले भी न जाऊंगा। रात को एक घर से एक फटा वस्त्र माँग लाया वही पहिन कर चल दिया और जो वस्त्र पहिने था उस को उतार कर धर दिया और अपने मन में विचार किया कि अब मै पिता का किसी प्रकार ऋणी नही हूं यह नही सोचा कि जिस ने बचपन से पाल पोष कर इतना बड़ा किया उस्से किसी प्रकार उऋण नही हो सका।

"उसके पश्चात दस वर्ष तक मेरा जीवन जिस क्लेश से निर्वाह हुआ उस का वर्णन करना व्यर्थ है॥

"तिसके पीछे फिर दुःख दूर हुआ और कुछ अच्छे दिन आये" यहाँ तक कहकर वह चुप हो कर कुछ सोचने लगा मानो भूली हुई बात का स्मरण करने लगा। सुरेन्द्रनाथ उस के मुह की ओर देखने लगे। क्षणेक के अनन्तर उसने फिर कहना आरम्भ किया—

"दस वर्ष जिन २ चिन्ताओं से चित्त व्यथित होता था उन में से प्रेम सब से प्रचण्ड था। (सुरेन्द्रनाथ और भी चित्त लगा कर सुनने लगे) सामान्य स्त्री के संग प्रीति क-

रने की तो मेरी कभी इच्छा नहीं हुई। मै ऐसे प्रेम की कांचा करता था जिस से हृदय परिपूर्ण हो जाता है, जो जीवन का अंश स्वरूप है, देह का आत्मास्वरूप, जिस प्रेम के नाश होने से शरीर का भी नाश हो जाता है। प्रायः अन्धकार में बैठ कर उसी प्रेम की कल्पना किया करताथा, चिन्ता के बल से प्रायः शून्य में से स्नेह सम्पन्न प्रेम मूर्ति का आवाहन कर के पहरों उसी का दर्शन सुख लाभ किया करता था। उस काल्पनिक जगत में जो अपरिसीम सुख लाभ होता है वह इस जगत में कहां मिल सक्ता है, इस सुख सागर में निमग्न होकर मैं उन्मत्त के समान हो जाता था। एका एकी वह जगत जल बिम्ब के सदृश नाश हो जाता और वह प्रेम प्रतिमा भी लुप्त हो जाती, कल्पना शक्ति भी जाती रहती, मेरा सिर घूमने लगता और मै मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़ता।

"दिन प्रति दिन इसी प्रकार कल्पना बढ़ने लगी, दोर पहर मै इस जगत को छोड़ उसी काल्पनिक जगत में विचरण किया करता। उस जगत का आकाश उज्वल, चंद्र, वृक्ष उज्वल, अट्टालिका उज्वल, सम्पूर्ण गृहद्रव्य उज्वल दिखायी देता था और उसी के बीच में वह उज्वल प्रतिमा विराजमान थी। निविड़ कृष्ण केशपाश सुन्दर मुख मण्डल के दोनों ओर लटक रहे थे। सुन्दर छोटे २ रक्त

वर्णं ओठ दोनों प्रेम हास्य से खिल रहे थे, नयन युगल प्रेम वारि से भरे थे, सम्पूर्ण चन्द्रानन धप धप कर रहा था। एका एकी कल्पना जाती रहती और मै भी मूर्च्छित हो जाता था।

"सुरेन्द्रनाथ! यदि उस अपने प्रकारान्तर कल्पना का सविस्तर वर्णन करने लगूं तो इस जन्म भर में समाप्त नही हो सक्ता, न कि आज की रात में। मुझ को उस के वर्णन करने में कुछ क्लेश नही होगा क्योंकि वही तो मेरा जीवन है, किन्तु आप को कष्ट देना उचित नही। एक बात यह भी है कि जितना कल्पना करता हूं नाना जगत, नानादेश और नाना प्रकार की अवस्था में वही प्रेम प्रतिमा आंखों के सामने खड़ी रहती है, धीरे२ मै विक्षिप्त सा हो गया॥

"एक दिन इसी प्रकार रात ढल जाने पर मै कल्पना विमुक्त मूर्च्छित हो कर इसी गंगा के तट पर उसी कुञ्ज वन में सो गया। कितने काल पर्यन्त मै मुर्च्छित था कह नही सक्ता,—जान पड़ा कि कोई मस्तक पर जल छिड़क रहा है और पंखा झल रहा है, जान पड़ा मस्तक के नीचे किसी ने रुई का गाला बिछा दिया। धीरे २ आंख खोल कर देखा तो—आप निश्चय न करेंगे—वही प्रेम प्रतिमा! जिस को स्वप्न में सैकड़ों बेर देख चुका था मेरे म-

स्तक को अपने कंधे पर रक्खे चुपचाप पंखा भल रही है।"

दोनो घणोंक सन्नाटे में रहे। सुरेन्द्रनाथ को ऐसी अ-सम्भव बात को सुन कर बड़ा आश्चर्य हुआ, यद्यपि आप भी सरला के प्रेम जाल में फंसे थे तथापि ऐसी अचम्भा बात का विश्वास नहीं होता था। वह थोड़ी देर तक चुप रह कर फिर कहने लगा—

"सुरेन्द्रनाथ! अब मैं अधिक नहीं कह सक्ता, पूछने से मालूम हुआ कि वह स्त्री ब्राह्मण की कन्या और अविवाहित थी। उसका पाणिग्रहण कर लिया, उसके अनन्तर दो वर्ष इस सुखसे बीता कि जैसा कभी नहीं बीता था। किन्तु वह बात अब क्यों कहें? आपका पवित्र हृदय है आप पवित्र प्रेम किस को कहते हैं इस को भी जानते हैं और यदि नहीं जानते तो अब जानेंगे—आप को छोड़ अनेक लोग पवित्र प्रेम के प्रभाव को जान चुके हैं;—किन्तु मेरे ऐसा गाढ़ा प्रेम मनुष्य जाति में से किसी ने कभी नहीं देखा और न अब देखेगा।

"उसी कुञ्ज बन में जो आप देख रहे हैं, हम लोग रहते थे। सन्ध्या का ईषत अंधकार जैसा शान्त निस्तब्ध और गम्भीर होता है हमारे हृदय में प्रेम उस्से भी निस्तब्ध और प्रशान्त भाव से बिराजमान था। उस स्त्री की प्रकृत सन्ध्या की भांति म्लान, निस्तब्ध और चिन्ता शील

थी अतएव मैंने उसकी सन्ध्या संज्ञा रक्खी थी। उसको मैं प्रेम प्रतिमा भी कहता था क्योंकि उसके देखने के पूर्वही से उस की प्रतिमा मेरे हृदयमें स्थापित थी। मैं उस को कुंज वासिनी भी कहता था क्योंकि उसी कुंज में जो सामने देख पड़ता है"—

और आगे मुह से बात नहीं निकली। सुरेन्द्रनाथ ने देखा की नायिक उन्मत्त की भांति उसी कुंज वन की ओर मुह बाये देख रहा है। मानो प्राण शरीर छोड़ कर उसी कुंज में चला गया। थोड़ी देर में वह लाट पृथ्वी पर गिर पड़ी। सुरेन्द्रनाथ ने किसी प्रकार उसको चेतन किया। इस के पीछे और और बात कहते २ रात बहुत निकल गयी। भाइयों की भांति दोनों एक ही सय्या पर लेट रहे और धीरे २ सो गए॥

तेरहवां परिच्छेद।

सङ्गिचिता।

A combination and a form indeed
Where every god did seem to set his seal
To give the world assurance of a man.

Shakespeare.

मुंगेर के वृहत दुर्ग के एक बड़े कामरे में एक वीर पुरुष बैठा है। राजा टोडरमल गद्दी लगाये बैठे थे।

उन के पास उस समय भीड़ भाड़ नहीं थी। दो तीन विश्वासी योद्धा बैठे थे। धीरे २ युद्ध का परामर्श हो रहा था। इतने में एक सैनिक ने आकर प्रणिपात किया और बोला—

"महाराज। एक जन घोड़ा पर चढे आपके दर्शन को आये हैं आज्ञा हो तो सेवा में प्रस्तुत हों।"

टोड।—'पूछ आओ कि 'क्या चाहता" है?"

सैनि।—"मैंने पूछा था, उन्होंने कहा कि महाराज छोड़ दूसरे से नहीं कह सक्ता, काम बहुत आवश्यक है।"

टोड।—"हिन्दू है कि मुसलमान?"

सैनि।—"ब्राह्मण का पुत्र है।"

टोड।—"किस देश का ब्राह्मण है?"

सैनि।—"जन्म भूमि बंग देश मे है।"

टोड।—"बंगाली ब्राह्मण!—घोड़े पर चढ़ा! अच्छा आने दो।"

सैनिक उस अश्वारोही को बुलाने के लिये गया।

इस स्थान पर हम टोडरमल के परिचय निमित्त कुछ उन का संक्षेप चरित्र वर्णन करेंगे।

क्षत्रिय कुल तिलक टोडरमल ऐसा दूसरा वीर पुरुष

इस जगत में कभी हुआ था कि नहीं, सन्देह है। इस पृथ्वी तल पर बहुतेरे पुण्यात्मा और धर्म परायण पुरुष हो गये हैं। भूत पूर्व कालमें क्षत्रियों के कुलमें अनेक बेर अनेक वीर धीर हो चुके हैं। प्राचीन भारत देश में अनगणित तीव्र बुद्धि शाली और राजनीतज्ञ हो गये हैं। राजा टोडर मल इन तीनो गुणों करके विभूषित थे। हिन्दू धर्म में उन का बड़ा प्रेम था, इतिहासों से भी इसका प्रमाण मिलता है। एक बेर दिल्लीश्वर अकबर शाह के संग पंजाब में भ्रमण करती समय उन की बहुत सी मूर्ति नष्ट हो गयीं। टोडरमल प्रातः काल पूजन किये बिना जल नहीं ग्रहण करते थे अतऐव मुर्तियों के नष्ट हो जाने पर उन्हों ने प्रण किया कि अब कोई काम काज न करेंगे और कई दिन निराहार रह गये। अकबर शाह ने बहुतेरा समझाया किन्तु कुछ फल नहीं हुआ। अबुलफजिल इत्यादि यवन अमात्यगण टोडरमल को "कट्टर" हिन्दू कह कर निन्दा करते थे किन्तु महाराज अकबर उन का साथ नहीं देते थे। जब टोडरमल बूढ़े हुए और सारा देश उन के यश से परिपूर्ण हो गया, जब उनका पद और गौरव पराकाष्ठा को प्राप्त हुआ अकबर की आज्ञा ले उस पद और सन्मान को परित्याग तीर्थ यात्रा करने को हरिद्वारा पर्यन्त चले गये थे। अर्थात् उन से बढ़ कर धर्म परायण पुरुष भारत वर्ष में दूसरा नहीं जन्मा।

क्रमशः तीन बेर बंगदेश को जीतने में राजा टोडरमल का साहस और युद्ध कौशल भली भांति प्रगट हो गया था। पहिली बार मनाइमखां और दूसरी बार हुसेनकुलीखां के अधीन हो कर आये थे किन्तु जय केवल इन्हीं के पराक्रम से लाभ हुआ था। और कहां तक कहा जाय कि पहिली बार जब कटक के युद्धक्षेत्र से मनाइम खां भागा राजा टोडरमल ने अत्यन्त साहस प्रकाश करके खेत रख लिया था। तीसरी बार स्वयं सेनापति होकर आये। बंगदेश गया औ लड़२ गये बैरी के दांत खट्टे कर दिये। गुजरात में जो विद्रोहियों से युद्ध हुआ था उसमें भी टोडरमल ने सिंह पराक्रम दिखला कर यश लाभ किया था। धोलकर की लड़ाई में सेनापति मिर्जाखां ने भागने की चेष्टा की थी किन्तु राजा टोडरमल ने उसको समझाया और ढांढस दिया और अपूर्व वीरत्व प्रकाश पूर्वक विजय लाभ किया। अकबर शाह के यहां बहुत सेनापति थे किन्तु महावीर टोडरमल से पराक्रमी और यशस्वी दूसरा नहीं था।

दिल्लीश्वर ने सारे भारतवर्ष का शासन भार राजा टोडरमल को सौंप दिया था। इस दुस्तर काम को इन्हों ने इस योग्यता के साथ सम्पन्न किया कि फिर इन की सूक्ष्म बुद्धि और राजनीतिज्ञता में सन्देह नहीं रह गया।

राजा टोडरमल ने बंग देश की उन्नति हेतु अनेक उ-

पाय किया किन्तु पारसी भाषा का प्रचार उन में से सर्वोपरि था। पराजितों की विजयी लोगों की भाषा सीखने से अवश्य उन्नति होती है। देखो इस समय अंगरेजी भाषा के सीखने से हम लोगों को कितना लाभ हो रहा है, इसी प्रकार उस समय के लोगों को पारसी पढ़ने से बड़ा लाभ हुआ।

राजा टोडरमल का जन्म लाहौर में हुआ था, पिता उन के बचपन में मर गए। माता ने उन को, यद्यपि दरिद्र हो गयी थी, बड़े क्लेश से लालन पालन किया। थोड़े ही दिनों में उन की बुद्धि का चमत्कार प्रगट हुआ और पहिले पहिल एक मोहर्रिर के पद पर नियुक्त हुए किन्तु अपनी अलौकिक बुद्धि की प्रबलता से क्रमशः महाराज अकबर शाह की सभा के "नौ रत्नों" में परि गणित हुए। पाठक महाशय! यदि आप को उन के समग्र जीवन चरित्र के जानने की लालसा हो तो इतिहासों में देखिये।

उन के पहिले और दूसरे बेर के आगमन का वृत्तान्त पहिले और दूसरे परिच्छेद में वर्णित हो चुका है। इस स्थान पर उनके तीसरी बार आने का समाचार वर्णन किया जाता है।

यद्यपि टोडरमलने कईबेर अति दुर्घट रणक्षेत्र में जय लाभकिया था किन्तु ऐसे विपद जाल में कभी फसे नहीं थे।

अरब देश निवासी शरफुद्दीन हुसैन और मासूमी काबुली इत्यादि अनेक विद्रोही ने तीस सहस्र अश्वारोही, पांच सौ हाथी और अनेक रणपोत और अगनी लेकर मुंगेर को घेर लिया। टोडरमल युद्ध में पाराङ्मुख तो नहीं थे किन्तु उनके अधीनस्थ अनेक सेनापति वैरी से मिले थे अतएव उनके मन में शंका थी कि यदि युद्ध आरम्भ किया जाय तो बहुत से लोग जाकर विद्रोहियों में मिल जांयगे। विशेषतः मासूमी फरंगुदी तो अवसर पाने पर अवश्य ही मिल जायगा, यह राजा को भली भांति निश्चय था। इस कारण वे अनायास दुर्ग से बाहर नहीं निकले वरन गुप्त भाव से दुर्ग के भीतर और बाहर के दोनों शत्रुओं का आचारण देख रहे थे। दुर्ग के भीतर "रसद" कम थी अतएव थोड़े ही दिनों में अन्न के अभाव से कष्ट होने लगा तथापि टोडरमल का साहस और बुद्धि कौशल एक क्षण भी विचलित नहीं हुआ वरन और भी अधिक होने लगा। उन्हों ने दुर्ग की "चार दीवारी" और भी दृढ़ करा दिया और नित्य प्रति अपने सैनिकों को बढ़ावा देते जाते थे, दिन दिन अपना नैसर्गिक वीरत्व प्रकाश करने लगे॥

सैनिक पुरुष पूर्वोक्त ब्राह्मण पुत्र को राजा के सन्मुख ले आया। राजा ने पूछा "तुमारा नाम क्या है?" उसने उत्तर दिया "मेरा नाम इन्द्रनाथ है।"

टोड।—"घर कहां है?"

इन्द्र।—"नदिया जिला के इच्छापुर नाम ग्राम में।"

टोड।—"तुमारा मतलब क्या है?"

इन्द्र।—"आप के अधीनस्थ सैनिकों में 'भर्ती' होने की इच्छा है।"

राजा टोडरमल विस्मित होकर मौन भाव धारण पूर्वक तीव्र दृष्टि से उस युवक की ओर देखने लगे। उस के आकार से उदारभाव के व्यतिरिक्त और कुछ लक्षित नहीं हुआ। थोड़ी देर में फिर राजा ने पूछा—"तुमने पहिले इस के और कहां२ काम किया है?"

इन्द्र।—"आज पहिले पहिल खड्ग धारण किया है" और खड्ग को 'म्यान' से निकाल कर फिर भीतर कर दिया।

सादिक खां नामी सैनिक ने कहा "हे युवा! तुमारे खड्ग ग्रहण की रीति देख कर बोध होता है कि समर में कभी तुमारी तरवार खाली न जायगी।"

तारसनखां नामक एक दूसरे सैनिक ने धीरे से राजा के कान में कहा "मुझ को विश्वास नहीं है कि इस युवा ने आज ही खड्ग ग्रहण किया है। यह तो शत्रु दल का 'जासूस' जान पड़ता है—इस को दण्ड देना चाहिये।"

राजा टोडरमलने किसीकी बात पर कुछ ध्यान नहीं दिया और बार२ घूर२ कर उसी युवक की ओर देखने लगे। उस के 'चेहरे मोहरे' के देखने से किसी प्रकार की शंका

नहीं होती थी। विशेष परीक्षा करने की इच्छा से फिर पूछा—

'तुम तो ब्राह्मण हो और कभी पहिले ऐसा काम भी नहीं किया है तो अब क्यों इस काम के करने की इच्छा करते हो?"

इन्द्र।—"मेरी एक विनती है; कुछ दिन आप के सेवा में रह कर आप को सन्तुष्ट कर लूंगा तब उस को प्रगट करूंगा, अभी कहने से कुछ फल नहीं होगा।"

तारसन खां ने फिर कहा 'महाराज! देखिये मैंने जो कहा सो सत्य है, देखिये अपनी इच्छा का कारण नहीं बतलाता।"

इन्द्रनाथ का उत्तर सुन कर टोडरमल को कुछ और शंका हुई। मन में विचार किया कि गुप्तचर को अपनी कथा का भेद वा अपने कार्य के कारण बताने से कभी हानि नहीं होती, फिर पूछा—

"शत्रु की ओर से बहुत से जासूसी हमारे दल में उपद्रव उठाने के लिए भेजे गये हैं, यह कैसे मालूम हो कि तुम उन मेंसे नहीं हो।"

इन्द्र।—"भद्र ब्राह्मण पुत्र की बातों पर यदि आप को विश्वास हो तो भय न करें।"

टोड।—"मायः अभद्र लोग भी भद्र लोगों का भेष बना

धर फिरते हैं और कभी २ भद्रवंश वाले भी कपटाचरण करते हैं।"

इन्द्र।—मैं पापी तो निसंदेह हूं किन्तु कपटाचरण कभी नहीं किया, मेरे वन्श में आज तक यह कलङ्क नहीं लगा है।"

क्रोध के मारे इन्द्रनाथ की घिग्घी बंध गयी।

सादी खां ने कहा "महाराज! यह युवा विश्वास पात्र नहीं है, इस की ओर से मैं "ज़िमेदार" हूं। यह हमारे दल के मासूमी फरँगुदों के ऐसा है—क्या अब भी आप को सन्देह है?"

राजा ने मुंह पर अँगुली रख कर सादी खां की ओर तिरस्कार दृष्टि से ताका, सादी खां लज्जा ग्रस्त हो गया। टोडरमल ने फिर इन्द्रनाथ से कहा—"हे युवा! तुम्हारी बातों से तो निश्चय प्रतीत होता है कि तुम कोई उदार चित्त और पुरुष हो किन्तु कभी २ पुजहाई में से भी सांप निकलते हैं।"

इन्द्रनाथ का मुंह क्रोध से लाल हो गया, आंखों में पानी भर आया और धीरे धीरे नम्र स्वर से बोले "यदि आप को विश्वास है कि मैं कपटाचारी ही हूं तो मुझ को आज्ञा दीजिये।"

टोड।—"अच्छा जाव।"

इन्द्रनाथ चल दिये। टोडरमल ने फिर बुला कर बहु आदर से उन को अश्वारोही के पद पर नियुक्त किया।

चौदहवां परिच्छेद।

अदृष्ट पूर्व विपद।

Brutus.—Do you know them ?
Lucius—No Sir: their hats are plucked about their ears.
And half their faces buried in their cloaks,
That by no means I may discover them
By any mark of favor.
Brutus.—Let them enter,
They are the faction. O Conspiracy !
Sham'st thou to show thy dangerous brow by night,
When evils are most free ? O then by day
Where wilt thou find a cavern dark enough
To hide thy monstrous visage ?

Shakespeare.

इस सन्मान को पाकर इन्द्रनाथ प्रति दिन सतर्कता और स्वामि भक्तता पूर्वक अपना काम करने लगे। जिस समय जिस काम के लिये आज्ञा होती तुरन्त करते थे, श्रम, हानि, लाभ अथवा समयासमय का कुछ विचार नहीं करते थे। एक समय राजा की आज्ञा पाय भेष बदल कर शत्रु

के दल में जा कर भेद ले आये और राजा से सब कह दिया, राजा टोडरमल बहुत प्रसन्न हुए और उसी दिन से उन की पद वृद्धि कर के पांच सौ अश्वारोही का अधिकारी बना दिया। फिर धोखा दे कर पूछा—

"इन्द्रनाथ! तुम इतनी थोड़ी वयस में इतने निःस्पृह हो, क्या तुम को कोई सुख की लालसा नहीं है जो अपने जीवन को इतना अकिंचन् बोध करते हो?"

इन्द्र।—महाराज! जिस दिन से सैनिक नियुक्त हुआ उसी दिन से मैंने अपना जीवन राजकार्य निमित्त संकल्प कर दिया। अब यदि मैं इस युद्ध समाप्त होने पर भी जीता हूं तो यह केवल आप के आशीर्वाद और पिता के पुण्य बल का कारण है।"

टोड।—"तुमारे पिता जीते हैं?"

इन्द्र।—"हां, हैं।"

टोड।—"तुमारे और कोई भाई बहिन भी हैं?"

इन्द्र।—"मेरे एक बड़ा भाई था परन्तु उस का काल हो गया, अब केवल मैं अकेला पिता के वंश में जीता हूं।"

टोडरमल के मुंह पर कुछ गम्भीरता आ गयी। बोले "यदि इस युद्ध में तुम मारे जाव तो क्या तुमारे पिता को क्षोभ नहीं होगा।" मेरे भी एक पुत्र है इसी कारण यह विचार मेरे मन में आता है। तात का वयक्रम भी तुमारे

हो इतना है, उस का साहस भी तुम्हारे ऐसा है, वह भी तुम्हारी भांति विपद को तुच्छ समझता है, मरने को नहीं डरता। तथापि राजकार्य में मरने की अपेक्षा और क्या वांछनीय है ?

इन्द्रनाथ चुप रहे। टोडरमल्ल ने फिर पूछा, "पिता छोड़ कर और तुम्हारा कौन प्रिय बन्धु है ?"

इन्द्रनाथ को सरला का स्मरण हुआ और लज्जा से मुंह नीचे कर लिया। मन में आया कि सरला विषयक सम्पूर्ण कथा कह कर अभी विचार की प्रार्थना करें, आधी बात मुंह में आ चुकी थी कि टोडरमल्ल ने दूसरी बात छेड़ दिया। इन्द्रनाथ का उद्देश सफल नहीं हुआ।

थोड़ी देर में राजा उठ गए, इन्द्रनाथ भी अपने डेरे को पलट गए।

जिस दिन यह बात चीत हुई थी उस दिन सैनिकों को रसद मिलने में बड़ा कष्ट हो रहा था। बहुतसे लोगों के, जो टोडरमल्ल से वैराचरण करने का मानस करते थे, भागाग्नि में ईंधन पड़ गया किन्तु टोडरमल्ल इस बुद्धिमानी और सावधानी से काम करते थे कि किसी का कुछ गँव नहीं चला। राजा दिन प्रति सैनिकों को ढाँढ़स देने लगे और दिल्ली से रुपया मंगा कर सिपाही लोगों को बांट उनका सन्तोष करने लगे और सब के सामने दर्प

पूर्वक बोले—'हमलोग कभी मुँचक पठानों को जय लाभ करने नहीं देंगे, दिल्लीश्वर की अवश्य जय होगी।' सेनापति के मुँह से ऐसी बात सुन कर सैनिकों को बड़ा उत्साह होता था। जब बिद्रोही सैनिकों ने देखा कि कुछ गँव नहीं चलता तो एक २ कर के सब शत्रु दल में जा मिले।

शत्रु का पराक्रम भी किसी प्रकार न्यून नहीं था। पहिले परिच्छेद में हमने कहा है कि वंग देश के सूबेदार मजफ्फर के मरने पर सारे वंग देश में पठान सेना फैल गयी। जिस देश को टोडरमल ने दो बेर कर के जय किया था अब उस में एक खण्ड भी दिल्लीश्वर के अधिकार में न रह गयी। वह सम्पूर्ण सेना एकट्ठा हो कर मुंगेर के समीप आयी थी और दिन दिन बढ़ती जाती थी किन्तु समुद्र के बीच में जैसे पर्वत मस्तक ऊंचा किए अचल खड़ा रहता है टोडरमल उसी प्रकार पठान सैन्य के सम्मुख डटे थे—उस क्षुधाक्लिष्ट सेना द्वारा यह बल शाली वैरी की सेना को कैसे पराजित करेंगे, यह टोडरमल के विश्वासी २ सैनिकों को भी नहीं मालूम था। केवल एक टोडरमल निःशंक चित्त विजय लाभ की आशा करते थे। सम्मुख विपद्राशि देख कर उन का स्थिर भाव किञ्चित मात्र भी विचलित नहीं हुआ।

इन्द्रनाथ अपने डेरे में पहुंच कर अनेक प्रकार की चिन्ता कर रहे थे उसी समय एक सेवक ने आकर उन के हाथ में एक पत्र दिया। पत्र खोल कर एक बेर पढ़ा, फिर पढ़ा, फिर पढ़ा किन्तु उसका "मतलब" नहीं मालूम हुआ। उस पत्र में लिखा था कि—

"तुमारी बुद्धि और कुशलता देख कर मैं बहुत प्रसन्न हूं। भारतवर्ष में जिस को कुशलता में किसी ने परास्त नहीं किया, तुमने उस के आंख में धूल डाला। हम भी तुमारे अनुगामी होंगे क्योंकि घर गिरता हुआ देख कर जो पहिले भागे वही बुद्धिमान होता है। आज पहर रात गए श्मशान घाट पर भेंट होगी।"

इस पत्र का कुछ अर्थ समझ में नहीं आया। "भारतवर्ष में जिस को कुशलता में कोई परास्त नहीं कर सका" ऐसा कौन व्यक्ति है? राजा टोडरमल होंगे, पर उन की आंख में धूल किसने डाला? "गिरता हुआ घर" इस का क्या अर्थ? इन्द्रनाथ ने समझा किसी विद्रोही ने यह पत्र भेजा है,—श्मशान घाट चलना चाहिए? थोड़ी देर सोच विचार अन्त को यह सिद्ध हुआ कि जाने में कुछ हानि नहीं है, एक बात ही मालूम हो जायगी। नियत समय पर श्मशान घाट पर पहुंचे। साथ में कोई नहीं था केवल एक तरवार "सहायक" थी।

रात बड़ी अंधियारी थी और आकाश में बादल छाये था, धीरे २ वही बादल पश्चिम के कोने पर एकी व्रत हुए, उसीओर विद्युत का प्रकाश होताया, उसी विद्युतके प्रकाश से श्मशान घाट की सब भयानक वस्तु रह २ कर दृष्टि गोचर होती थीं। कहीं मुर्दा जलाया गया था उसकी राख पड़ी थी और दो चार चिनगारी आग भी उस में चमकतीथी, कहीं मुर्दा अभी जल रहा था और चिता के जलने से चारो ओर प्रकाश हो रहा था। उसी अंधेरी उजेरी में बहुत सी सूरतै भी दिखाई देती थीं। एक ओर वृचों के बीच से अनेक प्रकार अद्भुत शब्द सुनाई देते थे। उस छाया को देख, और उस पैशाचिक शब्द को सुन कर इन्दुनाथ का स्वाभाविक साहसी हृदय भी डगमगाने लगा, ज्यों २ आगे पैर रखते थे रोयें भर भराते जाते थे। कभी तो जान पड़ै कि कोई सामने खड़ा है और तरवार लेकर उस की ओर दौड़ते थे, कभी जान पड़ै कि अतिशय धूम उड़ रही है, फिर जान पड़ा कि वही आकृत जो अभी देख पड़ी एक वृक्ष की छाया में छिप गयी। इतनेही में निविड़ अन्धकार छा गया, वायु बल पूर्वक चलने लगा और गंगा की धारा भी भयङ्कर बोध होने लगी। आकाश मे एक तारा भी नही देख पड़ता था, दूर से शृगाल बोल रहे थे, मानों प्रेत और पिशाचिनी हँस रहीं थीं।

जिधर एक बड़ा भारी जंगल था उसी ओर अंधेरे में दो मूर्ति खड़ी नजर हुईं। पहिले निश्चय नहीं हुआ किंतु ले बेर उधर दृष्टि पड़ी वह मूर्ति उसी स्थान पर खड़ी देख पड़ी। फिर उन से रहा नहीं गया, तरवार निकाल कर उसी ओर चले मालूम हुआ कि वह दोनों आकार कहीं छिप गयीं। इन्द्रनाथ उधर से पलटे तो ऐसा जान पड़ा कि जंगल में कोई हंस रहा है। फिर २ बर देखा तो वही दोनों मूर्ति खड़ी थीं।

"भगवान रक्षा करें।" यह कह एक बेर फिर इन्द्रनाथ तरवारि ले कर उसी ओर चले और उसी आकार की ओर आंख गड़ाये चले जाते थे। जङ्गल के समीप पहुंचते पहुंचते फिर वह दोनों आकार भाग गयीं और फिर दूर से वही हंसने का शब्द सुनायी दिया।

"ईश्वर रक्षा करे" ऐसा कह कर उस जङ्गल में घुसे। उस स्थान पर ऐसा घोर अंधकार था कि अपना हाथ नहीं सूझता था, इन्द्रनाथ का शरीर भरभराय आया और माथे पर प्रस्वेद कणिका दिखायी देने लगी, सारी देह थर थर कांपने लगी। उसी हंसी का शब्द अंकन कर चले जाते थे इतने में यह मालूम हुआ कि किसी ने उन के शरीर पर हाथ रक्खा।

इन्द्रनाथ ने चिहुक कर देखा कि दो मनुष्य भीषण

नाये खड़े हैं। उन लोगों ने संकेत द्वारा इन्द्रनाथ को अपने साथ चलने को कहा और वे उन के साथ हो लिये।

इन्द्रनाथ बहुत दूर तक उन दोनों के साथ चुपचाप चले गये। चारो ओर सघन जङ्गल और निबिड़ अंधकार छाये था इसी में से तीनों जने चले जाते थे। अन्त को गंगा के तीर पर एक जनशून्य स्थान में आ कर बैठे। उन दोनों मनुष्यों ने अपने २ मुंह पर से चेहरा उतार लिया और उसी क्षण बिजली चमकी। उस के प्रकाश से इन्द्रनाथ ने उन दोनों को चीन्हा। हुमायूं और तखान नाम दोनों राजा टोडरमल्ल के सैनिक थे।

इन्द्रनाथ विस्मित हो कर बोले,—"इतनी रात को ऐसा भयङ्कर रूप बनाये आप लोग यहां क्या करते हैं?"

हुमायूं ने मुसकिरा कर कहा,—"इन्द्रनाथ के साहस की परीक्षा करने को हम लोग यहां पर आये थे।"

इन्द्रनाथ ने तनिक क्रोध कर के कहा "यदि मैं आप लोगों को परीक्षा देना न चाहूं तो?"

हुमायूं ने फिर उसी प्रकार हंसकर कहा कि "तब हम लोग जान लेंगे कि इन्द्रनाथ को इतना साहस नहीं है।"

इन्द्रनाथ ने गर्वपूर्वक उत्तर दिया "इन्द्रनाथ साहसी हैं कि नहीं यह तो काम पड़ने पर जान पड़ेगा। क्या श्मशान भूमि में पिशाचों के संग युद्ध करना इसी में "व-

चातुरी" है ? आप लोग पिशाच रूप धारण कर के हम को डराते काहे को थे।"

फिर हुमायूं ने उसी प्रकार हंस कर कहा "इन्द्रनाथ का असाधारण साहस हमारी सेना के सब लोग जानते हैं। हम लोग केवल यही देखते थे कि उन को पैशाचिक साहस है कि नहीं क्योंकि पैशाचिक काम पड़ने पर पैशाचिक साहस की आवश्यकता होती है।"

इन्द्रनाथ ने अत्यन्त विस्मित हो कर पूछा, "क्या कोई पैशाचिक आवश्यकता उपस्थित है ?"

हुमायूं ने कहा "क्या आप नहीं जानते ? हम को "वेवकूफ" बनाते हैं ? आप जिस काम की शोध ले रहे हैं, जिस काम की सिद्धि निमित्त विलक्षणता और कौशल दिखा रहे हैं, क्या उस काम को आप नहीं जानते ? आप के चातुर्य को देख कर हम लोगों को आश्चर्य है। राजा टोडरमल को किसी ने नहीं छल पाया किन्तु आप ने उन को भी धोखा दिया। आप को ईश्वर चिरञ्जीवी करें आप एक दिन बंगदेश के गौरवस्तम्भ होंगे।"

इन्द्रनाथ को बड़ा आश्चर्य हुआ। तखाँन ने कहा—

"हम और हुमायूं वास्तविक आप के यश की बराबर प्रशंसा करते थे। सेना में हम लोगों ऐसे और भी बहुत से विद्रोहोन्मुख लोग हैं। तीस सहस्र अश्वारोही का

सेनापति मासूमी फरांगुदी भी विद्रोह तत्पर है। किन्तु राजा टोडरमल ने हम लोगों के आन्तरिक मानस को जान लिया है और इतनी चोकसी के साथ काम करते हैं कि हम लोगों की बुद्धि काम नहीं करती। किन्तु आपने अपनी वाक्यपटुता से अथवा बुद्धिकौशल से टोडरमल को ऐसा अंधा कर रक्खा है कि कुछ समझ में नहीं आता। आप बड़े धन्य हैं।"

इन्द्रनाथ और भी विस्मित हो कर बोले "मैं आप लोगों की बातों का कुछ भी अर्थ नहीं समझा।"

तर्खान ने फिर कहा "क्यों आप हम लोगों को छिपाते हैं? हम लोगों ने अनेक बार आपुस में बैठ कर आप की प्रशंसा किया है, अनेक बार मद्य पी कर आप की जय ध्वनि किया है; और कितनी बार हम लोगों ने अपने मन में विचार किया है कि जब लोग बिगड़ेंगे, इन्द्रनाथ को अपना सेनापति बनावेंगे।"

तर्खान और भी कुछ कहा चाहता था इतने में इन्द्रनाथ ने क्रोध कर के कहा "मैं विद्रोही नहीं हूं। यदि आप लोगों ने सोचा है कि मैं कोई गुप्त चर हूं, प्रवंचक हूं अथवा विद्रोह की कामना से राजा टोडरमल की सेवा में नियुक्त हुआ हूं तो यह आप लोगों की बड़ी भूल है और यदि आप लोग विद्रोही हैं तो मुझ को जाने की आज्ञा

दीजिये, मैं आप लोगों का साथी नहीं हूं और अभी जा कर सब वृत्तान्त राजा टोडरमल से कहूंगा। आप लोगों ने बड़ी कुनय में मेरे पास पत्र भेजा था।"

हुमायूं दिवाना और नसीन कामिनी के मुंह पर कुछ भारीपन आगया। दोनों सोचने लगे कि "हमलोग इतने दिन बड़े धोखे में रहे। मासूमी फरांगुदी क्या हिन्दुओं को नहीं जानते?" दोनों तरवार म्यान से निकाल कर पकड़ गये। इन्द्रनाथ कुछ खड्ग विद्या में कम तो थे ही नहीं तुरन्त उन्हों ने भी तरवार निकाल लिया। हुमायूं ने हंस कर कहा,—'मैं समझता हूं कि आप को अभी तक हम लोगों का विश्वास नहीं है और इसी कारण हम लोगों से विद्रोह मंत्रणा प्रगट नहीं करते। सत्य है यदि इतना गुप्त करने की क्षमता आप में न होती तो राजा टोडरमल को पराक्त कैसे करते। किन्तु हम लोगों पर विश्वास न करने का कोई कारण नहीं है, हम लोगों से कोई बात छिपाने का कोई काम नहीं है, आप के इस कर्म में नियुक्त होने के पूर्व ही से हम लोग विद्रोहोन्मुख हैं। यह देखिये पठानों के यहां से कितने पत्र हम लोगों के पास आये हैं।"

इन्द्रनाथ क्रोध के मारे अन्धप्राय हो गये और बोले 'रे पामर यवन! कापुरुष विद्रोही! तुझ को समुचित दण्ड देता हूं। जी चाहता है तुम्हारा सिर काट दूं,—किन्तु

शत्रु के साथ अन्याय युद्ध नहीं करूंगा, अपनी असि सम्भालो।"

दोनों में खूब युद्ध हुआ। तरवार की झनझनाहट उस अन्धकार में जंगल में प्रति ध्वनित होने लगी। इन्द्रनाथ हुमायूं से बलिष्ट थे और असिचालन विद्या में भी निपुण थे। क्षणेक में हुमायूं का शरीर क्षत विक्षत होगया और नखसिख रक्त प्लावित हो गया, और अन्त को पृथ्वी तल पर गिरपड़ा तब इन्द्रनाथ ने बड़े स्वर से चिल्ला कर पूछा "क्योंरे, अब भी राजा टोडरमल के समीप जाकर अपने अपराध को क्षमा करावैगा कि नहीं, नहीं तो मस्तक काट कर पृथक धर देता हूं।"

इस प्रश्न का उत्तर नहीं मिला था इतने में तखान ने पीछे से आकर 'वार' की।

जब तक हुमायूं और इन्द्रनाथ का युद्ध होता था तखान दूर खड़ा देखता था। उन दोनों में ऐसा घोरयुद्ध होता था कि तखान देख कर अवाक हो गया, किन्तु केवल मुहूर्त मात्र के लिये। जब देखा कि हुमायूं गिर गया तुरन्त कूद कर इन्द्रनाथ पर आ टूटा। इन्द्रनाथ पीछे फिर कर उससे युद्ध करने लगे। इतने में हुमायूं उठकर फिर तरवार ले कर खड़ा हुआ। वह कातर तो हो गया था किन्तु साहस नहीं छोड़ा था। दोनों संग होकर इन्द्रनाथ को मारने लगे।

अब तो इन्द्रनाथ बड़े संकट में पड़े। एक मनुष्य को दो मनुष्यों के संग युद्ध करना ठट्ठा नहीं है। तिस में हुमायूं और तखांन ऐसे असि चालकों के संग। केवल हुमायूं की कातरता और निशा के अन्धकार से कुछ जीव रक्षा की आशा थी।

इन्द्रनाथ को कुछ भी चिन्ता नहीं हुई। उन को चिन्ता करने का समय कहां मिला। केवल अपनी अलौकिक असिचालन पटुता के बल वह दो मनुष्यों के सामने इतनी देर तक ठहरे। एक बेर इस को मारते थे और एक बेर उस को मारते थे। वे दोनों भी थक कर पीछे हट जाते और फिर आकर जुटते थे। हुमायूं इस कातरता से हाथ चलाता था कि उस के देखने से बोध होता था कि अब बहुत काल तक नहीं ठहर सकेगा, और जहां वह गिरा कि फिर जय है।

किन्तु यह क्या सामान्य बात थोड़ही थी। जब तक हुमायूं शान्त नहीं होता था इन्द्रनाथ को अपना प्राण बचाना कठिन होगया। यद्यपि वे असिचालन विद्या में बड़े निपुण थे किन्तु अकेले दो व्यक्तियों के सन्मुख ठहर नहीं सके—कोई भी नहीं ठहर सक्ता, उनका भी शरीर क्षत विक्षत होने लगा और रुधिर की नदी बह चली। जब उन्हों ने देखा कि शरीर रक्षा का अब कोई उपाय नहीं है तो

एक २ पग पीछे हटने लगे। आखों से आग बरसती थी, शरीर थरथरा रहा था, अभुरी बांधते २ ओठों में से रुधिर बह चला, सारा शरीर और वस्त्र रुधिर में होगया पलक भांजने का भी अवकाश नहीं था। उस समय इनके शरीर के देखने से बोध होता था कि क्रोध स्वयं मूर्ति मान हो कर रक्ताक्त शरीर युद्ध कर रहा है।

विपद कभी अकेली नहीं आती। इस के व्यतिरिक्त इन्द्रनाथ पर एक और विपद पड़ी। हुमायूं ने बिनू पित भाग्य सहाय के फिर आक्रमण किया। तर्खन ने भी उसी समय और एक प्रकाश किया। एक दहिने से मारता था और दूसरा बायें ओर से मारता था। दोनों के एक साथ आक्रमण बचाने के लिये इन्द्रनाथ ने पीछे हटने की इच्छा की। मन में विचार किया कि यदि एकाएकी पीछे हट जांऊ तो दोनों परस्पर भिड़ जांयगे, । उस समय वे गंगा के तीर पर खड़े थे और क्रम से पानी में जाते रहे। हे माता वसुन्धरे! ऐसे समय में तू भी सहायक नहीं हुई। ऐसा सोचते २ पानी में डूब गये। तर्खान और हुमायूं इन्द्रनाथ को मृतप्राय समझ कर अपने २ काम को चले गये।

पन्द्रहवां परिच्छेद।

अदृष्टपूर्व उद्धार।

Prisoner I pardon youthful fancies;
Wedded ? If you *can*, say no !
Blessed is and be your consort;
Hopes I cherished let them go !

Wordsworth.

हुमायूं और तखान का तर्क बहुत ठीक था क्योंकि इन्द्रनाथ को इतनी चोट लगी थी कि उन के उठने का कोई भरोसा नहीं था। और तो बैठ रहे, ऊंचे करारे पर से गिरनेही से चेतना शक्ति जाती रही थी। दैव संयोग से समीप ही एक नौका में एक युवक जागता था, इन को गिरते देख तुरन्त पानी में कूद पड़ा और इन्द्रनाथ को बचा लिया।

उस नौका के और सब मल्लाह उस समय सो रहे थे वह युवक अकेला बैठा मेघों की भयानक सुन्दरता को देख रहा था। मेघ के गरजने और बिजुली के चमकने से और भी उस को आनन्द होता था मानो इस वाह्यिक मेघ गर्जन और विद्युत प्रकाश से उसके अन्तःकरण के मेघ और विद्युत की शांति होती थी।

अर्द्ध तन लाश को पानी में से निकाल ले आना कोई कठिन काम नहीं है, धीरे २ वह इन्द्रनाथ को नौका के समीप घसीट लाया और अन्त को आप नौका पर चढ़ उन को भी चढ़ा लिया।

इन्द्रनाथ के शरीर में रुधिर देख कर उस को बड़ा आश्चर्य हुआ। बड़े यत्न से उस को मल २ कर धोया और एक सूखा वस्त्र उन को पहिनाया और एक २ घाव को भली भाँति देख २ कर औषधि करने लगा। यद्यपि घाव तो शरीर में अनेक थे किंतु कोई गम्भीर और संघातिक नहीं था। उस को बोध हुआ कि रात भर ऐसे ही रहने से प्रातः काल वेदना बहुत घट जायगी।

रात भर नीन्द अच्छी आयी। प्रातःकाल इन्द्रनाथ ने आँख खोल कर देखा कि एक सुन्दर युवा पुरुष समीप में बैठा है। कुछ काल पर्यंत उस की ओर देखने से इन्द्रनाथ ने अपने मन में कहा कि इस पुरुष को तो मानो मैंने कहीं देखा है किन्तु कहां देखा है स्मरण नहीं होता, बोले— "हे पुरुष! आप ने मेरी प्राण रक्षा की है, मुझ को डूबने से बचाया है यह तो बताइये कि आप हैं कौन, और क्या उपकार करने से मैं आप के इस ऋण से विमुक्त हो सक्ता हूं? आप ने मेरी जान बचाया है यदि राजा टोडरमल से कहा जायगा तो आप को मांगेंगे मिलेगा।"

युवक ने कहा "मैं एक बात चाहता हूं और कुछ नहीं चाहता, किन्तु इन्द्रनाथ क्या आप मुझको भूल गये ?. यह कह कर उस ने हंस दिया।

वह मीठी मुसकान आज तक इन्द्रनाथ को भूली न थी, वह कोकिल ध्वनि अभी तक इन्द्रनाथ के कर्ण कुहर मे गूञ्ज रही थी। झपट कर दौड़े और बोले—

"रमणी रत्न! भिखारिन! मैं इस जन्म तुम को नहीं भूल सका किन्तु यह पुरुष भेष"—

इन्द्रनाथ कुछ और कहा चाहते थे किन्तु उस भिखारिन अर्थात् विमला ने नाक पर उङ्गली रख कर निषेद किया और धीरे २ कहा,—

"इस नौका मे यह नहीं कोई जानता कि मैं स्त्री हूं, जान लेने से फिर अच्छा न होगा। सुनिये।"

इन्द्रनाथ को बड़ा विस्मय हुआ और उस स्त्री के मुंह की ओर देखने लगे। उस का वह भाव पलट गया। वह रसीली चितवन और मन्द मुसकान जाती रही, मुंह सूख गया और गम्भीरता छा गयी। भारी स्वर कर के विमला ने कहा,—

"इन्द्रनाथ! महेश्वर के मन्दिर मे मैंने कहा था कि मेरी एक और भिक्षा है, उस का स्मरण कीजिए। वह भिक्षा यही है कि अब मुझ को भूल जाइये।"

इन्द्रनाथ चमक उठे और मुंह से शब्द नहीं निकला। फिर बिमला ने कहा।

"वह भिक्षा यह है कि जिस प्रेम दृष्टि से मैंने आप को देखा है वह मोहिनी मूर्ति भूल जाय। मेरे हृदय में जो छाया पड़ गयी है वह जाती रहे।"

फिर भी इन्द्रनाथ के मुंह से बात नहीं निकली। इन्द्रनाथ को पहिले भी दो एक बार शंका हुई थी कि स्त्री उन को चाहने लगी है किन्तु इतने प्रेम का ध्यान कुछ नहीं रहा। और अब इस प्रेम के उखाड़ने का यत्न क्यों करती है? इन्द्रनाथ के मन में कोई बात बैठी नहीं और सन्नाटे में हो गए। बिमला ने फिर कहा—

"मेरे हृदय पटल पर चिन्ह पड़ गया है उसके मिटाने की चेष्टा करूंगी और यदि न मिट सके तो उस हृदय को निकाल डालूंगी।"

इन्द्रनाथ ने धीरे से पूछा "तुमारे इस संकल्प का कारण क्या है?"

बिमला ने उत्तर दिया "मुझ को आप के प्रणय की पत्नी होने की इच्छा थी किन्तु उस प्रणय करके किसी की सपत्नी बनने की इच्छा नहीं थी। मैं तो अभागिनी हूं दूसरे के आनन्द में विघ्न डालने से क्या प्रयोजन?"

इन्द्रनाथ को सरला की बातों का स्मरण होगया और चुप के से रह गये।

उसी दिन प्रातः काल "सफ़कर" मे छोरा हुआ कि हुमायूं और मल्लार कन राम को शिविर परित्याग अपनी सेना सहित जाकर रिपु दल मे मिल गये।

इन्द्रनाथ नौका पर चढ़े धीरे २ डेरे की ओर चले।

सोलहवां परिच्छेद।

कमला।

But hawks will rob the tender joys,
That bless the little lint white's, nest,
And frost will blight the fairest flowrs,
And love will break the soundest rest,

* * * *

As in the bosom o' the stream,
The moonbeam dwells at dewy e'en,
So trembling, pure was tender love,
Within the breast o' bonnie Jean.
And now she works her mammie's work,
And aye she sighs with care and pain
Ye wist na what her all might be,
Or what wad make her weel again.

Burrs.

पाठक लोग विचारते होंगे कि विमला ऐसा वेश धारण कर के मुंगेर मे क्यों फिरती है किन्तु इस का उत्र-

रण करने के लिये हम को उस्से पूर्व की कथा भी वर्णन करना उचित है । अतएव हम फिर उसी आश्रम से प्रारंभ करते हैं जहां सरला और इन्द्रनाथ से भेट हुई थी ।

हम पहिले कह आये हैं कि इच्छामती नदी के तीर पर महेश्वर के मन्दिर से कुछ दूर पर एक छोटा सा ग्राम था । मन्दिर के पंडा लोग प्रायः उसी मन्दिर में रहते थे किन्तु चन्द्रशेखर को यह ग्राम बहुत प्रिय था और वह बहुधा वहीं जाकर रहा करते थे । मन्दिर के मुखिया लोग जैसे स्वार्थी और विषयी होते हैं चन्द्रशेखर वैसे नहीं थे । उन का चरित्र बहुत निर्मल था और बहुत से ब्राह्मणों के अनाथ पुत्र और कन्यावों को इसी ग्राम में रख कर उन का भरण पोषण करते थे और भाई बहिन की भांति उन से बर्ताव करते थे । चन्द्रशेखर मन्दिर का काम कई एक विश्वासी पंडों को सौंप आप अपने अनेक आश्रितों को लेकर इसी ग्राम में रहकर महादेव की आराधना करते थे । कभीं २ महेश्वर के मन्दिर में भी चले जाते थे । अमला नाम एक अनाथ कन्या को अपनी कन्या बना कर बड़े लालन पालन से रखते थे । अमला ने इस ग्राम का नाम आश्रम अथवा वनाश्रम रक्खा था, होते २ सब लोग वनाश्रम कहने लगे । अब तो उसी नाम से उस स्थान पर एक भारी गांव बसा है । चन्द्रशेखर का जैसा निर्मल चरित्र था वैसी

ही उन में धर्म परायणता भी थी, उन का स्वरूप देखने से प्राचीन काल के ऋषि मुनियों का ध्यान होता था और वह वनाश्रम भी उसी प्राचीन काल के आश्रम की भांति दरसता था। उन्हों ने बहुत सा प्राचीन शास्त्र भी अध्ययन किया था और ऋषियों ही की भांति रहते भी थे। विद्यार्थियों को पढ़ाना, सहायहीन लोगों का भरण पोषण और एकान्त में भगवत भजन करना यही उन का संकल्प था।

सन्ध्या हो गयी थी जो जो लोग किसी काम को दूर २ निकल गये थे एक २ कर आश्रम को पलटने लगे। घरों के छप्परों पर, वृक्षों के शिखर और लता कुञ्जों में जिधर देखो उधर धुआं छा रहा था। दो एक घरों में दीपक का प्रकाश भी हो रहा था। आश्रम में शान्ति और सन्नाटा छाये था। ब्राह्मण लोग सन्ध्यावन्दना में नियुक्त थे; कोई ब्राह्मणी गृह कर्म कर रही थी और कोई बालक को महाभारत की सुना रही थी। छोटी २ कन्या कोई तो हरिन के बच्चों के कहानी संग खेल रहीं थीं और हरिन के नेत्रों से अपनी सखियों के नयनों की विशालता और उज्ज्वलता की तुलना कर रहीं थीं। नदी से स्त्रियां पानी भरे चली आती थीं और घरों के आँगनों में हरिन और हरिनी रोमस्थन कर रहे थे।

सन्ध्या का घंट बजा और उस की ध्वनि वृक्षों में लड़

कर आकाश को पहुंचो। मनुष्य के हृदय में उपासना उत्तेजक प्रदीप ज्ञान की संतध्वनि की अपेक्षा और कुछ नहीं है। उस पवित्र ध्वनि को सुन कर योगियों के हृदय कपाट खुल गये और वे लोग एकत्रित हो कर ऊंचे स्वर से आराधना करने लगे। अपने रोते हुये बालक को चुप करा के ब्राह्मण की स्त्री ने भी योग दिया। ब्राह्मण की कन्या ने कमर पर का घड़ा उतार के धर दिया और गीत गाने लगी। छोटी २ अबलायें जो हरिन के बच्चे को चारा दे रही थी चारा देना छोड़ २ उसी आराधना में रत हुईं। क्रीड़ा लोलुप बालक गण ने भी थोड़ी देर खेल छोड़ दिया और उसी गीत में भिड़े। बच्चे भी अपनी माता का मुंह देख कर उसी की "नक़ल" करने लगे। आबाल्वृद्ध वनिता के कण्ठ से निकल कर वह गीत ध्वनि भी उसी घण्ट की प्रति ध्वनि के साथ गगन मण्डल में पहुंची। भजन समापन होने पर फिर उस आश्रम ने शान्त भाव धारण किया।

उसी सन्ध्या को दो परदेशी नदी के तट पर पहुंचे। उन में से एक तो वही हम लोगों की सरला थी और दूसरी का नाम कमला था।

कमला बहुत दिन से इस आश्रम में रहती थी। ब्राह्मण की छोकरी थी और वय उसका अनुमान अट्ठारह वर्ष का होगा। वह किस की बेटी थी, किस की वनिता थी,

उस के स्वामी को मरे कितने दिन हुए थे यह कोई नहीं जानता था। पूछने पर वह रोया करती थी अतएव कोई पूछता भी न था।

कमला के स्वभाव और आचरण को देख कर आश्रम निवासी विस्मित होते थे। कमला वास्तविक शान्त, अन्यमन और चिन्ता शील थी। वृक्षों की अन्धकारमय सघन कुंज में एकान्त बैठ कर शोकमय संसार को छोड़ मध्याह्न काल में चिन्ता करना कमला को बहुत भाता था, मध्याह्न कालीन घूघू की प्रेम गीत उसको बहुत भाती थी। जहां इच्छामती आश्रमस्थित आम्र वृक्षों के चरण छूती थी उस स्थान पर अन्धेरी रात में बैठ कर चिन्ता करना कमला को बहुत अच्छा लगता था। उस अनन्त ध्वनि को सुन कर कमला के हृदय में अनेक चिंता हुई। सो क्या चिन्ता थी! लेकिन यह कौन बतावे? यद्यपि चंद्रशेखर उस को अपने घर में रक्खे थे और अपनी कन्या के समान प्रीत करते थे तथापि घर में कमला सदा उदास रहा करती थी, बात करती २ चिन्ता मग्न हो जाती और जब लोग हंस देते तो लज्जित हो कर फिर बात चीत करने लगती थी। वह बातें उस की कैसी मीठी और भाव भरी होती थी मानो सुनने वाले के कान में अमृत पिलाती थी।

कमला एक मात्र सुन्दर स्त्री थी। आंखें दोनों उस

की दृष्टि शान्त और चिन्ता से भरी थीं, सारा बदन चिंता से भरी थीं। शरीर उस का अद्भुत कोमल था, वह कोमलता विधवा के मलिन वस्त्र से आवृत शैवालवेष्टित कमल की भाँति शोभायमान थी, किन्तु फूला कमल नहीं—सन्ध्या समय अधखुला कमल पानी के ऊपरे में जैसे धीरे २ हिलता है, सन्ध्या की छाया में ध्याननिमग्न की भाँति देख पड़ता है, वह सुकुमार तपस्विनी उसी प्रकार सर्वदा चिन्ता में पड़ी शोकमय संसार में अधमुदी सी रहती थी। चन्द्रशेखर को कमला सदा पिता कह के पुकारा करती थी और उन के घर का कुल काम करती थी—बीच २ अवसर पाकर उस सघन वृक्ष कुंज में भी चली जाती थी। शिखंडिवाहन ने उस का नाम वनदेवी रक्खा था—उन्ही की देखा देखी और लोग भी उस को उसी नाम से पुकारते थे। जो स्त्री ऐसे अकेले वन वन फिरने में मग्न रहती थी उसको वन की रानी कहना अनुचित नहीं हो सक्ता।

आज सन्ध्या समय कमला सरला को संग लिये वन में फिरती थी—इस क्षण में दोनों नदी के तीर पर बैठी थीं। कमला सरला को बहुत चाहती थी,—उस सरल चित्त बालिका को कौन नहीं चाहता था? सरला भी कमला के दुःख से दुःखी होती थी,—क्रमशः दोनों में बड़ा प्रेम हो गया था।

पाठक महाशय पूछेंगे कि सरला को अब क्या दुःख है? बालिका के हृदय में क्या चिन्ता? हमारा उत्तर तो यह है कि अब सरला बालिका नहीं है,—हृदय क्षेत्र में प्रेम का बीज पड़ गया है।

जिस दिन इन्द्रनाथ सरला से विदा हुए उसी दिन से उस ने जाना कि प्रणय किस को कहते हैं और चिन्ता किसका नाम है। सरला अभी भी पूर्ववत् स्नेहमयी कन्या थी किन्तु अब माता की सेवा सुश्रूषा करती २ रहती थी और एक और व्यक्ति का ध्यान आ जाया करता था, एक और प्रेम मूर्ति उस के अन्तः चक्षु के सामने फिरा करती थी। यद्यपि अभी भी सरला पूर्ववत् श्रम करती थी किन्तु काम करती २ ठण्ढी सांस लेने लगती थी और आंखों में पानी भी भर आया करता था। मारे लज्जा के आंसू पोंछ कर फिर काम करती और फिर आंखें भर आती थीं। उस बालकहृदया के मुखकमल पर वह आंसू की धार बहती देख कर हृदय विदीर्ण होता था।

क्या चिन्ता थी, सरला पूछने से बता नहीं सकी थी; किन्तु हम अनुभव कर सके हैं। रुद्रपुर में उस चांदिनी रात में जो मधुर मूर्ति देखने में आयी थी वह क्या फिर कभी देखने को मिलेगी? जिस के कण्ठ में हास विलास पूर्वक माला पहिनाया था क्या उस का फिर कभी दर्शन

होगा ? प्यारे इन्द्रनाथ फिर कभी दरस दिखावैंगे ? यही चिन्ता करते २ सरला काम का करना भूल जाती थी, और चारो ओर शून्य दिखायी देने लगता था। ज्ञान चक्षु द्वारा वही रुद्रपुर की कुटी दिखायी देती थी,—उसके निकट वह फुलवारी—उस फुलवारी के फूल वृक्ष, ऊपर निर्मल प्रकाशमय आकाश,—और उसी चाँदनी रात में इन्द्रनाथ की प्रेमप्रतिमा—फिर एकाएक नयनों से पानी बहने लगता था।

आंसू पोंछ पांछ कर फिर काम करने को बैठती थी और फिर वही चिन्ता 'दामनगीर' होती थी। जैसे संध्या के समय छाया धीरे २ गगन मण्डल और पृथ्वी में छाय जाती है उसी प्रकार वह अगाध चिन्ता भी धीरे २ सरला के हृदय में छाय जाती थी, मन में विचारती थी कि यदि एक बेर भी प्रीतम का दर्शन हो जाता, क्षण मात्र के लिये भी यदि देख पाती तो कहती, क्या कहती ? नहीं, कुछ नहीं। यदि ऐसा होता तो अपना जलता हुआ हृदय उनके हृदय में स्थापित कर के और उन के कान्धे पर मस्तक रख कर एक बेर पेट भर रो कर स्वर्ग सुख लाभ करती। हा ! हतभागा ! रोना छोड़ और तेरी कोई इच्छा नहीं है।

फिर चित्त ने आक्रमण किया। क्या इन्द्रनाथ एक बार भी देखने को नहीं मिलैंगे ? अवश्य मिलेंगे, किन्तु कब ?

अभी क्यों नहीं दर्शन होता ? इन्द्रनाथ आते हैं क्या ? क्या वे सरला को भूल गये ? फिर सरला की आंखों में पानी भर आया । इन्द्रनाथ कुशल से तो हैं ? आंसू से सारा बदन भीग गया ।

वह बालिका अपनी प्रेम कहानी किसी से कहती नहीं थी, जिस पावक करके हृदय दग्ध हो रहा था वह किसी को दिखाती नहीं थी, चुपचाप अपने नयन निसृत जल से उस को बुझाया चाहती थी, व्याधा की मारी अधमरी कपोती की भांति उस निर्जन निकुंज बन में दुःख सहन करती थी । और आश्रम निवासी—हाय ! उन में कितने लोग इस सरला के दुःख को जानते थे ? ब्राह्मण लोग अपनी क्रिया में लगे रहते थे, सरल चित्त ब्राह्मण की कन्या इस दुःख को समझती ही नहीं थीं, सरला को कातर देख कर पूछती थीं "सरला ! आज तुमारा मुख बहुत मलिन है,—क्या कोई पीड़ा होती है ? किसी प्रकार का दुःख हुआ है क्या ? कि मन में कोई भावना उत्पन्न हुई है ?' इन प्रश्नों को सुन कर सरला को और भी लज्जा होती थी, और वहां से उठ कर अनत चली जाती थी । इस समय उस की अमला कहां है ? स्नेहगर्भ वचन द्वारा शान्त करने वाली, मन्द मुसकान द्वारा चिन्ता दूर करने वाली अमला कहां है ?

आश्रमनिवासियों में से एक जन ने सरला के मन का भाव समझा था । कमला कभी २ सरला को अपने साथ उस निर्जन नदी के तीर पर उस सघन छायामय निकुंज में लेजाती, सान्त्वना वचन द्वारा समझाती और उसको अपनी चिन्ता भगिनी बनाती थी; पवित्र प्रेमकी बातें करती, दुःख की कहानी कहती, सहिष्णुता की बात करती, सरला की आंखों की आंसू पोंछती और अपनी छोटी बहिन के समान प्यार करती थी । सरला उसकी बातें सुनती २ अपना दुःख भूल जाती थी और उस के मुंह की ओर देखने लगती । जिन जनशून्य स्थानों में जाते उसको डर लगता था कमला के संग वह सर्वत्र चली जाती थी । अर्थात् दोनों एकत्र हो कर कमला अपना हृदय कपाट खोलकर अनेक प्रकार की बातें उससे करती थी और अपनी गोपनीय भावना भी उस से प्रकाश करके कहती थी । सरला भी बालिका स्वभाव से सब सुना करती थी । वह भाव उसको बहुत भला मालूम देता था और उसी में अपना दुःख भुलाए रहती थी ।

आज संध्या समय दोनों उसी नदी के तीर पर बैठी थीं।

सत्रहवां परिच्छेद ।

बूझो तो कौन है ?

Manfred.—Oblivion, self oblivion:—

Byron.

कमला ने कहा—"सरला।"

सरला ने कुछ उत्तर नहीं दिया बरन कमला के मुंह की ओर देखने लगी।

कमला ने पूछा "आज तू इतना मलिन क्यों है?"

सरला ने मुंह नीचे कर लिया।

कमला ने देखा कि आज दुःखवेग प्रबल है। चाव के साथ सरला के समीप सरक कर बैठी और उस का दोनो हाथ पकड़ कर नेहमई बातों से उसको भोराने लगी। जब उसका चित्त कुछ शान्त हुआ कमला ने कहा,—

"बहिन! इस पृथ्वी मे तुमसे भी बढ़ कर हतभागी स्त्रियां हैं। तुमारे तो माता है, संसार मे रहने का स्थान है, हृदयेश्वर जीते हैं, तुमको तो सब प्रकार की आशा और भरोसा है। किन्तु जगत मे तो ऐसी भी अनेक स्त्रियां हैं जिन को कोई अवलम्ब नहीं है, भविष्य की आशा नहीं, भूतपूर्व बातों का कुछ स्मरण नहो, संसार

में सुख नहीं और न कोई दुःख का साथी है केवल एक चिन्ता तो निसन्देह संग नहीं छोड़ती।"

सरला ने किंचित लज्जित होकर कहा "बहिन ! जब मैं तुमारी बातें सोचती हूं अपना दुःख भूल जाती हूं, तू कैसे यह यातना सहन करती है ?"

काम।—"विधाताने स्त्रीका जन्म केवल दुःख सहन करने को दिया है। पुरुष जितना सहन करते हैं हम को उनका दशगुण सहन करना चाहिए।"

सर।—"और यदि न सहन कर सकें ?"

काम।—"तब स्त्री का जन्म काहे को लिया ? देखो, मनुष्यों को तो मानसम्भ्रम है, धनसम्पत्ति है, कुल मर्यादा है, नाम गौरव है, जीवन के अनेक अवलम्ब हैं, अनेक सुख के कारण हैं, एक न हो तो दुसरा ढूंढ सक्ता है यदि वह भी न मिले तो तीसरा ढूंढ सक्ता है और इसी से जीवन व्यतीत होता है। इच्छा पूर्ण हो वा नहीं किन्तु जब तक इच्छा रहती है आशा अवश्य रहती है और तबतक "जिन्दगी" भी भारी नहीं होती। ऐसा कौन मनुष्य है जिस को आशा नहीं है ? युवा लोगों को प्रेम, उच्चाभिलाष, मान, सम्भ्रम, क्षमता और ख्याति लाभ की लालसा रहती है, वृद्ध को धन, पुत्र और वंश वृद्धि की अनेक कामना रहती है, और हतभागा स्त्रियों को क्या है ?"

कमला एक क्षण चुप रही । सरला की ओर देखा तो एकाग्रचित्त से सुन रही थी और उसीके मुख की ओर देख रही थी, फिर कहने लगी—

"अभागिन स्त्रियों को क्या है ? इस अपार संसार समुद्र मे उन की केवल एक क्षुद्र और क्षणभंगुर नौका है,—अर्थात् प्रेम । उसी प्रेम के ऊपर निर्भर करके वे संसार मे आती हैं, यदि वह नौका डूबी तो फिर कोई सहाय नही, सुख का कोई उपाय नही, आशा नही, भरोसा नही, उस अगाध जलराशि मे डूबने के व्यतिरिक्त दूसरा कोई यत्न नही है।"

सरला ने कहा,—"बहिन ! मै समझती हूं कि तुम को बड़ा दुःख है, क्योंकि तुमारे कोई नही है, कोई आशा भी नही है।"

कमला ने उत्तर दिया,—

"हे सरला ! तिसपर भी मै दुःखिनी नही हूं। चिन्ताके खेल से मैने सब प्रकार का दुःख भूल जाना सीखा है,—केवल चिन्ता मेरी जीवन स्वरूप है । मध्यान्ह काल मे जब मै उस वृक्ष के तले बैठ कर उस की पत्तियों की मरमराहट को सुनती हूं, और घूघू की मृदुगान श्रवण करती हूं मेरा हृदय शान्ति रस से परिपूर्ण हो जाता है । वह जो आकाश मे खण्ड २ श्वेत मेघमाला के बीच से च-

न्द्र की प्रभा दीख पड़ती है, कभी अन्धकार में बादलों में आच्छादित हो जाती है और कभी फिर परिष्कार नील गगन मंडल में प्रगट हो कर ज्योति विस्तार करती है; वही चंद्र और इसी आकाश की ओर देख कर मैं निरुपम शान्तिलाभ करती हूं! प्रकृति की शान्ति और निस्तब्धता का अनुकरण करते २ मेरे हृदय ने भी शान्ति और निस्तब्ध भाव धारण किया है। यही सब देख कर मेरे हृदय में जिस अनन्त, अपरिसीम और अनिर्वचनीय भाव का प्रादुर्भाव होता है मैं उसका वर्णन नहीं कर सकती, उसी भाव करके मैं उन्मत्त प्राय रहती हूं—उदासिनी की भांति रहती हूं। मैं संसार में नहीं हूं,—जिस स्थान पर स्वभाव की अनन्त महिमा विराजमान रहती है, मेरा मन सर्वदा उसी स्थान पर विचरण करता है।"

सरला एक क्षण चुप रह कर बोली "बहिन! मैं तुम्हारी पूर्व कथा जानने की बड़ी अभिलाषा रखती हूं।"

कमला ने कहा, "सरला! तुमने भी वही बात हम से पूछा! आश्रम निवासी गण से तो मैंने कुछ बताया नहीं, किन्तु हे बहिन! तुमसे छिपाने की कोई बात नहीं है। मैं सत्य २ कहती हूं मेरा जीवन किसी अपरूप मोह जाल में फंसा है किन्तु मैं उससे विमुक्त नहीं हो सकी;—मुझ को कुछ स्मर्ण भी नहीं है।"

सरला को आश्चर्य हुआ—फिर पूछा "कुछ स्मर्ण नहीं है? तुमारा घर कहां है?"

कम। —"मुझ को स्मर्ण नहीं है।"

सर। —"तुमारे पिता का क्या नाम है?"

कम। —"मुझ को स्मर्ण नहीं है।"

सर। —"तुमारा बिवाह कहां हुआ था?"

कम। —मुझ को कुछ स्मर्ण नहीं है।"

सर। —"तुमारा स्वामी कब और कैसे मरा?"

कम। —"मुझ को स्मर्ण नहीं है।"

सरला को बड़ा बिस्मय हुआ। यदि दूसरा कोई होता तो जानता कि कमला झूठी है किन्तु सरला के मन मे यह भाव नहीं आया। जिस को अपनी बड़ी बहिन के समान आदर करती थी क्या वह झूठ कहैगी ऐसा बिश्वास सरला नहीं हुआ पर यह भी तो बिश्वास नहीं हो सक्ता कि कोई अपने जीवन की सारी बात भूल जाय। सरला के मन मे निश्चय हो गया कि कमला के जीवन मे कोई भेद है, बिचारी किसी कठिन शाप कर के शापित है?

कमला ने फिर कहा "मुझ को केवल इतना स्मर्ण है कि कुछ दिन संज्ञा शून्य हो गयी थी, हृदय मे बड़ी पीड़ा जान पड़ती थी और दुःख के मारे अस्थिर हो गयी थी। उसी पीड़ा के समय स्वप्न में एक देवमूर्त्ति देख पड़ी। ऐसा

जान पड़ता था कि अपरिसीम नील आकाश के बीच में चन्द्र कला की भांति उज्ज्वल एक छोटेसे श्वेत मेघखण्ड में वह मूर्त्ति बैठी है। एक वेर सोचा कि इन्द्र महाराज होंगे किन्तु उसके गले में तो यज्ञोपवीत था, हाथ में करवारि थी और उसी करवारि द्वारा मानो गगन सागर में उस मेघरूपी नौका को चला रही थी। महादेव के हाथ में त्रिशूल होता है और गदाधर के करकमल में संख, चक्र, गदा, पद्म रहता है, करवारि किसी देवता के हाथ में मैंने कभी नहीं सुना था। आश्रम निवासी भी कोई बता नहीं सके थे। जो हो, उस पीड़ा से जब मुझ को आराम हुआ लोगों ने कहा कि मैं विधवा हो गयी। किंतु पुरानी बातें मुझको कुछ स्मर्ण न थीं, स्वामी की बातों की कुछ सुधि नहीं थी, अतएव विधवा होने का क्लेश भी कुछ जान नहीं पड़ा।"

सरला और भी विस्मित हुई—ऐसी अपूर्व बात सुनकर कुछ भय का भी संचार होने लगा। आश्रम निवासी लोग तो कमला को "वन देवी कहा ही करते थे उस की बात चीत सुन कर सरला को भी वोध होने लगा कि कमला मानुषी नहीं है अवश्य कोई देवी होगी, । विशेष शोक होनेसे स्मरण शक्ति जाती रहती है इसका सरला अनुभव नहीं कर सकी थी। क्षणेक पीछे सरला ने फिर पूछा,—

कमला ने उत्तर दिया "बहिन ! मेरे लिये दुःख करने का कोई प्रयोजन नहीं। दुःख का कारण स्मृति है। जिस को स्मृति नहीं उस को दुःख क्या? मुझ को यदि अपने पिता का चेत होता, स्वामी का चेत होता तो क्या मैं जीवन धारण कर सकी! अभी तो मैं बालिका स्वभाव संसार चिन्ताशून्य इस बन में विचरा करती हूं, नाना प्रकार की पारलौकिक चिन्ता कर के सुखलाभ करती हूं, प्रकृति की असीम सौन्दर्य देख कर चरितार्थ होती हूं। अब तो पिता भी और स्वामी भी प्रकृति ही है, इस को छोड़-सरा मेरे न पिता हैं न स्वामी है।"

दोनों इसी प्रकार सबेर तक बात चीत करती रही। आधी रात हो चली थी. आकाश क्रमशः मेघाच्छन्न होने लगा। चन्द्रमा मेघ से छिपे और मेघ राशि ने भी क्रमशः गम्भीर नीलवर्ण धारण किया। बीच २ कौंधा भी चमक जाता था, धीरे २ पवन भी चलने लगा। सरला घर चलने को हुई किन्तु कमला स्थिर नयन उसी मेघराशि की ओर देखने लगी, स्थिर चित्त उसी बन की वायु का शब्द सुनने लगी। विकसित बदन हो कर सरला को विद्युत छटा दिखाने लगी। इच्छामती का फेनचूड़ तरंगमाला दिखाने लगा। सरला भी अनायास उसी ओर देखने लगी।

इतने में एक जन पीछे से आया और सरला की दोनों आंखें दाब कर बोला "बूझो तो कौन है?"

सरला स्वर तो पहिचानती थी किंतु नाम मुंह में नहीं आता था, एक २ कर के अपनी आश्रम निवासी संगिनियों का नाम लेने लगी—

"निस्तारणी"—आंख नहीं खुली।

"मनमोहनी"—तब भी नहीं खुली।

"योगेन्द्रमोहनी"—आँख नहीं खुली।

"तारा"—

"तेरा सिर, मुझ को अभी भूल गयी? तभी तो अभी ब्याह नहीं हुआ, ब्याह होने पर तो जाने क्या होगा!"—ऐसा कहती हुई सरला की प्रिय सखी अमला आकर सन्मुख खड़ी हुई।

उस समय सरला के विस्मय की सीमा नहीं थी—"सखी?" "कहां?" "कब आयी?"—और कुछ बात मुंह से नहीं निकली। यह विस्मय केवल क्षण मात्र के लिये था बहुत दिनों के पीछे दुःख के समय प्राण सखी को पा कर सरला का हृदय आनन्द से पूर्ण हो गया, वह आनन्द सम्हल नहीं सका उमग चला। सरला जल परिपूर्ण नेत्र अमला के गले में लिपट गयी और उस की गोद में घुस रही। अमला ने जिस समय अनेक दिन पीछे उस प्रेम पुतली को गले लगाया उस के नेत्र भी निर्जल नहीं रहे।

थोड़ी देर में अमला बोली "इतनी रात को यहां अ-

न्धेरे में वैठी है? मैने तेरे लिये आश्रम के कुओं में बांस डलवा दिये।"

सर।—"कमला के साथ आयी थी बात करते २ इतनी रात हो गयी। क्यों सखी तू आज आई है?"

अम।—"हां मै आज ही आयी हूं, बहुत दिन से तेरे पास आने आने करती रही, पर, वह बुढ़वा क्या छोड़ता है? आज कितने दुख के बाद तो आयी हूं, तू यहां आश्रम में नये २ बन्धुः पाकर अपनी पुरानी सखी को भूलती जाती है?"

सर।—"नहीं सखी, मै तो रात दिन तेरी ही बातों का ध्यान किया करती हूं, और सखी"—सरला ने एका एक चुप हो कर सिर नीचे कर लिया।

अमला के मन में सन्देह हुआ,—सरला के मुंहकी ओर स्थिर दृष्टि कर के उस के म्लान और प्रफुल्लता शून्य और कोटर प्रविष्ट दोनों आंखों को देख कर अमला के मन में और भी सन्देह हुआ। धीरे धीरे सरला से पूछा "रात दिन तू किस की चिन्ता किया करती है, सखी?"

सरला ने मुंह नीचे कर लिया,—अमला ने जाना "गीहू घुने हैं।" अमला का मुंह गंभीर हो गया,—फिर पूछा—

"छि! सखियों से तू बात बनाती है,—समझी, तो तू मुझ को नहीं चाहती?"

सर।—"नहीं, सखी चाहती क्यों नही।"

भ्रम। — "अच्छा तो यह बता किस पुरुष की चिन्ता में तू रात दिन व्यस्त रहती है।"

सरला फिर चुप हुई।

भ्रमला से कभी कोई बात छिपाती नहीं थी, छिपा सक्ती भी नहीं थी, तथापि वह प्रिय नाम मुंह में आकर बाहर नहीं निकलता था। लज्जा से सरला का मुंह बंद हो गया।

सरला के भीतर जो यातना हो रही थी उसको भ्रमला ने जान लिया। समझ कर फिर पूछा, —

"अच्छा क्या मैं उस को चीन्हती हूं?"

सरला ने "टुस" से कहा "हां।"

भ्रमला ने कुछ सोच कर कहा "तो इन्द्रनाथ?" इस पर सरला को कुछ कहने की आवश्यकता नहीं थी नाम सुनतेही वह चिहुंक उठी। भ्रमला ने समझा "ठीक बूझी"

भ्रमला चुपचाप कुछ सोचने लगी। पृथ्वी में ऐसा कोई नहीं था जिस को भ्रमला सरला की अपेक्षा विशेष चाहती थी — वही सरला आज अपार प्रेमसागर में डूब रही है। क्या इस सागर के तीरपर भी पहुंचने की आशा है? यदि है तो क्या यह बालिका भी किनारे लग सक्ती है? भ्रमला ने मन में कहा, "विधाता! मैं अपने लिये कुछ नहीं चाहती, — तुम इस बालिका के ऊपर कृपा करो, मेरी प्राण सखी की सहायता करो।"

क्षण एक के पीछे ममता चिन्तावेग सम्बरण कर फिर अपना प्रफुल्ल भाव धारण करके सरला को समझाने लगी, बोली, — "तो तू चिन्ता किस बात की करती है ? मैंने सुना है कि इन्द्रनाथ पहुँच गये हैं। और वहाँ से अब शीघ्र आवेंगे। तुम्हारी माता भी, मै समझती हूं इस विवाह को अस्वीकार नही करेंगी, और इन्द्रनाथ यद्यपि कुछ उन्मत्त तो है किन्तु लड़का अच्छा है। तेरे मन की बात इन्द्रनाथ जानते हैं ?"

सर। — "जानते हैं।"

मम। — "वे राज़ी हैं ?"

सर। — "हाँ, हैं।"

मम। — "तो वर, वर, कन्या सब ठहर गया है, — हमको यह सब नही मालूम था।"

सरला लज्जित हो गयी।

ममता ने फिर कहा "सखी के मन की यह सब बातें कौन जान सक्ता है। मै तो जानती थी कि मेरी सखी अभी बालिकाही है! यह सब चरित्र कौन जानता है। तो वर मन में समाय गया है ?"

सरला और भी लज्जित हुई, — परन्तु इन्द्रनाथ की बात चीत होती थी अतएव उस का हृदय फूला नही समाता था।

अमला ने फिर कहा – "और कन्या तो वर की आंखों में अवश्य गड़ गयी होगी, – इस सोने के मुंह को देख कर किस को प्रेम संचय नहीं होगा? मैं यदि पुरुष होती और ब्राह्मण के घर में जन्म होता तो तुझ को देख कर पागल हो जाती।" यह कह कर अमला ने सरला का सिर नीचे से धीरे २ ऊपर उठा कर उसके मुंह की ओर निहारने लगी। अब आश्रम की ओर चलीं॥

अट्ठारहवां परिच्छेद।

दो अतिथि।

And wherefore do the poor complain,
The rich man asked of me.

* * * * *

You asked me why the poor complain,
And these have answered thee.

Southey.

जब सरला और अमला से पहिले पहिल भेंट हुई कमला उन को छोड़ कर आश्रम की ओर जाती थी। किन्तु सरला मार्ग छोड़ कर इच्छामती के तीर २ चली। इच्छामती नदी के जल में मेघाच्छन्न आकाश की भयानक परछाहीं

देख पड़ती थी; लहरैं धूम के साथ चल रही थीं ; फिन राशि करके चाहत सुवर्ण रौप्यालँकार विभूषित श्यामांगी उन्मादिनी की भांति शोभा पाती थी। इसी अपूर्व शोभा के देखने के लिये कमला ने समीप का मार्ग छोड़ कर नदी तीर की राह ली थी।

चलते २ कमला ने रोने का शब्द सुना। वह शब्द बालक कंठ निसृत ज्ञान पड़ता था, – इतनी रात को नदी के तीर पर किस का बालक रोता है। कमला के हृदय में दया का संचार हुआ और उसी रोने के शब्द को अंकन कर शीघ्रता पूर्वक उसी ओर को चली।

कुछ दूर जाकर देखा कि किनारे पर दो बालक एक वृक्ष के नीचे बैठे रो रहे हैं, दोनों के शरीर और वस्त्र सब पानी से भीगे थे उस पर से ठंडी हवा लगने से ते जाड़े के मारे कांप रहे थे।

कमला ने बड़े स्नेह से पूछा "बेटा तुम कौन हो जो यहां बैठे रो रहे हो?" यह सुन कर दोनों बालक कमला की ओर देखने लगे। उन की अवस्था अभी बहुत थोड़ी थी, एक दस वर्ष का था और दूसरा उससे दो एक वर्ष बड़ा था। दोनों में से एक बोला, –

"हम मल्लाह के लड़के हैं, रुद्रपुर से नौका लेकर आए थे, पलटने के समय पथ में पानी बरसने लगा। हे माताः

तुम चाहे जो हो, हमारी सहायता करो, हमारे कोई नहीं है।"

दूसरे बालक ने कहा, "माता, हमारे कोई नहीं है। हमारी सहायता करो।" दोनों की आंखों में जल भर आया।

कमला के कोमल हृदय में और भी दुःख और दया का संचार हुआ, बोली—"रुद्रपुर से कहां को आए थे?"

प्रथ, बा।—"इसी आश्रम को आए थे, तीसरे पहर को कुछ खा पीकर फिर रुद्रपुर को जाते थे, मार्ग में पानी पड़ने लगा।"

कम।—"फिर आश्रम को क्यों नहीं चलते? कुछ दूर तो है नहीं, आज वहीं रहो कल घर चले जाना।"

प्रथ, बा।—"यही विचार किया था, किन्तु वायु उलटा चलता है आश्रम की ओर नौका एक परग भी नहीं टसकती।"

कम।—"नौका कहां है?"

प्रथ, बा।—"यही तो है" यह कह कर कमला को उस के समीप लेगया, नौका वहीं बंधी थी।

कमला ने कहा "नौका को इसी स्थान पर रहने दो तुम सब आश्रम को चलो।"

दू, बा।—"वायु बहुत प्रचंड है, जरासी टूट जायगी तो नौका डूब जायगी।"

कम।—"अच्छा तो नौका को ऊपर खींच लो।"

हू, था।—"हम दो बालकों से नौका ऊपर नहीं आसकी" कम।—'आवो, मैं भी हाथ लगा देती हूं।"

एक ओर उस परोपकारी ब्राह्मण की कन्या ने पकड़ा और दूसरी ओर बालकों ने, नौका छोटी सी तो थी ही, उठा कर तीर पर धर दिया और दो आम के वृक्षों में ज-कड़ कर बांध दिया। तब वे दोनों बालक स्नेहगर्भस्वर बोले,—"माता, अब अधिक कहां तक कहें, आज तुम ने हम लोगों को बचा लिया।"

कमला ने कहा "आओ बेटे आश्रम को चलें, बादल घेरे हैं जान पड़ता है कि पानी खूब बरसैगा" और तीनों आश्रम की ओर चले। क्रमशः सम्पूर्ण आकाश मेघा-च्छन्न हो गया और पश्चिम दिशा में मेघ जमा होने लगे। पवन भी रह २ कर झकोरने लगा, इन्द्र के खड्ग की दमक से आंखें चमक जाती थीं, वरुण की हुंकार के भय से वृक्ष लतादि कांपने लगे—सारी पृथ्वी हिलने लगी। बालक बेचारे भी कमला के अंग में जा चिपटे। कमला विस्मयोत्फुल्ल लोचन से प्रकृति की उस भीम शोभा को देखने लगी, अलौकि आनन्द सागर में लोटने लगी। क्षणेक पीछे कमला ने बालकों की ओर देख स्नेह पूर्वक पूछा, "तुम तो अभी बहुत छोटे हो, अभी से इस क्लेश से जीवन यापन करते हो? तुमारे क्या पिता माता नहीं है?"

नवीन ने उत्तर दिया, "हैं तो, किन्तु बूढ़े हैं, काम काज नहीं कर सक्ते। आज माता हम लोगों के लिये कितना घबड़ाती होगी,—जानेंगे कि हम लोग इसी तूफान में डूब गए।"

रखाल ने कहा, "दादा के मरने के पीछे थोड़ा सा भी वायु चलने पर माता हम लोगों को बाहर नहीं जाने देती थी। आज कैसी घबड़ाती होगी।" दोनों रोने लगे।

कमला ने उनको चुप करा कर फिर पूछा, "तुमारा दादा कब मरा था?"

रखाल ने उत्तर दिया, "छ महीना हुआ दादा एक दिन मछली मारने गए, तूफान आया डोंगी उलट गयी, तब से फिर उन का पता नहीं लगा। पिता तो घबड़ा गये और उसी दिन से चारपायी सेवन करते हैं, यदि हम लोग न हों तो मुंह में अन्न भी न जाय, और माता तो उसी दिन से अहर्निशि रोती ही रहती है।" कमला ने फिर पूछा, "तुम लोग रोजगार कैसे करते हो?" नवीन ने कहा "कभी मछली मारते हैं, कभी ईंधन जमा कर के "कारखाना" वालों के हाथ बेच लेते हैं, और जब कुछ नहीं होता तो यात्रियों को इधर से उधर पहुंचाते हैं उसी में कुछ मिल जाता है। आज एक भद्र पुरुष को रुद्रपुर से इस आश्रम में ले आये हैं, वे हम लोगों के ऊपर बड़ी दया

रखते हैं, जब कभी कहीं आते हैं तो हमारेही नौका पर आते हैं। और जब हम लोगों के पास कुछ खाने को नही रहता तो उनके स्वामी नवीनदास के सामने जा कर खड़े होते हैं, और वे हम लोगों को चावल, दाल, पैसा जो कुछ हो वे दिये नही फेरते।"

रखाल ने कहा, "तिस पर भी किसी २ दिन नही चल सका—कभी २ बादल बून्दी के दिनों में ऐसा भी हुआ है कि घर में खाने को कुछ नही रहा, हम लोग पड़े रोते हैं, माता भी हम को देख २ रोती है, जल खोटने का कोई उपाय नही है, गांव में उधार मांगने से मिलता नही गरीब को कौन उधार देगा ? माता कभी २ कहती है, 'जाव नवीनदास के यहां से कुछ मांग लाव' – किन्तु बाहर निकलते २ फिर बुला लेती और कहती, 'इस पानी में बाहर न जाव, जीते रहोगे तो खाने को मिलहीगा।'

इसी प्रकार बात चीत करते २ दोनो बालक कमला के संग २ चले। बातें उनकी ओराती ही नही थीं,—जब दो दिवाने इकट्ठे हो जाते हैं फिर बातों की क्या कमी? जैसे दुःख की कहानी लम्बी थी वैसी ही बातों की लड़ी भी लम्बी थी। किन्तु इस जगत में अभागिनी दुःख की कथा कह कर एक बार रोवैगी ऐसा समय भी बहुत कम

है, और कर्महीनों की राम कहानी सुनताही कौन है ? धनी लोग अपने धन के मद में मत्त रहते हैं, विषयी लोग अपने विषय में "डूबे" रहते हैं और मानी लोग तो नीचों से बातही नहीं करते,—संसार में सभी अपनी २ दुष्ट प्रकृति के सेवन में व्यस्त रहते हैं, अभागी लोगों का आर्त्तनाद कौन सुने, दुःखी लोग किसके पास जाकर रोवैं ?

तीनों जने चले जाते थे मार्ग में महाश्वेता से भेंट हुई वह शिवमूर्ति का पूजन कर आश्रम को जाती थी दूर से कमला को देख कर बोली—

"क्यों बेटी, कमला ? आवो सखी आश्रम को चलैं, इस आंधी पानी में अन्धेरी रात में तेरा बन २ का फिरना क्या अच्छी बात है ? और यह दोनों बालक कौन हैं ?"

कमला ने उत्तर दिया, "यह दोनो आश्रयहीन बालक नौका लिये जाते थे, मार्ग में आंधी पानी आया, अतएव आज इसी आश्रम में हम लोगों के साथ रहैंगे।"

महा।—"आह। इन बेचारों के सम्पूर्ण वस्त्र भींग गए हैं, आवो जल्दी २ आश्रम को चलैं। औ कमला, तेरे साथ मेरी सरला गयी थी, वह कहाँ है ? तूने अपनी सी बनैली उस को भी कर डाला। जैसे रुद्रपुर में उससे अमला से बड़ा मेल था उसी प्रकार इस आश्रम में तुझ को भी वह बहुत चाहती है। किन्तु अभी तक अमला भूली

नहीं है, रात दिन उसी की शोच में रोया करती है। इस संसार में बिपत के समय कौन साथी होता है? और जो कोई होता है उसको क्या फिर कोई भूल सक्ता है?"

सरला के रात दिन रोने का कारण और था, वह कमला जानती थी, किन्तु उस ने महाश्वेता के सामने कुछ नहीं कहा। उत्तर दिया—

"हां, अभी तक कमला को नहीं भूलती, उसी के संग आश्रम की ओर गयी है।"

"और जान पड़ता है कि वन देवी को आश्रम प्रकट करने का समय अभी नहीं हुआ है, अभी तक वन में फिर रही है"—यह कहते हुए शिखिण्डिवाहन सामने आ खड़े हुए।

कमला कुछ लज्जित हो गयी, बोली "शिखण्डिवाहन तुम इस समय रात को कहां जाते हो?"

शि। "पिता चन्द्रशेखर ने हम को तुम्हारे ढूंढ़ने को भेजा है। हम तो वन ही की ओर जाते थे क्योंकि वन-देवी और कहाँ मिल सक्ती है! आप के संग यह दो बालक कौन हैं?"

इसी प्रकार बात चीत करते २ महाश्वेता कमला, शिखण्डिवाहन और वह दोनो बालक आश्रम की ओर चले।

उन्नीसवां परिच्छेद ।

जमीदार की पूर्व कथा ।

But I have woes of other kind,
Troubles and sorrows more severe,
Give me to ease my tortured mind,
Lend to my woes a patient ear;
And let me—if I may not find
A friend to help—find one to hear.

Crabbe.

चन्द्रशेखर और शिखण्डिवाहन को छोड़ इस आश्रम में और दूसरा कोई महाश्वेता की प्रकृति को जानता नहीं था और यह लोग भी इसका चरचा दूसरे किसी से नहीं करते थे ।

चन्द्रशेखर ने जैसे और अनेक ब्राह्मण की कन्यावों को अपने यहां रक्खा था महाश्वेता का भी उसी प्रकार भरण पोषण करते थे । महेश्वर के मन्दिर में से जो कुछ आमदनी होती थी उसी से यह खर्च चलता था ।

आश्रम के शान्त और द्वेष रहित निवासियों के संग रहते २ महाश्वेता का अन्तःकरण भी कुछ २ शान्त हो चला था । किन्तु इस अवस्था में किसी का स्वभाव सम्पूर्ण

रूप से पलट नहीं सका। महाश्वेताका विजातीय भाव उसी प्रकार भीतर सजग रहा था। वह प्रति रात्रि उसी प्रकार वैर निर्यातन के हेतु शिव का पूजन किया करती थी,—उसी प्रकार वैरनिर्यातन की युक्ति विचारा करती थी। शिख-पिडवाहन इस विषय में उस्से कुछ कह नहीं सके थे, मन में विचार किया करते थे कि सिंह पत्नी को शान्त आश्रम में भी रखने से उस का स्वभाव कुछ पलटता नहीं।

आज रात को आंधी पानी के कारण बहुत से लोग आश्रम में आकर ठहरे थे, आश्रम निवासी लोग भी आगन्तुक की सेवा के अतिरिक्त दूसरा सुख नहीं जानते थे। ब्राह्मणी लोग अतिथि लोगों के लिये पाक बनाने में व्यस्त हुईं और अपनी २ कला कौशल प्रकाश पूर्वक नाना प्रकार का उत्तम से उत्तम व्यञ्जन बना कर प्रस्तुत किया। ब्राह्मण लोग भी मीठी २ बातें कह कर उनका मन बह-लाते थे। शीत निवार्णार्थ घर २ अलाव जल रहा था और लोग उसके किनारे बैठे बातें कर रहे थे। अन्तःपुर में रट-णिगी गण भी बैठी बारतालाप कर रही थीं और छोटे २ बालक और बालिका इधर उधर खेल रहे थे। ऐसा जान पड़ता था कि शान्ति और कुशलता ने सम्पूर्ण जगत को छोड़ कर इसी आश्रम में आकर डेरा किया है।

आज चन्द्रशेखर की कुटी में एक धन शाली अतिथि

का आगमन हुआ है अतएव सब लोग खाना पीना कर कर के आकर वहीं बैठे। वह आश्रम ऐसा छोटा था कि सब लोग परस्पर अपने को एकही परिवार के लोग सम-झते थे, स्त्रियां भी एक दूसरे से बात चीत करने में सं-कोच नहीं करती थीं। फलतः आज रात को चन्द्रशेखर के घर में अनेक स्त्री और पुरुष एकत्र थे,—दो एक अपरिचित अतिथियों के आने से भी आश्रम की रीति भङ्ग नहीं हुई।

घर के बीच में अग्नि जल रही थी उसके ठीक पीछे चन्द्रशेखर बैठे थे। उनका वयक्रम पचास वर्ष से ऊंचा था। किन्तु चाहे आश्रम के शान्ति देवकार्य निर्वाह के कारण अथवा मानसिक शान्ति के कारण उनके प्रशस्त ल-लाट में बुढ़ापे का कोई भी चिन्ह नहीं था। नयन दोनों ज्योति पूर्ण थे, शरीर तेजपुंज था और ऊपर से यज्ञोपवीत शोभा देरहा था। उन के दहिनी ओर वही धन शाली अतिथि विराजमान था। उस का भी वयस चन्द्रशेखर के समान ही था, किन्तु संसार चिन्ता और पार्थिव दुःख ने उस के शरीर को जैसा शीर्ण कर रक्खा था! सिर के बाल बहुत पक गये थे, भौंह में भी दो चार बाल श्वेत हो चले थे, आंखों की ज्योति कम हो गयी थी और शरीर बल हीन होगया था। हाथ पैर शीर्ण हो गये थे और चमड़ा सिथिल हो गया था। दोनों जनों को देखने से संसार

चिन्ता की अकिञ्चनता और अनिष्टकारिता और योग और पुण्य यज्ञ का गौरव और महिमा प्रत्यक्ष दिखायी देती थी। इस धन शाली अतिथि से पाठक गण निरे अज्ञ नहीं हैं, – ये वही इच्छापुर के जमीदार नगेन्द्रनाथ हैं।

इन दोनों जनों के पीछे और पार्श्व में और बहुत से लोग बैठे थे। चन्द्रशेखर के कुछ दूर पीछे अन्धेरे में घूंघट काढ़े महाश्वेता भी बैठी थी, – अन्धेरे में भी विधवा का उन्नत शरीर श्वेत वस्त्र आच्छादित सब लोग देख सक्ते थे। उस का स्थिर और गम्भीर भाव देख कर, यद्यपि वह घूंघट काढे थी, सब आश्रम वासी उस को चीन्हते थे। उस के समीप ही शिखण्डिवाहन बैठे धीरे २ कुछ कह रहे थे और बीच २ नगेन्द्रनाथ की ओर संकेत करते थे। चन्द्रशेखर की बायीं ओर अग्नि के समीप कमला बैठी थी और उसी अलाव के प्रति स्थिर नेत्र किये कुछ सोच रही थी। कभी २ अपने समीपस्थ दोनों बालकों की ओर दृष्टि निक्षेप करती थी और उन को स्नेह पूर्वक अलाव के निकट बैठाती थी, – उनके ओढ़े वस्त्रों को सुखाती थी और बीच२ में उन के दुःख की कथा भी पूछा करती थी। उस कुटी के एक कोने में श्रमला और सरला भी बैठी थीं, – आज उन के आनन्द की सीमा नहीं थी, उन की बातें चुकती ही नहीं थीं, हंसी बन्द होने का समय ही नहीं मिलता

था। एक दूसरे कोने में निस्तारिणी, मनमोहिनी, योगेन्द्रमोहिनी व तारासुन्दरी इत्यादि छोटी २ ब्राह्मण कन्या बैठी हंसी खेल कर रही थीं उनकी भी बातें चुकती नहीं थी और न आमोद का शेष होता था। कभी२ मुह पर वस्त्र देकर हंसी रोकती थीं फिर चुप हो कर चन्द्रशेखर और नगेन्द्रनाथ की बातें सुनती थीं। इन के व्यतिरिक्त और बहुत सी ब्राह्मण की कन्या बैठी परस्पर बात करती थीं और कोई चुपचाप नगेन्द्रनाथ की बात सुनती थीं।

नगेन्द्रनाथ ने लम्बी सांस लेकर चन्द्रशेखर को लक्ष्य कर के कहा, "महाराज! मैं आप के विस्तीर्ण महेश्वर के मन्दिर और इस सुरम्य पुण्याश्रम को देख कर बहुत प्रसन्न हुआ। यदि आप के से संसार की मोह मया छोड़ कर मैं भी यही धर्मपथ अवलम्बन करता तो इस बुढ़ापे में अगाध दुःख सागर में निपतित न होता।" चन्द्रशेखर ने उत्तर दिया, "महाशय! क्या केवल आश्रम ही में पुण्य कर्म होता है, संसार में रह कर क्या धर्म भति पालन नहीं हो सक्ता? शास्त्र में लिखा है कि दान, धर्म और परोपकार से जो पुण्य होता है वह याग यज्ञ से नहीं हो सक्ता। जो जमीदार परोपकार और प्रजा वात्सल्य के कारण सर्वत्र समादृत होते हैं उन को क्या आश्रम निवास के निमित आक्षेप करना उचित है?"

नगे ।—"महाशय ! आप ने इतना मेरा आदर किया किन्तु मैं इस योग्य नहीं हूं। यदि योग्य होता, महापापी न होता तो आज पाप दमनार्थ महात्मा चन्द्रशेखर के निकट न आता।"

चन्द्र ।—'संसार में कौन कह सक्ता है कि मैं महापापी नहीं हूं ? कौन कह सक्ता है कि मैं ने पाप नहीं किया,—कौन कह सक्ता है कि मैं निष्कलङ्क और निरपराधी हूं ?"

दोनों जन परस्पर इसी प्रकार बहुत देर तक बातें करते थे। अन्त को नगेन्द्रनाथ अपने आने का कारण कहने लगे, बोले,—"हे महात्मन ! मेरे ऐसा पापी इस जगत में दूसरा नहीं है, मेरे ऐसा दुःखी भी दूसरा नहीं है। मेरे दुःख की बातें सुनिये,—मेरी स्त्री मुझ से कहा करती थी कि जब मेरा जन्म हुआ था आकाश में विचित्र 'तारा' देख पड़ा था। पण्डितों ने विचार के कहा कि यह कन्या, घोर उन्मादिनी होगी। वह तो नहीं हुआ, मेरी स्त्री उन्मादिनी तो नहीं हुई किन्तु उसकी कई मनोवृत्तियां बहुत प्रचंड थीं और इसी कारण मैं उस को पगली कहा करता था। आज बारह वर्ष हुआ वह प्यारी पगली मर गयी।

"उसके पेट से मेरे दो पुत्र हुए। वे भी अपनी माता के

ऐसे पागल थे, बड़का चिन्ता के मद में मत्त और छोटका काम काज में पागल। वे दोनो पुत्र मेरी आंखों की पुतली थे,—हा! आज वे कहां हैं? रे दुष्ट विधाता! बुढ़ापे में क्या मेरे ललाट में यही लिखा था? मेरी दोनों आंखें जाती रहीं, मैं अन्धा हो गया; मेरे दोनो हीरा खो गए, मैं कंगाल हो गया।"

इस दुःख वचन को सुन कर सबकी "देह भर आयी" हृदय द्रवी भूत हुआ। क्योंकि पीछे भवेन्द्रनाथ कहने लगे, "मेरे बड़े बेटे को बचपन में व्याघ्र उठा ले गया। उसी शोक में उसकी माता भी मर गयी। छोटे पुत्र सुरेन्द्रनाथ का मुंह देख धीर धारण कर मैं जीता रहा। हा! ऐसा वीर पुरुष तो आज तक किसी ने देखा ही नहीं। दया में, धर्म में, बल में, पौरुष में सुरेन्द्रनाथ के ऐसा कौन था? वचपन ही छोटपनही में सिंह का बल था, दंगल में सैकड़ों पहलवानों को पछाड़ा था। उनका असीम बाहु बल देख कर सब विस्मित होते थे। घोड़ा चढ़ने में तो उस के बराबर इस देश में मैंने किसी को देखा ही नहीं। जो देखता था, दया धर्म में उसकी तुलना राजा कर्ण से करता था। बल पौरुष में भीमसेन से। छोटे ही पन से उस को राजा समर सिंह से युद्ध की बातें बड़ी अच्छी लगती थी। सुनते २ बालक का मुंह लाल हो जाता, आंखें चमकने

लगतीं, और बच्चा अमरसिंह का खड्ग उठा लेता और युद्ध में चलने को प्रस्तुत हो जाता राजा अमरसिंह आश्रु पूर्ण नेत्रों से उस का मुंह चूम लेते थे। उसी अवस्था में राजा अमरसिंह उसको खेत में ले जाते थे। राजा सर्वदा कहा करते थे कि पठान लोग बंगालियों को कायर कहते हैं किन्तु उन में भी अनेक वीर हो गए हैं। सुरेन्द्रनाथ! मेरे मरने पर मेरा खड्ग तू धारण करेगा, तेरे हाथ में उसका अपमान भी नहीं होगा। हा! आज वह बालक कहां है! रे दैव अब मैं किस का मुंह देख कर सुरेन्द्रनाथ का वियोग सहूं।"

बुढ़ापा फिर रोने लगा। चन्द्रशेखर ने शोकार्त्त होकर पूछा,—"क्या सुरेन्द्रनाथ के विषय में कुछ अशुभ सुना गया है?"

नगेन्द्रनाथ ने उत्तर दिया, "ऐसा यदि होता तो मैं अबतक जीता न रहता, उसी क्षण प्राण निकल गया होता।"

चन्द्र।—"फिर आप इतनी चिन्ता क्यों करते हैं? सुरेन्द्रनाथ कुछ दिन के लिये विदेश गए हैं, ईश्वर करेगा तो कुशल पूर्वक फिर आवेंगे।"

नगे।—"ईश्वर आप की वाणी सिद्ध करैं। किन्तु कल रात को मैंने एक स्वप्न देखा है, तभी से बहुत व्याकुल हूं और उसी के लिये आप के पास आया हूं। मानो एक बड़ी

भारी सेना है और पुत्र सुरेन्द्रनाथ युद्ध के भीषण कोला-हल से उन्मत्त हो कर श्वेत अश्व पर चढ़े उसके आगे २ चल रहे हैं। हा! बेटा छोटेही पन में युद्ध में जा कर यश लाभ करने की इच्छा करता था। किन्तु इस समय यदि इस घोर मुगल पठानों के दल में मिल जाय तो फिर क्या मिल सक्ता है? हे मुनिश्रेष्ट! इस स्वप्न का अर्थ कीजिये, यदि कुछ अनिष्ट का सम्भव है तो मै अभी प्राण दूंगा।"

चन्द्रशेखर ने कहा, "धीरज धारण कीजिये" और कुछ ध्यान करने लगे। कुटी में के सब लोग चुप हो गए। स-रला अपनी सखी के कंधे पर "उठँघ कर" सोती थी। उस अवस्था में भी उसका चेहरा हंसता था। मानो प्रिय सखी के स्पर्श सुख से निद्रा में भी आनन्द स्वप्न देखती थी। अ-मला अनन्य मन हो कर जमींदार की बात सुनती थी, सुरेन्द्रनाथ कौन थे जानती नही, महाश्वेता का शरीर भय के मारे कंटकित हो गया।

सुरेन्द्रनाथ उसी के काम के लिये गए थे, और वह काम बड़ा बीहड़ था। महाश्वेता ने मनमें कहा, "यदि मेरे का-रण सुरेन्द्रनाथ का मृत्यु होय तो मैं बड़ी अभागी हूं और अपने रुधिर से इसका प्रायश्चित करूंगी, हे भगवान्! तू रक्षा कर!"

कुछ देर बाद चन्द्रशेखर ने आंख खोल कर नगेन्द्र-नाथ से कहा—

"आप निश्चिन्त हों, आप का पुत्र कुशल से है।" नगेन्द्रनाथ के शरीर में मानो प्राण आ गया,—इस विशाल विपद संसार में एक मात्र पुत्र के मरने से बढ़ कर कौन दुःख है? तथापि जान पड़ा कि महाश्वेता ने चन्द्रशेखर की अपेक्षा अधिकतर आराम बोध किया—पुण्यात्मा के हृदय में महा पातक का भय, पुत्र वियोग के भय से विशेष गाढ़ और भीषण होता है।

इस शंका से निहत हो कर नगेन्द्रनाथ और २ बात करने लगे। बेटा कब घर आवेगा, अभी तक क्यों नहीं आया, और भी कई बेर विदेश गया था किन्तु इतना विलंब कभी नहीं हुआ था,—स्नेहवान पुत्र हो कर पिता को छोड़ कर इतने दिन क्या करता है, इत्यादि अनेक प्रकार की आलोचना करने लगे। फिर चन्द्रशेखर ने कहा—

"महाशय, मैं आप से एक बात पूछता हूं,—इस समय आप के पुत्र को इतना विलम्ब होने का कारण कुछ आप जानते हैं, चलते समय उन्होंने कुछ कहा था?"

नगेन्द्रनाथ तनिक चुप रहे, फिर बोले,—

"अब मैं आप से अपनी पाप कथा क्यों छिपाऊं? मेरे पुत्रका कुछ दोष नहीं है। यद्यपि वह पागल की तरह गांव २ भ्रमण किया करता था किन्तु मुझ को छोड़ कर पांच सात दिन एकट्ठा कहीं नहीं रहता था। इस बेर दो मास केवल मेरे हे पाप कर के बीता है।

वल नगेन्द्रनाथ के मुंह से इन बातों को सुनने के लिये वहां आ कर बैठी थी।

नगेन्द्रनाथ फिर कहने लगे,—"मैंने अपनी बात नहीं रक्खी। समरसिंह के मरने के पीछे मैंने उन की निराश्रय विधवा की कन्या से विवाह करना अंगीकार नहीं किया और एक दूसरी धनवान की कन्या ठहराने लगा। अन्त में एक पात्री ठहर गयी। किन्तु यद्यपि मैंने तो अपना "बचनपन" नहीं रक्खा मेरे धर्म परायण पुत्र ने स्वीकार नहीं किया। एक दिन मुझ से कहा, हे पिता! मैं आप की कोई आज्ञा उलंघन नहीं कर सक्ता, 'किन्तु एक बात में क्षमा प्रार्थना करता हूं, 'आप ने राजा समर सिंह से जो प्रतिज्ञा की थी उस को भंग करने नहीं दूंगा।' इस यथार्थ बात पर मैं क्रुद्ध हुआ, उसी क्षण विवाह का दिन स्थिर किया और बल पूर्वक विवाह करने का संकल्प किया। किन्तु बात उसी की रही, धर्म की जय हुई,— पुत्र सुरेन्द्रनाथ छिप के घर से निकल गये,—उसी दिन से आज तक फिर उस का मुंह देखने को नहीं मिला।"

पाठक लोगों को ज्ञात है कि सुरेन्द्रनाथ केवल एक प्राचीन प्रतिज्ञा प्रतिपालन के हेतु पिता से अवाध्य नहीं हुए थे।

नगेन्द्रनाथ फिर कहने लगे, "उस प्रतिज्ञा को भंग

किया कितना बड़ा पाप किया उसी कारण अब इस बुढ़ापे में यह दुःख भोग रहा हूं । इस अवस्था में चाहता था कि मैं अपनी जमींदारी का भार अपने दोनों पुत्रों को सौंप कर और पुत्रवधू प्रति सेवित हो कर अपने शेष दिन सुख से काटता, नहीं तो अब न मेरे पुत्र हैं, न पुत्रवधू है, न स्नेह मयी सहधर्मिणीही है अगाध समुद्र में डूब रहा हूं,— महाशय ! किस पाप कर के यह दुःख मेरे पर पड़ा है— क्या उपाय करने से उस का प्रायश्चित होगा, आप कृपा पूर्वक बताइये ।"

चन्द्रशेखर ने कहा,—"मैं आप के लिये यत्न करने में त्रुटि नहीं करूंगा, जिस प्रकार से आप का हित साधन हो उस के करने में संकोच नहीं करूंगा ।"

शिखण्डिवाहन महाश्वेता से बात चीत करते थे,— नगेन्द्रनाथ की ओर लक्ष्य कर के बोले—

"यदि प्रतिज्ञा भंग कर के पाप किया है, तो फिर उसी प्रतिज्ञा पालन का यत्न कीजिये ।"

नगेन्द्रनाथ ने कहा,—"शिखण्डिवाहन ! मैं प्रतिज्ञा पालन करूंगा । अमरसिंह की अनाथ कन्या को ला दो, अवश्य सुरेन्द्रनाथ का विवाह उस्से करा दूंगा । अब मेरा वह गर्व नहीं है और वह अभिमान भी नहीं है बुढ़ापे ने व शोक दुःख ने मेरा अमगड तोड़ दिया । अब यदि अपनी

पास छोड़ूं तो फिर कभी पुत्र का मुंह देखने को न मिले इससे बढ़ कर और अभिशाप मैं जानता नहीं।"

शिखण्डिवाहन ने कुछ उत्तर नहीं दिया और फिर महाश्वेता से बात चीत करने लगे। उन्हों ने कहा, "बहिन। अब विलम्ब करने का क्या प्रयोजन, प्रगट क्यों नहीं होती?"

महाश्वेता ने कहा, "यदि ईश्वर फिर मुझ को पूर्ववत सधवा न करेगा तो मैं अब इस जन्म में अपने को प्रगट न करूँगी, इस जन्म कन्या का विवाह न करूंगी।"

शिख।—"क्यों?"

महा।—"पहिला कारण यह है कि मैं अपना व्रत भंग न करूंगी किन्तु उससे भी बढ़ कर एक विशेष कारण है।"

शिख।—"वह क्या?"

महा।—"पराये का अनुग्रहीत होना मेरे स्वामी की रीत नहीं थी। वे दूसरों पर अनुग्रह करते थे किन्तु आप किसी के अनुग्रहीत नहीं होते थे। उन की विधवा यद्यपि निराश्रय तो है परन्तु उस रीत को न छोड़ेगी।"

शिख।—"मैं तुमारी बात नहीं समझता, स्पष्ट करके कहो।"

महा।—"मैं निराश्रय विधवा हूं,—नगेन्द्रनाथ मेरे

ऊपर अनुग्रह करके, दया करके मेरी कन्या से अपने पुत्र का विवाह करें यह मुझ को स्वीकार नहीं है। लोग मेरी कन्या को उंगली दिखला कर कहेंगे; 'इस की माता चरखा कात कर अपना पालन करती थी, नगेन्द्रनाथ ने दया करके इसे अपने पुत्र का विवाह कर लिया है।' मैं मरते दम तक यह-बात नहीं सुन सकी,। शिखंडिवाहन! मानवती स्त्री मृत्यु का भय नहीं करती, किन्तु दूसरे की दया वा अनुग्रह ग्रहण करने में अवश्य भय करती है।"

शिखंडिवाहन के मुंह से शब्द नहीं निकला, बोले, "फिर तुमने मुझ से नगेन्द्रनाथ से प्रतिज्ञा पालन का प्रस्ताव करने को क्यों कहा?"

महा।—"केवल इस बात की परीक्षा के लिये कि अब इस अवस्था में भी वे प्रतिज्ञा पालन में सम्मत होते हैं कि नहीं,—मैं सम्मत नहीं हूं।"

यह बातें बहुत धीरे २ होती थीं अतएव किसी ने सुना नहीं।

नगेन्द्रनाथ फिर अपने दुःख की कहानी कहने लगे। वृद्धों की बात शीघ्र समाप्त नहीं होती: विशेष कर दुःख की बात दूसरे से कहने में कुछ चित्त को शान्ति होती है। नगेन्द्रनाथ का दुःख सामान्य नहीं था, जब अपनी दशा पर ध्यान करते थे चारो ओर शून्य देख पड़ता था, संसार

असार जान पड़ता था। स्त्री नहीं, परिवार नहीं, पुत्र नहीं, कन्या नहीं, जगत में अपना कोई भी नहीं था; वह बूढ़ा बार बार अपने दुःख की कथा कहता था और बार २ रोता था।

अन्त को चन्द्रशेखर ने कहा, "महाशय! आप के ऐसा ज्ञानवान पुरुष यदि शोक दुःख से व्याकुल होगा तो और लोग क्या करेंगे? आप के सुपुत्र जीते हैं और कुशल से हैं। मेरे भी वंश में कोई नहीं है, यदि आप इतना शोक करते हैं तो मैं क्या करूं?"

नगेन्द्र नाथ ने धीर धारण करके कहा, "महाशय! मैं नहीं जानता था कि आपने भी कभी विवाह किया था। आप को क्या कोई सन्तान हुआ था?"

चन्द्रशेखर ने कहा, "प्राचीन कथा स्मरण करना केवल विडम्बना मात्र है,—किन्तु दुःखी लोगों को दुःखही की कथा अच्छी लगती है। आप मेरे दुःख की कथा सुनिये।"

वीसवां परिच्छेद ।

महन्त की पूर्व कथा ।

To gather life's roses, unscathed by the brier
Is given alone to the bare-footed friar.

Scott.

जितने लोग उस कुटी में आये थे धीरे २ सब चले गये। ब्राह्मण स्त्री और ब्राह्मण कन्या सब अपने२ घर गयीं, कमला दोनों बालकों को घर के भीतर ले गयी और एक कोठी में सोने का आदेश किया और आप भी जा कर अपने घर में सोयी। शिखंडिवाहन भी उठ कर अपने घर चले गये। कुटी में चन्द्रशेखर और नगेन्द्र नाथ के अतिरिक्त केवल महाश्वेता बैठी रही, और अमला भी प्रिय सखी का मस्तक गोद में लिये बैठी थी। अमला अभी तक क्यों बैठी थी पाठक लोगों को जानने की इच्छा होगी। उस की क्या आकांक्षा थी जो वह इतनी देर तक बैठी रही? अमला सोचती थी,—"नगेन्द्रनाथ का पुत्र पागल, घर छोड़ २ कर गांव से फिरा करता है, चुप्पें किसानों के बीच में रहता है, दो महीना हुआ उस का कुछ पता नहीं है, धनी और पुरुष, अश्वनी कुमार के समान सुन्दर; होय

न होय इन्द्रनाथ ही नगेन्द्रनाथ का पुत्र है--यदि ऐसा नहो तो मैं मांझी की स्त्री नही। ठहरो, बाप जिस से कहता है वह विवाह नहीं करता, समरसिंह की बेटी से विवाह करने चाहता है,–समरसिंह की विधवा इस समय आश्रय हीन है; कपट भेष धारण किये है उसकी बेटी से विवाह करने के लिये इन्द्रनाथ पागल हो रहे हैं। इन्द्रनाथ से विवाह करने को तो सरला भी व्याकुल थी,–सखी ने कहा, 'इन्द्रनाथ राजी हैं?'–राम राम! मेरी सखी क्या समरसिंह की कन्या है। महाश्वेता तो देखने से राज रानी सी जान पड़ती है, सामान्य ब्राह्मणी नहीं जान पड़ती,–किसी से बहुत बोलती भी नहीं, नित्य प्रति श्वेत प्रस्तर की शिव मूर्त्ति का पूजन करती है, बुढ़ापे में भी उस के चेहरे पर चमक है। और सरला,—वह तो मेरी गोद में निभृत सी रही है। मैं समझती हूं कि उस का मन उससे भी बढ़ कर सो रहा है,—यद्यपि वह राजा की बेटी है किन्तु अपने को राजकन्या नहीं जानती। मैंने राजकुमारी से प्रीत की है। राजकुमारी के पद चालन से रुद्रपुर और इस आश्रम के पथ पवित्र हो गये हैं। हे भगवान! तू जान क्या भेद है, मुझ को तो कुछ जान नहीं पड़ता।" अमला इसी प्रकार तर्क करते २ बैठी रह गयी।

चन्द्रशेखर अपनी पुरानी कथा कहने लगे।

"मैं छोटेहि पन से शिवपूजन भक्त था। तीस वर्ष पर्यंत जाना नहीं कि स्त्री किस को कहते हैं, गुरु की सेवा, शास्त्र का पठन पाठन इसी में दिन जाता था। अन्त को बन्धु बान्धव के अनुरोध से विवाह कर के गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया।

"माया में फँस कर संसार के दुःख सुख का भोग करने लगा,—जो २ सुख कभी पहिले अनुभव नहीं किया था वह सुख भोग करने लगा। जिस दुःख और क्लेश का नाम भी नहीं सुना था वह दुःख माथे पड़ा। संसार कैसे मोह जाल से जड़ित है! माया, प्रेम, वात्सल्य, दया, यह सब कैसे स्वर्गीय सुख के आकर हैं, और फिर क्या इन्हीं से अचिन्तनीय दुःख प्राप्त होता है! गुरु सेवा और देव पूजा से जो शान्ति लाभ किया था वह मोह जाल में फँस कर नाश को प्राप्त हुआ। जैसे नदी समथर भूमि पर निःशब्द और शान्त भाव से बहती है गुरु के आश्रम में मेरा जीवन भी इसी प्रकार अतिवाहित होता था। एकाएकी खाली पा कर जैसे पानी बड़े शब्द से नीचे गिरता है, उसी प्रकार संसाराश्रम में फँस कर मेरा जीवन भी अकस्मात् रूप से विपर्यस्त और व्यतिव्यस्त होने लगा। कई वर्ष तक मेरी यही स्वप्नवत् दशा रही।

"बहुत दिन तक मेरे कोई पुत्र कन्या नहीं हुई। इस कारण मैंने और मेरी पत्नी ने 'मन्नत' की कि पहिले पहिल जो सन्तान उत्पन्न होगा उस को गंगासागर में विसर्जन करूंगा। उस के दो वर्ष के अनन्तर एक बड़ी सुन्दर देव कन्या के समान कन्या पैदा हुई। उस के मुंह की सुन्दरता देख कर 'मन्नत' भूल गयी, पिता माता दोनों को साहस नहीं हुआ कि उसे सागर में विसर्जन करें।

"वह कन्या मुझ को अभी भी नहीं भूलती। उस के दोनों काले २ नेत्र शान्तरस परिपूर्ण थे और चित्त परमप्रशान्त था, कभी रोती नहीं थी, जो कभी रोती भी थी तो माता उस को घर से बाहर ले जाकर चन्द्रमा दिखा कर अथवा नदी जल के कुलकुल शब्द को सुना कर चुप कराती थी, और वह भी उस को देख सुन चुप हो जाती थी। क्या छोटे पन में भी प्रकृति की शोभा से हृदय मुग्ध हो सक्ता है?

"माया के कारण प्रतिज्ञा को भूल गया, किन्तु उस पाप में फल लगा। तीन वर्ष पीछे वह कन्या बहुत बिमार पड़ी, यहां तक कि जीवन की आशा बाकी नहीं रही। उस समय हम लोगों को पूर्व प्रतिज्ञा का स्मरण हुआ। फिर वही 'मन्नत' किया कि यदि कन्या इस रोग से छूटे तो उस को गंगासागर में विसर्जन करेंगे। वह रोग दूर हुआ

भौर माया मोह परित्याग कर हम लोगों ने उस को गंगासागर में विसर्जन कर दिया। विसर्जन के पूर्व उस के वक्षस्थल में एक विचित्र चिन्ह कर दिया,—अनपनेय अंक द्वारा शिव की प्रतिमा छाप दिया, तात्पर्य यह था कि यदि बच्ची बच जाय, और फिर कभी देखने को मिले तो इसी चिन्ह से उस को पहिचान लेंगे। बच्ची बच तो गयी,—एक दरिद्र ब्राह्मणी ने इसको पाया,—किन्तु फिर हम को देखने को नहीं मिली।

"घर में आकर देखा स्त्री मेरी कन्या के शोक में व्याकुल थी,—उसी में बीमार पड़ी और मर गयी। उस का शव प्रदाह करने को श्मशान पर ले गया। चिता धुधुकार कर जल रही थी और मैं पागल की भांति उसकी ओर देखता था। उस समय मुझ को ज्ञान नहीं था, नहीं तो मैं इस दुःख का सहन न कर सका,—उसी अग्नि द्वारा इस जीवन का भी अन्त करता। अज्ञान की भांति उस चिता की ओर देखता रहा। अग्नि जलते २ बुझ गई और चारो ओर अंधेरी छा गयी।

"उस समय माया मोह अनायासही छूट गया। जिस मोह में इतने दिन फँसा था वह जाती रही। संसार में ऐसा कोई नहीं रह गया जिस को अपना कह कर पुकारता। चारो दिशा शून्य दिखाई देने लगी,—जिधर

आ कर महाश्वेता से चुपके से कहा, "विश्वेश्वरी पगली आप से भेंट करने को खड़ी है।" महाश्वेता झपट कर उसी ओर चली, आगे जा कर उस्से भेंट हुई। उस का भयङ्कर आकार और भी भयङ्कर हो रहा था, सम्पूर्ण शरीर भय के मारे कांपता था, बोली, "महाश्वेता अभी भागो, शत्रु आश्रम में आन पहुंचे।"

महाश्वेता ने कहा, 'पगली, तू बिपद काल की मेरी चिर बन्धु है, मैं कैसे तेरे ऋण से उऋण हो सक्ती हूं।"

पग।—"अभी अपने बचने का यत्न करो।"

महा।—"कहां भागूं?"

पग।—"रुद्रपुर अथवा इच्छापुर, जहां तुमारा जी चाहे जल्दी भागो।"

महा।—"आश्रम वासियों से बिदा न होऊं, उन की दया और अनुग्रह का धन्यवाद न दूं?"

पग।—"इस स्थान पर यदि एक क्षण भी और ठहरोगी तो निश्चय मृत्यु होगी, चतुर्वेष्ठित दुर्ग के दूत तुम को आश्रम मे ढूंढ़ते फिरते हैं।"

महाश्वेता बहुत विस्मित हुई। बोली, "मेरे मन मे भी यही संदेह हुआ था। इस आश्रयहीन बिधवा को उस काल सर्प के व्यतिरिक्त और कौन दंशन करने की इच्छा करता है? हाय! मेरा सर्व नाश कर के भी तुझ को तृप्ति

नहीं होती, क्या अब प्राण ही लेगी ? मृत्यु !—उंह मृत्यु को कौन डरता है, यदि यह प्राण प्यारी कन्या न होती, तो फिर किस का डर था ?"

पगली ने फिर कहा,—"अब चिन्ता करने का समय नहीं है ?"

महा।—"यदि मैं अपना परिचय दे कर आश्रम वासी लोगों के शरणागत हूं, तो क्या प्राण नहीं बचेगा ?"

पग।—"इतने लोग आए हैं कि आश्रम समेत, महेश्वर के मन्दिर समेत उठा लेजांय,—महाश्वेता शीघ्र भागो।"

महा।—"मैं आश्रम निवासी लोगों को अपने कारण क्यों दुःख दूं ?—मेरे भाग्य में जो है होगा, हे महेश्वर ! कन्या की रक्षा तुमारे हाथ है। पगली ! अब मैं चली किन्तु तू जो आपद विपद में हमारी सहायता करती है, क्या तेरा परिचय कभी न पाऊंगी ?"

पग।—"फिर किसी समय, अब शीघ्र भागो।" यह कह कर पगली 'ग़ायब' हो गयी।"

महाश्वेता शीघ्रता पूर्वक अपने घर में गयी और श्वेत प्रस्तर निर्मित शिव प्रतिमा और कुछ द्रव्य ले नदी तीर को चली। चलते २ सोचने लगी, "क्या इस समय रात को नौका मिल सक्ती है,—मांझी लोग क्या घाट पर होंगे ?" सोचते २ नदी के तट पर पहुंच गयी। देखती क्या है कि

जो सोचती थी वही ठीक निकला, नौका तो दो तीन घाट किनारे थीं किन्तु माझी एक भी नहीं थे। इधर उधर फिर कर देखा तो एक नौका पर बहुत से माझी बैठे थे और सब जागते थे। पहिले कुछ विस्मय हुआ,—पूछा— "क्यों जी रुद्रपुर चलोगे ?"

नौकारोही गण महाश्वेता और सरला की ओर देख कर एक क्षण चुप रहे फिर बोले , "हां चलेंगे, आवो।"

महाश्वेता को और भी विस्मय हुआ, किन्तु चिंता का तो समय नहीं था, "भगवान तू सहाय हो" कह कर माता और कन्या दोनों नौका पर बैठीं और उसी दम नाव खोल दी गयी।

महाश्वेता आप से आप शत्रु के हाथ में आन पड़ी। उस नौका पर चतुर्वेष्ठित दुर्ग के दूत आये थे, उन में से एक ने आश्रम में ढूँढ़ते समय महाश्वेता और सरला को पहिचाना था, उसी ने कहा था "हां चलेंगे, आवो।"

नौका चतुर्वेष्ठित दुर्ग की ओर चली।

इक्कीसवां परिच्छेद।

कारा वास।

In low dark rounds the arches hung,
From the rude rock the side walls sprung,
* * * *

A cresset in an iron chain,
Which served to light this drear domain,
With damp and darkness seemed to strive
As if it scarce might keep alive,
* * * *

Fixed was her look, and stern her air,
Back from her shoulders streamed her hair,
The locks that wont her brow to shade,
Started up erectly from her head.

Scott.

प्रातः कालीन रक्त वर्ण सूर्य कीर्ण ने चतुर्वेष्ठित दुर्ग (आधुनिक चौवेड़ा) को शोभायमान किया। दीवार, स्तम्भ, खिड़की, कोठरी, छत, सब प्रकाश मय हुआ, दुर्ग पद चारिणी यमुना का जल भी झकमक करने लगा। नदी में प्रकाण्ड दुर्ग की परिछाहीं देख पड़ती थी और दो एक नौका भी इधर उधर चल रही थीं। शीतल समीर शिशिर

बिन्दु प्रति मिल हो कर और भी शीतल हो कर बहता था, और घाट पर जो स्नान करने वाली और पानी भरने वाली स्त्रियों के शरीर में लग कर पुलकित करता था। कृषक गण अपना गोरू लिए चराने को जाते थे और बीच बीच में गाते भी जाते थे,—पक्षि गण भी तरुण अरुण की किरण से पुलकित हो कर कलरव करने लगे। सारा जगत प्रकाशमय और आनन्दमय हुआ। ऐसी हत भागिन कौन है जो ऐसे आनन्द के समय में भी शोक व्याकुल होगी?— मनुष्य ही मनुष्य के दुःख का कारण है।

उस प्रकाण्ड दुर्ग मे एक ऐसा घर था कि जहां सूर्य का प्रकाश पहुंच नही सक्ता था। उस घर मे एक सुरङ्ग बना था जहां शकुनी अपनी विद्रोही प्रजा अथवा शत्रु को बन्द करता था। उस घर की दीवारों ने सुख और आनन्द और प्रहसन का शब्द भी कभी नही सुनाया,—उस घर के भीतर सुख और भरोसा की गन्ध नही थी, वहां केवल अभागे बन्दी लोगों का रोना सुन्ने मे आता था, आंसू की धारा देखने मे आती थी। इस घर के नीचे का तल कच्ची मिट्टी का था और अन्धकार निवारणार्थ एक मलिन ज्योति दीप रात दिन जला करता था। उसी प्रदीप के प्रकाश में पृथ्वी तल पर सरला और महाश्वेता पड़ीं थीं।

सरला सो रही थी; जैसे माता के गोद में बच्चे सोते

हैं उसी प्रकार महाश्वेता के समीप सरला सोती थी, रात भर जागने के कारण वह खूब सो रही थी। सरला का शरीर क्षीण हो रहा था; आँखें खोंडराय रही थीं; मुख मण्डल में पूर्ववत् प्रफुल्लता और बालिका भाव नहीं देख पड़ता था; सरला अब बालिका नहीं है—सरला शोक सागर में पड़ कर बालिका सुलभ सुखस्वप्न से जाग्रत हो रही थी। वह जागरण कैसा क्लेशदायी होता है! सुख की आशा भरोसा सब जाती रहती है, मानव जीवन की प्रकृत अवस्था सामने आती है।

सरला के पास ही महाश्वेता सोई थी,—आधा जागती और आधा सोती थी। उस भयंकर स्थान में जो भयंकर भाव उस के मुंह पर छा रहा था, उस का वर्णन नहीं हो सक्ता,—वह भाव भय का तो था नहीं, दुःख का था नहीं, केवल चिन्ता का था नहीं। उस के हृदय के अलौकिक अभिमान ने उस भयंकर कारागार में पराकाष्ठा प्राप्त किया था, आँखें धक २ जल रही थीं, मानो आग बरस रही थीं;—दांतों के नीचे ओंठ को दबाये थी; सारे मुख मण्डल में उन्मत्तता के चिन्ह प्रकाशित थे। ललाट का शिख देश "स्फीत" हो रहा था, नयन निमेष शून्य, हृदय पूर्व स्मृति और चिन्ता तरङ्ग से प्लावित हो रहा था।

क्षणेक पीछे सरला जागी। उठते ही माता के मुख का

भयंकर भाव देख कर डरी और बोली, "माता, रात भर तू सोई नहीं ?"

महाश्वेता की चिन्ता की जड़ी टूट गयी, सरला की ओर देखने लगी, देखते २ उसका विह्वल भाव जाता रहा और आंखों मे आंसू भर आये। मन में सोचने लगी, "हे भगवान, यह मृतिका सध्या दादि अग्नि मध्या होती तो भी सहन कर सकी थी, प्राणाधार सरला को इस अवस्था में देख कर आंखों में कांटा सा चुभता है।"

सरला बोली,—

"माता, कल तुमारे लिये जो खाने को रक्खा गया था, वह वैसे ही धरा है, तूने कुछ नहीं ?"

महाश्वेता ने उत्तर दिया, "खाने को जी नहीं चाहता।"

सरला ने कहा, "न खाने से शरीर कै दिन ठहरेगा ?"

महाश्वेता ने कहा, "बेटी, शरीर रख कर करना ही क्या है ? परमेश्वर यदि मुझ को इस के पहिले ही उठा लिये होता तो यह अवस्था तेरी न देखती।"

सरला ने कहा—"माता, तू न रहेगी तो मै किस का मुंह देख कर जीऊंगी, इस संसार मे और मेरे कौन है जो तू मुझ को छोड़ देगी ?"

महाश्वेता ने आंखों मे पानी भर कर कहा, "नहीं बेटी, अभी मुझ अभागिन के जाने का समय नहीं हुआ है।"

जब महाश्वेता चिन्ता करती थी सरला चिन्ता शून्य नहीं रहती थी। माता की कुअवस्था, अपनी दुर्दशा, इन्द्रनाथ का शोच, यह सब सरला के दुःख के कारण थे। किन्तु उस के सरल हृदय में एक और एक चिन्ता से विशेष नहीं समा सक्ती थी। बालिका के हृदय ने कभी अधिक दुःख अनुभव नहीं किया था, अधिक दुःख सहन नहीं कर सक्ता था,—एक ही चिन्ता, एक ही दुःख में परिपूर्ण हो जाताथा। आश्रम में सरला रात दिन इन्द्रनाथ की चिन्ता में मग्न रहती,—यहां वह चिन्ता और अपने दुःख की चिन्ता सब भूल गयी, केवल माता के दुःख को देख कर बड़ी दुखी हुई। जब महाश्वेता चिन्ता मग्न थी, सरला एक कोने में बैठी टक लगाये उस का मुंह देख रही थी। देखते २ रह २ कर भृकुटी को चढ़ा लेतीथी, दोनों बड़ी २ आंखें आंसू से पूर्ण थीं, बीच २ लम्बी सांसें भी लेती थी। माता का मुंह देख कर उस बालिका को क्या दुःख होता था वही जानती थी।

इतने में झनझनाटे के साथ कारागार का द्वार खुला। महाश्वेता ने उधर को आंख भी नहीं फेरा। सरला ने फिर कर देखा एक परम सुन्दर स्त्री द्वार पर खड़ी थी;—यह कहना तो व्यर्थ है कि वह विमला थी।

विमला ने कारागार की जो दशा देखी उससे उस का

हृदय दुःख से अधीर हो गया। देखा कि कल जो खाने, को दिया गया था, अभी स्पर्श भी नहीं किया गया है एक वृद्ध स्त्री उन्मत्त प्रायः हो रही है, उस के समीप उस की एक कन्या बैठी धीरे २ रो रही है।

विमला ने अपनी आँखें पोंछ कर महाश्वेता से कहा, "माता, आप का दुःख देख मेरा कलेजा फटता है, आप बाहर आवें।"

रमणी कंठनिहत करुणा सूचक वचन सुन कर महाश्वेता ने मुंह फेर कर देखा,—पूछा, "आप कौन हैं?" विमला ने उत्तर दिया, "मैं इस दुर्ग के स्वामी सतीश्चन्द्र की बेटी हूं, मेरा नाम विमला है।"

क्रोध से महाश्वेता चिहुंक उठी। क्षणेक पीछे, धीरे से बोली, "अपने पिता से कह देना कि हम लोग बहुत दिन न जीवेंगी—जै दिन जीती हूं, मुझ को छेड़ो मत, अकेले रहने दो।" दूसरे किसी समय यदि मानिनी विमला को ऐसा उत्तर मिलता तो वह क्रोध परवश हो जाती, किन्तु "क़ैदी" की दशा देख कर उस को क्रोध छू नहीं गया। उस ने धीरे से उत्तर दिया—आप मेरे पिता को मिथ्या दोष देती हैं वे इस विषय को कुछ भी नहीं जानते। मैं आप को छेड़ने नहीं आयी हूं वरन आप को इस घर में से निकाल कर दूसरे घर में ले चलने को आयी हूं।"

महाश्वेता ने फिर कहा—

"बन्दी को ऐसे ही घर में रहना चाहिये,—जब पैर में बेड़ी पड़ी तो सोने की बेड़ी न होना चाहिये, लोहे की समुचित है ! जाइये, अब और दया प्रकाश की आवश्यकता नहीं है, अभागिनी की पीड़ित अवस्था में हंसी न कीजिए।"

विमला ने आंखों में आंसू भर कर कहा—

"माता, मैं आप से हंसी करने को नहीं आयी हूं, ईश्वर की सौगन्ध"—

विमला और भी कुछ कहती, किन्तु महाश्वेता ने भीषण स्वर से कहा—"ईश्वर का नाम मत लेव,—आप के पिता भी उस नाम को न लें, नराधम के वंश में कोई इस नाम को ले कर अपवित्र न करे।"

विमला ने गम्भीर स्वर से कहा—

"माता, आप अन्यथा मेरा तिरस्कार क्यों करती हैं। आप जैसी अभागिन हैं मैं भी उसी प्रकार हूं,—अभागिनियों को ईश्वर का नाम छोड़ और क्या है?—मरण समय तक उसी नाम का स्मरण करूंगी,—इस दुःख पूर्ण संसार में अभागिनियों को उसी नाम ही का अवलम्बन है, वही एक मात्र सुख है"

उस पवित्र नाम को सुन कर सहसा महाश्वेता का क्रोध शान्त हुआ। विमला की ईश्वर के प्रति भक्ति देख वह उस को ओर देखने लगी। देखा कि देव कन्या की भांति

वह उन्नत प्रकृत स्त्रीरत्न खड़ी है। आंखों में पानी भरा है, मुख पर स्वर्गीय प्रेम और ईश्वर की भक्ति के सिवा और कुछ लक्षित नहीं होता।

महाश्वेता धीरे २ कहने लगी—

"विमला, क्षमा करो; मैंने वे जाने तिरस्कार किया, दुःख में ध्यान नहीं रहता।"

विमला ने महाश्वेता को और बोलने नहीं दिया। समीप आकर उस का हाथ पकड़ कर कहा—

"मलका, क्षमा मांगने की आवश्यकता नहीं है;—आप दुःखी हैं तो मैं आप से कम दुःखी नहीं हूं, मेरी दशा जब आप सुनेंगी अवश्य मेरे ऊपर दया करेंगी।"

महाश्वेता ने विमला को स्नेह पूर्वक आलिंगन किया, और दोनों रोने लगीं;—बेचारी सरला भी रोने लगी। क्षणेक पीछे महाश्वेता ने कहा—

"विमला, मैं आप का दुःख समझती हूं। पिता के पाप कर्म को देख कर किस धर्म परायण कन्या का हृदय विदीर्ण न होगा?"

विमला ने उत्तर दिया, 'मलका, अभी भी आप भूल करती हैं, मैं जैसी अभागिन हूं, मेरे पिता भी वैसे ही अभागे हैं, उन का जीवन मरण अभी स्थिर नहीं है। जो पामर आप को और मुझ को कष्ट देता है वह पिता को

भी इया कुदया कर रहा है, मुझ को भाग़ा है कि वह उन की मृत्यु का यत्न कर रहा है।"

महाश्वेता विस्मित हुई, सोचने लगी, "वह कौन है,—सतीशचन्द्र को छोड़ कर और कौन इस में है ?"

विमला ने महाश्वेता की चिंता देख कर कहा, "मतवा, आप ऊपर आवें, मैं सम्पूर्ण कथा आप को कह सुनाऊंगी।"

तीनों जन उस भयंकर घर से धीरे २ बाहर हुये। विमला सरला को अपनी बहिन की भांति आदर सत्कार से ले चली। आहारादि समापन होने के पीछे विमला ने शकुनी का सारा समाचार महाश्वेता से कह दिया। किंतु विमला ने जिस अनुनय और कष्ट से उन लोगों को कारागार से छुटाने की आज्ञा प्राप्त किया था, केवल वह बात छिपा रक्खा।

बाईसवां परिच्छेद।

यह स्वप्न नहीं है—पूर्वस्मृति है।

O ! these new tenants dare me call
Intruder in my father's hall !
Wall of my Sires, if ye could speak,
If ye could have a tongue,
Save by the owlet's awful shriek
Or raven's uncouth song,
Fain would I ask of days gone by
And o'er each tale would heave a sigh.

J. C. Dutt.

संसार में ऐसे भी लोग हैं कि जिन के मुहं देखने से निर्दयी के हृदय में भी दया का उद्रेक होता है, निष्प्रेमी के हृदय में प्रेम का संचार होता है, सब के हृदय में प्रीत का प्रादुर्भाव होता है। यह केवल मुख की सुन्दरता का कारण नहीं है क्योंकि सुन्दरता सब के हृदय को एक रूप से आकर्षण नही करती। किसी २ मुख की सुन्दरता और किशोर भाव देख कर ऐसी इच्छा होती है कि उस को हृदय में स्थापन कर लें; उस के सन्तोषार्थ जगत संसार को त्याग दें; उस के सुख साधन के निमित्त दासत्व

ग्रहण करें। किसी २ मुख की अनिर्वचनीय शान्त भाव की माधुर्य को देख कर अशान्त प्रेम उत्पन्न होता है,—भ्रू-कुटी युगल का वांकापन, बड़े मृगवत नयनों की स्थिर ज्योति, अधर सधर की मिष्टता, सम्पूर्ण बदन मंडल के बालिका भाव को देख कर हृदय द्रवीभूत होता है,—जी चाहता है कि उस प्रेम प्रतिमा को हृदय सम्पुट में स्थापन करें। सरला परम सुन्दरी नहीं थी, अथच उस के मुंह पर वह अनिर्वचनीय भाव विराजमान था, हृदय भी तो मुख का मुकुर है। अतएव विमला उस से इतनेही समय में अपनी छोटी बहिन के समान प्रीत करने लगी, कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

एक और प्रकार की आकृत होती है जिस को अनुपम लावण्य से विभूषित करने के लिये विधना ने अपना भंडार खाली कर दिया। उस ज्योतिमय मुखमंडल, उज्वल नयन युगल, सूक्ष्म ओंठ, उन्नत ललाट, वांकी भ्रू युगल, तनू अंग, सघटित दीर्घ अवयव, मत्त गजराज गमन, देख कर प्रेम के उत्पन्न होने के पहिले भक्ति का प्रादुर्भाव होता है। उन उज्वल नयनों से, उस उन्नत और प्रशस्थ ललाट से हृदय का भाव प्रकाश होता है, उस सूक्ष्म ओंठो की जोड़ी को देख कर हृदय की दृढ़ प्रतिज्ञा का अनुभव होता है। विमला की सुन्दरता इसी प्रकार की थी। इस

देवी के अवयव को देख कर सरला यदि उस को अपनी बड़ी बहिन की समान भक्ति करै, देवी की भांति पूजन करै तो क्या आश्चर्य है ।

सरला के हृदय का दुख दूर करने के लिये विमला उस को दुर्ग में चारो ओर घुमा २ कर दिखाती थी । पहिले दुर्ग के पीछे उद्यान में ले गयी । वहां आम्र वृक्ष की सघन छाया दिन दोपहर को सन्ध्या के समान सुस्निग्ध कर रही थी । दोनों उसी छाया में बैठ गयीं । वायु के चलने से वृक्ष के पत्ते भरभरा रहे थे और बीच २ घूघू का अपरिस्फुट शब्द सुनायी देता था,—दोपहर को जिस ने ऐसे सुस्निग्ध स्थान में उस शब्द को सुना उसी का हृदय मोहित और शान्ति परिपूर्ण हुआ ।

दोनों वहां से उठ कर सरोवर के तीर पर गयीं, उस का जल बहुत विस्तीर्ण था और चारो ओर से वृक्षों की छाया से आवृत था । दोनों कुछ काल तक घाट पर बैठी थीं, प्रकृति की निस्तब्ध शोभा देख कर हृदय भी निस्तब्ध हुआ । विमला तो बीच २ कुछ बोलती भी थी किन्तु सरला के मुंह से बात नहीं निकलती थी, चुपचाप सुनती जाती थी । विमला ने पूछा—

"सरला, चुप क्यों हो ? क्या फिर उसी दुःख की चिन्ता कर रही हो ? छि, यह उस चिन्ता का समय नहीं है ।"

सरला ने कहा,—"मैं तो उस बात की चिन्ता नहीं करती हूं।"

सरला ने सत्य कहा,—उस के हृदय में प्रात कालीन दुःख की चिन्ता नहीं थी, अथच विमला को ज्ञान पड़ा कि सरला का हृदय चिन्ता शून्य नहीं था। स्नेह पूर्वक उस को एक नौका पर चढ़ाया और आप डाँड़ ले कर खेवने लगी।

सूर्यास्त होने के पूर्व ही वृक्षों की सघनता के कारण अन्धेरा होने लगा। विमला को बोध हुआ कि उस की सखी सरला के भी हृदय में किसी दुःख चिन्ता का अन्धकार फैलने लगा। सरला अपने मन का भाव छिपा नहीं सकी थी, इच्छा भी नहीं करती थी; कि विमला को अनायास ज्ञान पड़ा कि सरला के हृदय में किसी खेद की चिन्ता है, क्यों कि वह जो बातें करती थी सरला एक नहीं सुनती थी उस का तो मन कहीं और था,—कभी दो एक बात मन लगा कर सुनती और फिर इधर उधर देखने लगती और फिर कुछ सोचने लगती थी। विमला ने फिर पूछा,—"सरला, तू मुझ से छिपाती क्यों है, तू फिर वही चिन्ता कर रही है, दिनभर अन्यमनस्क चारों ओर देखती फिरती है। छि, उस चिन्ता को भूल जाव, आवो, मेरे पास आवो।" यह कह कर विमला ने प्रेम पूर्वक स-

रला को अपने पास बैठा लिया और उस का हाथ अपने हाथ में ले लिया।

सरला ने उत्तर दिया, "तुझ से क्यों छिपाऊंगी,—सत्य, मेरा मन न जाने कैसा हो रहा है, किन्तु तेरी सौगंध उस बात की कुछ चिन्ता नहीं करती।"

विमला ने पूछा, "फिर किस बात की चिन्ता करती है?"

सरला ने उत्तर दिया, "मै नहीं जानती,—किन्तु किसी बात की चिन्ता नहीं करती—रहता २ है मेरा मन न जाने कैसा हो जाता है।"

सरला ने सब सच कहा था। न जाने क्यों उसका मन कुछ चंचल होजाता था, कुछ जान नहीं पड़ता था किक्यों, पाठक महाशय आप यदि जान सक्ते हैं अनुभव कीजिये।

संध्या हुई, विमला और सरला फिर दुर्ग के भीतर पहुंची। वहां पहुंच विमला सरला को ले कर एक कोठ्री से दूसरी कोठ्री मे घुमाने लगी और एक से एक मनोहर सामग्री दिखलाने लगी। फिर अपने शयनागार में लेगयी, वहां एक मैना थी जो बोलती थी।

विमला ने सरला को दिखा कर कहा, "बतावो तो मैना, यह कौन है?

पक्षी ने कहा, "कौन है?"

विम।—'तू बता, मै क्या बताऊं।"

पक्षी।—"मैं क्या बताऊं ?"

बिम।—"बस मालूम किया, तू जानती नहीं।"

पक्षी।—"तू जानती नहीं।"

बिम।—"मैं तो जानती हूं, अच्छा बता तो, सरला बाहर की स्त्री है कि घर की ?"

पक्षी।—"घर की।"

बिम।—"नहीं बता सकी, दूसरे की।"

पक्षी।—"दूसरे की।"

वहां से दोनों दूसरे घर में गयीं। सरला पक्षी की बात सुन कर विस्मित हुई, विचारने लगी, "मैं क्या इसी घर की स्त्री हूं ?"

बिमला को पक्षि की बातपर कुछ आश्चर्य नहीं हुआ, क्योंकि वह तो जानती ही थी कि वह कहां तक है,—उससे जो कुछ कहा जाता था और सब शब्दों को छोड़ पिछले दो तीन शब्द कहती थी और बिमला ने जान बूझ कर उससे ऐसे प्रश्न किये कि अन्त के दो तीन शब्दों के कहने से एक अर्थ निकले।

वहां से फिर सरला को एक दूसरी कोठी में ले गयी। कोठी देखते उसको विपन्नता दूनी हुई, अकबकाय कर सोचने लगी।

विमला ने स्नेह पूर्वक कहा, "आवो, फिर क्यों चिन्ता करती है ?"

सरला ने कहा, "मेरा मन फिर न जाने कैसा हो रहा है, मानो स्वप्न देखती हूं, माता कहां है ?"

विमला ने फिर कर देखा, सरला की आंखों में आंसू भर आये थे,—चुपचाप उसको उसकी माता के निकट पहुंचा दिया। सरला दौड़ कर माता के समीप जा कर, आंखों से आंसू डारी, अपनी माता की गोद में छिपी।

महाश्वेता ने बड़े चाव से सरला को चूम चाट कर पूछा—

"क्यों बेटी, क्या हुआ ?"

सरला ने उत्तर दिया, "माता, मैं नहीं कह सकी, इस घर में कुछ है, आज सारा दिन मानो मैं स्वप्न देख रही हूं। सारी वस्तु ऐसी जान पड़ती है जैसे एक बेर देखा है। इतने में एक कोठरी में गयी तो देखा कि एक देव मूर्ति वीर पुरुष सामने खड़ा है। माता मैं बड़ी पगली हूं, मैंने उस को पिता कर के पुकारा। माता, यह क्या है—क्या मैं वास्तविक स्वप्न देख रही हूं ?"

महाश्वेता और नहीं सुन सकी—डाढ़ मार कर रोने लगी—अबोध बालिका की बातें सुन कर कलेजा फटने लगा।

जब शोक का प्रथम वेग सम्भला महाश्वेता ने फिर कन्या को आलिंगन कर के चूमा और कहा, "सरला, यह स्वप्न नहीं है, पुरानी बातें तुझ को स्मरण होती हैं, जिन बातों को मैंने इतना दिन छिपा रक्खा था, और मैं जानती थी कि तू भी भूल गयी होगी आज आप से आप तेरे भीतर में निकलती हैं, अब मैं तुझ से कुछ न छिपाऊंगी।"

यह कह कर महाश्वेता ने सरला से सम्पूर्ण कथा आद्योपान्त कह सुनायी। उस के जन्म की कथा, समरसिंह का सम्मान और गौरव, उन की अन्याय मृत्यु, अपना भागना और कपट वेश धारण करना; सम्पूर्ण बातें खोल कर कह दिया। वह सब बातें पहिले स्वप्न कीसी जान पड़ीं किन्तु रहते २ जब मोह जाल कम होने लगा, तो एक बातों का स्मरण होने लगा। घर, दालान, स्तंभ देखते २ पुरानी बातों का चेत होने लगा।

महाश्वेता का वज्र का हृदय भी द्रवी भूत हुआ और कन्या को आलिंगन कर के ऊंचे स्वर से रोने लगी।

तिलका एक किनारे बैठी किसी गम्भीर चिन्ता में मग्न थी। उस की भौंहें सिकुड़ी थीं; अधुरो बंधी थी, आंखों से आग बरस रही थी। उस के मन का भाव पाठक गण अनायास ही जान सक्ते हैं। शकुनी कैसा पामर है पिता को कैसे पाप कर्म में लिप्त कर रक्खा है, महा-

श्वेता को क्यों कैद किया; इन्हीं सब बातों के चिन्ता सागर में वह डूबती उतराती थी।

एकाएक विमला को आंख सी खुल गयी और गम्भीर स्वर से बोली "मलवा, पामर शकुनी के पाप की थाह तो मैंने अब पाया है,—इस संसार में तो उसके ऐसा कोई दूसरा पातकी नहीं है, नरक में उस के समान कोई कीट भी नहीं है। भगवान मालिक है, इस भारी पाप का भारी प्रायश्चित चाहिये।"

इस गम्भीर बात को सुन कर महाश्वेता अपनी चिंता भूल गयी। बोली,—"बेटी विमला, भगवान के ऊपर मेरी पूरी भक्ति है किन्तु उन का अभिप्राय, उन की लीला का भेद कुछ जान नहीं पड़ता, नहीं तो पाप की जय क्यों?"

विमला फिर उसी स्वर से बोली, "मलवा, मेरी बातों का ध्यान रखिए, पाप की जय क्षणस्थायी है, पाप का घोर प्रायश्चित्त दूर नहीं है। मैं इस पामर के मृत्यु का कोई उपाय नहीं पाती। आपके स्वामी के मृत्यु को प्रति हिंसा में विलम्ब नहीं है।" यह कह कर विमला जल्दी से उस कोठी से निकल कर बाहर चली गयी।

तेईसवां परिच्छेद।

भिखारिनी का रत्न।

Has sorrow thy young days shaded
As clouds o'er the morning fleet?
Too fast have those young days faded
That even in sorrow were sweet,
Does time with his cold wing wither
Each feeling that once was dear,
Come, child of misfortune! come hither,
I 'll weep thee tear for tear!

Moore.

सन्ध्या समय महाश्वेता पूजा के निमित्त यमुना के तीर पर गयी, शकुनी को इस में कुछ हानि नहीं थी। जिस दुर्ग में उस ने अपनी यौवनावस्था व्यतीत की, जहां सुख से अवस्थान किया था, जहां उस ने वंग चूड़ामणि राजा अमरसिंह की राजमहिषी हो कर काल यापन किया था, आज उसी दुर्ग के समीप हीन, निराश्रय विधवा, बन्दी हो कर उपासना करती है। पहिले जिस प्रकार यमुना नदी तरङ्ग मयी हो कर कलकल शब्द करती हुई बहती थी आज भी उसी प्रकार बह रही है, किन्तु महाश्वेता जिस भाव से उस को ओर पहिले देखती थी क्या अब भी उसी

भावसे देखती है ? पल्लीग्राम स्थित वृक्ष श्रेणी, पार्श्ववर्त्ती शस्य कानन, सब ज्यों के त्यों हैं किन्तु मनुष्य का हृदय कैसा परिवर्तित होता है। आज वह प्राचीन गौरव कहां है, वह दुर्गाधिपति कहां हैं, वह वीर श्रेष्ठ कहां है ? ग्रीष्म काल के प्रचण्ड वायु से सूखे पत्ते जैसे दूर उड़ जाते हैं, समुद्र की तरङ्ग माला में जल बिन्दु जैसे लीन होता है,—अतीत काल रूप महासागर में वह गौरव भी उसी प्रकार लीन हो गया।

महाश्वेता देर तक उपासना करती रही। छः वर्ष पूर्व उसने जिस पूजा का आरम्भ किया था उस में किञ्चित मात्र शिथिलता नहीं हुई। वह व्रत, वह दृढ़ प्रतिज्ञा, वह जिघांसा उस के जीवन, उस के धर्म का एक अंश हो गया था; स्वामी के मृत्यु समय उसने जो प्रतिज्ञा किया था आज-तक वह भूली नहीं। प्राचीन अटारी, दुर्ग, और नदी देख कर वह कालाग्नि द्विगुण तेज से उस विधवा के हृदय में जलने लगी। वह कालाग्नि—वह कालाग्नि किसी और के हृदय में न जलैं, जिघांसा का व्रत कोई और धारण न करैं, कोई नराधम प्रतिहिंसा के लिए परमेश्वर से प्रार्थना करने का साहस न करै। हृदय से क्रोध, दर्प, अभिमान दूर करो,—केवल परोपकार और धर्म संचय निमित्त भग-वान से प्रार्थना करो,—इस संसार में कै दिन रहना है ?

इधर विमला सरला को अपने घर में ले जाकर दोनों सहोदर भगिनी की भांति एक ही शय्या पर सोयीं। विमला सरला को देखते ही उससे विशेष प्रीति करने लगी किन्तु जब उस को मालूम हुआ कि वह शकुनी और उस के पिता ही के कारण अनाथ हुई है, और भी विशेष यत्न करने लगी। पिता ने जो अन्याय और पाप कर्म किया था उस का यदि परिशोध हो सके, तो विमला सरला और महाश्वेता के प्रति प्रगाढ़ स्नेह और यत्न द्वारा उस का परिशोध करने लगी। दोनों एक स्थान पर सोयी अनेक काल तक बात चीत करती रहीं; दोनों सम उमर और क्वारी थीं अतएव दोनों में बहुत जल्द प्रगाढ़ और पवित्र प्रेम का संचार हुआ।

विमला वारम्वार सरला और महाश्वेता के अज्ञात वास औ कष्ट की बात पूछने लगी, वारम्वार पल्लीग्राम की बात पूछने लगी। सरला के मुंह से वह सब बातें सुन कर उस के आंखों में पानी भर आया, पिता के पाप कर्म का ध्यान कर के हृदय में वेदना होने लगी, शकुनी के ऊपर क्रोध करने लगी और नयन दोनों रक्त वर्ण हो गए। सरला को उन बातों के कहने में कुछ दुःख नहीं होता था,—वह बहुत दिन से अपने को एक सामान्य गृहस्थ की कन्या समझती थी, फिर उस को उस बात के कहने

से छूट क्यों होगा ? किन्तु सरला दरिद्र अवस्था में भी दुःख की बात बिना कुछ क्लेश अथवा असमंजस अनुभव किए कहती थी, इसी से विमला का उन्नत हृदय और भी विदीर्ण होने लगा। उस ने स्नेह पूर्वक उस के दोनों हाथ पकड़ कर गले से लगा लिया और उसके मुंह के पास अपना मुंह ले जा कर बार २ उस सरल चित्त बालिका के मुंह से वह दरिद्र कष्ट, उस पल्लीग्राम की बाबत पूछती थी, बारम्बार उसी एक बातके सुनने को जी चाहता था बार बार सरला के नयन, व बदनमण्डल और केशराशि आंसू से तर होते थे।

विमला ने पूछा, "अच्छा तुमलोग जब रुद्रपुर में थे वहां तुमारा बन्धु कौन था ? क्या किसानों ही की स्त्री तुमारी बन्धु थीं ?"

सरला ने कहा,—"माता किसी से बहुत बातचीत नहीं करती, दिन में प्रायः चिन्ता में निमग्न रहती हैं, और रात को पूजन में लीन रहती है। मुझ से दो एक ग्रामीण स्त्रियों से भेंट थी। अमला नाम एक महाजन की स्त्री थी उस से मुझ से बहुधा बात चीत हुआ करती थी।"

विम।—"वह कौन जाति की थी !"

सर।—"जाति की कैवर्त्त थी।"

विम। 'वह तुझ को चाहती थी, तेरे लिये यत्न करती थी?"

सर।—"मेरे जान, मेरी माता के भिन्न और दूसरा कोई मुझ को उतना नहीं चाहता था, उसका स्मरण होने से अब भी आंखों में जल भर आता है।"

विम।—"तुम लोग क्या व्यापार करती थे?"

सर।—"मैं घर में बैठी चरखा कातती थी, चिन बनाती थी, घर के समीप एक छोटी सी अमराई थी, इस में फल होता था, सुतरां हम लोगों को कोई क्लेश नहीं था।"

विम।—"सरला, तेरे प्रति कितना अन्याय हुआ है मैं कह नहीं सकती। मुझ से यदि हो सकेगा तो भीख मांग कर भी तुम लोगों को अपनी प्राचीन दशा को पहुंचाऊंगी।"

सर।—"मैं सत्य कहती हूं, पल्ली ग्राम में उस अवस्था में रहने से मुझ को कुछ भी क्लेश नहीं था किन्तु माता रात दिन चिन्ता किया करती थी, उसी के कारण मुझ को दुःख होता था। मैं यही चाहती हूं कि माता को सुख से रक्खो।"

विम।—"सरला, मैं भी वही चाहती हूं, प्राण देने पर भी यदि तुम्हारी माता को सुख मिले तो मैं प्रस्तुत हूं।"

सर।—"क्यों, तू क्या नहीं कर सकती? तेरे पास इतना धन है, इतना मान है।"

विम।—"सरला, तू मेरा हाल भली भांति नहीं जानती, यदि जानती होती तो अपने से भी मुझ को वि-

शेष हतभागिन समझती। यह धन, और मान आमोद का नहीं है।"

सर।—"क्यों?"

विम।—"मैंने प्रातः कालही कहा था कि शकुनी मेरे पिता का प्राण नाश कर के यह दुर्ग और सम्पूर्ण जमींदारी अपने हस्तगत करने का उद्योग कर रहा है। मुझ को रात दिन पिता की चिन्ता में नींद नहीं आती किन्तु केवल यही एक दुःख नहीं है?"

सर।—"और क्या है।"

विम।—"सरला, मैं तुझ से कुछ छिपाऊंगी नहीं, यह दुष्ट मुझ से विवाह करने की इच्छा रखता है। यदि ऐसा हुआ तो पिता के मरने पर वह अनायास उत्तराधिकारी हो जायगा। सरला, मुझको कहने में लज्जा आती है, यह दुष्ट नराधम कितने दिन से नित्य प्रति विवाह का प्रस्ताव करता है और यदि मैं अस्वीकार करूं तो बलात्कार विवाह करना चाहता है। आज तीन दिन हुआ उसने यह उद्योग किया था। जब मैंने कोई और उपाय नहीं देखा उससे उस समय प्रार्थना की, बड़े कष्ट से तीन दिन का सावकाश मिला। आज रात को तीन दिन हो जायगा, कल प्रातः काल उस नर घातक का फिर सामना होगा। सरला, मुझ से बढ़ कर अभागिन कौन है?"

सरला विस्मित हुई, अथेक पीछे पूछने लगी, "कल फिर बचेंगी कैसे ?"

विमला ने बड़े गम्भीर स्वर से कहा,—
"कल जगदीश्वर मुझको बचावेंगा, उस की कृपा से परित्राण का अवसर मिल जायगा। कल रात को पिता के पास भाग जाउंगी, उस का भी उपाय कर चुकी हूं। तदनन्तर स्त्री द्वारा उस पापी के पाप का प्रायश्चित्त होगा, उस का भी उपाय कर चुकी हूं। हे भगवान इस दुरूह कार्य्य मे अबला का तू सहायक हो।"

सरला विस्मित हो गयी, विमला अपनी चिन्ता मे मग्न हो आप से आप कहने लगी, "हां मुंगेर मे जाकर पिता का परित्राण करूंगी,—हिंसा की प्रति हिंसा होगी, पापी की शान्ति होगी।—पिता से कह कर यह दुर्ग फिर महाश्वेता को समर्पण करूंगी। मैं पिता के मन की बात जानती हूं, शकुनी के फन्दे से छूटने पर उन को न्याय करने मे संकोच न होगा, और फिर यदि जगदीश्वर की इच्छा हुई, मेरे प्राण प्यारे मुंगेरही मे तो हैं,—सरला, तुम को कभी प्रेम हुआ है ? तू अभी बालिका है इस प्रकार के दुःख को अभी नही जानती।"

सरला से कुछ उत्तर नही चला, किन्तु उस के मुंह से अनायास एक बात निकल आयी,—"जानती हूं।"

विमलाने देखा सरला के आंखों में पानी भर आया था।

विमला ने विस्मित हो कर जिज्ञासा किया, "सरला तू ने तो यह बात मुझ से पहिले नहीं कही थी।" यह कह कर वार २ सरला से जिज्ञासा करने लगी, सरला ने लज्जा से अभिभूत होकर धीरे २ सब बातें कह सुनायी।

विमला ने जाना कि बालिका का हृदय प्रगाढ़ प्रेम से परिपूर्ण है, उस प्रेम की सीमा नहीं है, तल भी नहीं है। सोचते २ कुछ गम्भीरता आ गयी, और बीच २ में हंसी भी आ जाया करती थी। सोचो, सरला, मेरे सरीखे विपद में पड़ कर भी रमणी के प्रधान धर्म को भूलती नहीं,—मेरे सरीखा उस का भी हृदय प्रेम से परिपूर्ण है, मेरे सरीखे अन्धकार में पड़ी है,—आपा प्रीतम का घर द्वार, वंश, कुल, कुछ नहीं जानती. ईश्वर उस का मनोर्थ सफल करे।"

फिर पूछने लगी, "सरला, उन का नाम क्या है?"

सरला ने मुंह नीचे कर के कहा, "इन्द्रनाथ।"

यह नाम सुनते ही विमला को मानो बिच्छू सा डंस गया। सरला को देख कर आश्चर्य हुआ, बोली, क्यों, क्या हुआ?"

विमला ने कहा, "कुछ नहीं,—मन में कहा कि सं

सार में अनेक इन्द्रनाथ होंगे। फिर पूछा, "तुम से उन से अन्तिम साक्षात कब हुआ था ?"

सरला ने कहा, "आज दो महीना हुआ वे किसी विशेष काम के लिये पश्चिम गये हैं।"

विमला और भी विस्मित हुई—ठीक दो महीना हुआ उस के भी इन्द्रनाथ पश्चिम को गये। फिर इन्द्रनाथ के अवयव आकृत इत्यादिके विषय में प्रश्न करने लगी। सरला ने जो कुछ वर्णन किया वैसे इन्द्रनाथ नहीं थे क्योंकि इन्द्रनाथ जैसे सुन्दर थे सरला ने उससे दशगुण अधिक बढ़ा कर वर्णन किया। किन्तु विमला के हृदय में जो मूर्त्ति अङ्कित थी, उससे उस का वर्णन मिल गया,—विमला और सरला दोनो ने इन्द्रनाथ को प्रेम दृष्टि से देखा था,—दोनो के हृदय में एक २ प्रकार की मूर्ति उन की स्थापित थी। विमला का कलेजा दहलने लगा, शरीर से पसीना हो आया और ठंढी सांस लेने लगी। अन्त को उस ने फिर एक बात सरला से पूछा,—

"उन के शरीर में किसी स्थान पर कोई चिन्ह है ?"

सरला ने कहा, "उन के बायें हाथ के पृष्ठ देश में एक काला तिल है।"

विमला चिल्ला कर पलंग पर जाकर मुंह छिपा कर पड़ रही—उस ने उस चिन्ह को महेश्वर के मन्दिर में देखा था,—उस का हृदय फटता था।

सरला ने विमला की ओर हाथ फैला कर पूछा, क्यों, क्या हुआ ? "कुछ नहीं" कह कर विमला ने उसका हाथ बल पूर्वक झटक दिया ।

सरला ने विस्मित होकर हाथ फैला कर पूछा, "क्या कहीं कुछ पीड़ा होती है ?"

फिर विमला ने हाथ झटक कर कहा, "नहीं—हाँ हुई तो है, हृदय में,—नहीं नहीं, नहीं हुई है ।"

सरला अधिकतर विस्मित हो कर कुछ देर चुप रही। उस समय विमला के हृदय पर वज्र का आघात होता था ।

क्षणेक पीछे सरला ने अति कातर करुणा स्वर से कहा,—

"विमला, मुझ से रुष्ट हो गयी ? मुझ से यदि कोई अपराध हुआ हो तो क्षमा करो, मैं अज्ञान अभागिन हूं"

उस करुणा स्वर से किस का हृदय द्रवीभूत न होता ? विमला का भी हृदय द्रवीभूत हुआ, बोली,—

"नहीं सरला, तूने कोई अपराध नहीं किया है,—मुझ को क्षमा करो मेरे सिर में दर्द होता है । सोवो, मैं भी सोऊंगी, इसी से व्यथा दूर होगी ।"

सरला ने फिर कुछ नहीं पूछा विमला को स्नेह पूर्वक आलिंगन कर के करवट फेर कर सोई, और पूर्व रात्रि के जागरण से तुरन्त निद्रा आ गयी ।

बिमला को नींद नहीं आयी,—उस की यातना का वर्णन कौन कर सक्ता है ? जो प्रचंड वायु उस के हृदय के बीच चल रहा था वह कुछ काल के अनन्तर नीरव हुआ किन्तु शान्त, नीरव अथच मर्मभेदी शोक का प्रवाह बन्द नहीं हुआ। हृदय में जो क्रोध उत्पन्न हुआ था, सरला के प्रशान्त मुख मंडल और मुद्रित नयन को देखते २ क्रमशः क्षीण हो गया।

यह बालिका निर्दोषी है—यह अनाथ निराश्रय है, इस का क्या दोष, इस पर क्या मैं क्रोध कर सक्ती हूं। हमीं ने सरला को अनाथ बनाया है, हमीने महाश्वेता को विधवा बनाया है, हमीने उसे गांव २ भिखारिन की भांति भ्रमण करना और भिक्षा मांग कर जीवन प्रतिपालन करने को "मजबूर" किया है। उसी ग्राम में रह कर सरला ने इतना दुःख सहन किया है—सहन कर के जीवन धारण किया है—यह केवल एक मात्र आशा का कारण है,—वह आशा प्रेम की है। दरिद्र अवस्था में उस पल्लीग्राम में उसने जो रत्न पाया है, क्या भिखारिनी का वह रत्न मैं उससे छीन सक्ती हूं ?—

"भिखारिनी कौन ?—मुझे प्राणेश्वर भिखारिन जान कर मानते हैं, सरला तू उस भिखारिनी का रत्न छुड़ाये लेती है। सरला, तेरा मान, सम्भ्रम, सम्पत्ति, अमी·

हारी आदि हम लोगों ने छीन लिया है वह सब अपना फेर ले, और जो तेरा जी चाहे, और जो हमारे पास है ले ले, यह सब सकी हूं—किन्तु भिखारिनी का रत्न मत ले—इस रत्न के ले लेने से हृदय विदीर्ण हो जायगा।" विमला आरत हो कर रोने लगी,—आंसू के प्रवाह से सय्या को भिगा दिया।

आज यथार्थ ही उस का हृदय विदीर्ण होता है। वह शोक के प्रवाह से दुःख के मारे अस्थिर हो रही थी। हृदयेश्वर! तुम किस के होगे? सरला, मैं तुझ को वंचित न करूंगी,—पाप कर के मेरा अंग परिपूर्ण है, आज हृदय रत्न तुझ को दे कर उस पाप का प्रायश्चित्त करूंगी।—हाय! चेटा हुआ है, यह रत्न हृदय का अंग हो गया है, इस अंग के उत्पाटन करने से हृदय भी उत्पाटित हो जायगा।" फिर पुक्का फाड़ कर रोने लगी।

फिर सोचने लगी, "सरला, यह रत्न तूने कहां पाया था? दरिद्र होने से क्या यह रत्न मिल सक्ता है? पल्ली ग्राम में कुटी में रहने से क्या यह रत्न मिलता है? भिक्षा मांग कर जीवन धारण करने से क्या यह रत्न मिलता है? मैं भी दरिद्र हूंगी, कुटी में निवास करूंगी, द्वार २ भिक्षा मांगूंगी, यह रत्न मुझ को देव। क्या चिरकाल तपस्या करने से यह रत्न मिल सक्ता है, सागर में डूब मरने

से यह रत्न मिल सक्ता है ? मैं भस्म लगा कर तपस्विनी बनूंगी, सागर में डूबूंगी,—यह रत्न मुझ को दो। नहीं सरला, मैं तेरा यह रत्न न लूंगी, पराये धन की लालच न करूंगी। हे परमेश्वर! तू सहाय हो जिस में मेरे द्वारा सरला को और कष्ट नहो, जिसमे मैं पापिन न बनूं। नहीं सरला, मैं तेरे इन्द्रनाथ को न लूंगी, मैंने अपने प्रेम को तिलांजलि दिया,—प्रेम उत्पाटन करने मे यदि हृदय उत्पाटन करना हो तो भी मुझ को स्वीकार है—देख लेना कि स्त्री का हृदय कितना सहन कर सक्ता है। मैं निश्चय कर के कहती हूं कि तेरी सौत न बनूंगी, परमेश्वर मुझको बल से रक्खें।"

शान्ति सागर परमेश्वर का नाम सुनने से किस अभागिन का दुःख शान्त नही होता। विमला ने परमेश्वर का नाम ले कर हृदय को स्थिर किया, संकल्प किया कि हृदय मे चाहे जो कुछ हो बाहर से इन्द्रनाथ की अभिलाषा न करूंगी।

प्रतिज्ञा तो उस ने किया, और धारण किया, किन्तु एक बार्गी शोक निवारण करना उस का काम नहीं था। जिस किसी स्त्री ने कभी एक क्षण मे अपने हृदय के सर्वस्व को विसर्जन करने की चेष्टा की होगी, वक्षःस्थल से हृत पिंड निकाल कर बाहर फेंक देने की चेष्टा की होगी,

वही बिमला के हृदय की यातना को समझ सकेगी। रात बहुत गयी किन्तु बिमला की चिन्ता दूर नहो हुई। रह २ कर सरला के चिन्ता शून्य मुंह को देखती थी, उस के मुंदे हुए नयनो को निहारती थी, रह २ कर चिन्ता में मग्न हो जाती थी और आखों से पानी बहने लगता था। देर तक इसी प्रकार चिन्ता करती रही आखों में पानी एकत्र हो रहा था और क्रमशः आंखे भर गयीं और वही जल बहकर मुंह पर से हो कर बिछौने पर गिरता था। आंसू एकत्र होते थे और आंखें भर जाती थीं, और फिर धार बहने लगती थी। उस गंभीर रजनी मे जो एक एक कर अश्रु विन्दु पतित होते थे उस को कौन देखता था? इस जगत संसार में रात्रि समय कितनी आंसवों की धारा बहती हैं कौन देखता है?

भोर होने लगा, आकाश प्रकाशित हो आया, घर में उंजियाला हो गया। रात को रोने से बिमला का हृदय कुछ शान्त हुआ था, प्रतिज्ञा और भी दृढ हुई थी। बिमला ने देखा कि सरला अभी भी सो रही है, कृष्ण केश लटें मुंह पर पड़ी हैं, होंठ दोनो कुछ खुले हैं, उन के बीच से दाडिम फल के समान दांत की बत्तीसी देख पड़ती है। बिमला ने गाढ़ भक्ति पूर्वक ईश्वर की आराधना की और फिर सरला की ओर देख कर बोली, "आज मै तुझ

से पढ़ कर भिखारिन हुई, परमेश्वर तुझ को सुख से रक्खे।" यह कह कर स्नेह पूर्वक सरला के दोनों ओठों को चूम कर उस कोठरी से बाहर चली गयी।

चौबीसवां परिच्छेद।

शेष अवलम्बन।

"O ! do not tempt," she said:
"O ! do not add to my distress,
I have tasted much of bitterness."

* * *

But ah, fair maid, thou pleadest in vain.
His heart is proof to prayers.
Albeit like darksome floods of rain
Thou shedst thy scalding tears.

* * *

One cry she gave, one shriek of wail;
Her hands, her tresses roved among,
Thence drew her mother's parting blade.
Now let the tyrant have his meed,
Now dagger do they deed:

S. C. Dutt.

पूर्व परिच्छेद मे जो कुछ लिखा गया है उस को पढ़ कर कोई २ पाठिका हंसेंगी,—कहेंगी, "क्या स्त्री कभी अपनी सौत के लिये इच्छा पूर्वक अपने प्रेम को परित्याग कर सक्ती हैं ? ऐसे झूठ लिखने पर कौन विश्वास करैगा ? लेखक स्त्री के स्वभाव को नही जानता।"

हम स्वीकार करते हैं, हमारी क्या सामर्थ्य जो स्त्रियों के हृदय को जान सकें,—उस गंभीर चक्रान्त मे दांत नही खोल सक्ते, ऐसा साहस भी नही कर सक्ते। बिमला के विषय मे हम को यही वक्तव्य है कि उस के हृदय मे प्रतिज्ञा जैसी दृढ़ और अभंगुर थी पुरुषों के हृदय मे प्रायः ऐसी नही होती। पराये के लिये, धर्म के लिये, न्याय के लिए अपना सुख त्याग कर देने की उस को असाधारण क्षमता थी। इस के पहिले कई बेर उस के मुँह से हमलोग "हृतपिंड उत्पाटन" की कथा सुन चुके हैं हम जानते हैं कि यदि आवश्यकता होती तो उसको यह भी करने मे सन्देह नही था। यदि इस हमारे कहने से पाठिका लोगों को तुष्टि नही होती तो हम हारे।

पूर्व परिच्छेद मे स्पष्ट प्रगट हुआ है कि बिमला इन्द्रनाथ के प्रति उन्मत्त की भांति आसक्त थी। जिस दिन दुर्ग मे दोनों की चार आंखें हुई थीं उसी दिन से बिमला पागल हो गयी थी। घर मे यदि बिमला को दो चार सं-

गिनी होतीं तो हंसी ठट्ठे में महेश्वर के मन्दिर की बात भूल जाती किन्तु ऐसा होने से सतीशचन्द्र और शकुनी के गूढ़ तन्त्र साधन में व्याघात होता इसलिये बहुत लोग घर में रहने नहीं पाते थे। हिन्दू जमीदारों का घर जैसे ज्ञाति कुटुम्ब से पूर्ण रहता है सतीशचन्द्र का घर ऐसा नहीं था। अतएव विमला प्रायः अकेली रहा करती थी,—ऐसे समय प्रथम प्रेम के अतिरिक्त किस बात की चिन्ता हो सक्ती है? दिन बीता, महीना बीता, चिन्ता दृढ़ होने लगी,—उसी के संग २ प्रेम भी प्रगाढ़ होने लगा।

घर में यदि विमला के सुख का कारण होता, कोई ऐसा होता कि जिस्से प्रीत हो सक्ती, तो सुख में पड़ कर अथवा उस पात्र से, चाहे भाई होता चाहे भगिन होतीं, प्रीत करके विमला महेश्वर के मन्दिर की चिन्ता कुछ भूल भी जाती किंतु सतीशचन्द्र के वंश में तो विमला अकेलीही थी, ऐसा कोई भी नहीं था जिस के संग उसका प्रेम हो सक्ता। और सुख,—विमला को सुख क्या था, जगत में विमला के सुख का कोई कारण नहीं था। पिता विदेश गये थे,—युद्ध में जीवन की बहुत कम आशा रहती है, जिस पर शकुनी की धूर्तता, पिता के विषय में उस को प्रति क्षण सन्देह बना रहता था। और यहां वही शकुनी रात दिन विवाह करने के लिए छाती पर चढ़ा था। उसका चरित्र

और स्थिर सहिष्णुता के होते भी वह इस कष्ट को सहन नहीं कर सकी थी, इतनी दुःख चिंता सह नहीं सकी थी। जैसे भीषण मेघ के अन्धकार में विद्युत का प्रकाश दिखाई देता है उसी प्रकार मानव जाति के घोर दुःख दुर्दिन में मायाविनी आशा दिखायी देती है।—केवल दुःख चिंता में निमग्न रहे ऐसी प्रकृति मनुष्य की नहीं है। विमला के दुःख रूपी मेघ के अन्धकार में विद्युत प्रकाश क्या था? विमला के दुःख दुर्दिन में क्या आशा थी?—इन्द्रनाथ के प्रेम की चिन्ता,—स्त्री को और होही क्या सक्ता है? उस दुःख और चिन्ता सागर में पड़ कर विमला प्रेम स्वरूप एक मात्र ध्रुव नक्षत्र की ओर स्थिर दृष्टि करके जीवन पालन करती थी,—दुःख में भी सुख का अनुभव करती थी।

विमला यदि सामान्य बालिका की भाँति चञ्चल चित्त होती तो दुःख के समय जो स्त्रियाँ घर में थीं उनसे दुःख की कथा कह बात चीत में अपना दुःख भूल जाती किंतु हमने तो पहिले ही कहा है कि विमला गम्भीर चित्त, उन्नत चरित्र और मानिनी स्त्री थी, अपना सुख दुःख चुप चाप सहन करती थी, अपनी परामर्श अपने आप करती थी। सतीश्चन्द्र भी कभी २ अपनी धर्म परायण मानिनी कन्या से डरते थे, कभी २ उससे परामर्श भी लेते थे, ऐसे स्थिर चरित्रवालों के मन में किसी प्रवृत्ति के उत्तेजित होने

से वह पत्थर पर की लीक की भांति शीघ्र मिट नहीं सक्ती। महेश्वर के मन्दिर में विमला के हृदय में जो प्रति मूर्ति अंकित हुई थी वह अटल थी । यह और २ अनेक प्रकार के कारण कर के विमला के हृदय में जो प्रेम का संचार हुआ था वह काल क्रम से टल नहीं सक्ता था वरन दिन पर दिन बढ़ता जाता था। महेश्वर के मन्दिर में जिस वीरमूर्ति को देखा था वह सर्वदा आंखों के सामने खड़ी रहती थी, कभी भूलती नहीं थी। उस प्रेम को तिलांजुलि देना कैसा दृढ़ प्रतिज्ञा का काम है, कैसे वीरता का काम है, पाठक महाशय टुक विचार कर के देखें। रमणी के हृदय में इस्से बढ़ कर वीरता का संभव नहीं।

विमला के लिए आज का दिन बड़ा भयङ्कर था किंतु उस ने विपद से बचने का उपाय पहिले से कर रक्खा था। प्रातःकाल विमला शयनागार से उठ कर एक दूसरे घर में जा कर उपासना करने लगी,—देर तक उपासना करती रही,—अविरल आंसू की धारा गालों पर से हो कर बही चली जाती थी।

उपासना समाप्त कर के उस ने बाहर आ कर जो कुछ देखा उस्से हंसी और रोलाई दोनों आयी। उस ने देखा कि सरला एक मिट्टी का घड़ा कमर पर रक्खे खड़ी उस की प्रतीक्षा कर रही है। सरला ने कहा, "विमला,

तेरा कलश कहाँ है ? इतनी वेला हुई, घाट को न चलेगी?"

बिमला ने विस्मित हो कर पूछा, क्यों सरला, यह कलस काहे को लिये है ?

सर।—"पनिघट पर जल भरने को जाती हूं। आज बहुत अबेर हो गयी, पानी एक बूंद भी नहीं है, रसोई कब होगी ? मै तेरे ही लिए खड़ी हूं।"

बिमा।—"रसोई कब से हो रही है। हम पनिघट पर क्यों जांय ? हम को पानी लाने का क्या प्रयोजन ?"

सर।—"फिर कौन लावेगा ? रुद्रपुर में तो मैं अपने आप लाया करती थी।"

बिमला की आंखों में आंसू भर आया। बिमला ने सरला के हाथ से कलस ले कर धर दिया और स्नेह पूर्वक कहा,—"मेरे यहां अनेक दास दासी हैं वे सब काम करेंगे, तुम को कुछ काम करने की आवश्यकता नहीं है। जाव तुम अपनी माता के पास जाव, अब वे उठी होंगी।"

सरला लज्जित होकर माता के समीप गयी—बिमला अपने घर गयी देखा कि शकुनी राह देख रहा है देख कर, सहम गयी और शरीर का रुधिर सूख गया।

शकुनी स्थिर भाव से खड़े हो कर बिमला की ओर देख रहा था। सांप जैसे मेड़क को खाने के पहिले देखता है उसी प्रकार शकुनी बिमला की ओर देर तक देखने लगा।

विमला खड़ी पृथ्वी की ओर एक टक देखती थी। उसका हृदय भय और क्रोध से जर्जर हो रहा था। अगली रात की कथा स्मरण किया। दो महीने से जिस जतन से एक मात्र सुख की आशा करती थी, वह आशा दूर हुई नारी जीवन के एक मात्र प्रेम की आशा किया था, उस प्रेम को जलांजुलि दिया,—हृदय के हृदय में जिस प्रतिमा को स्थान दिया था, वह प्रतिमा चूरचूर हो गयी, उसके संग उस का हृदय भी चूर हो गया। यही सब चिन्ता करते विमला अस्थिर हुई, आंख में पानी भर गया, बोली,—

"शकुनी मै बड़ी अभागिन हूं,—मेरी सी अभागिन दूसरी स्त्री नही है, मुझ को दुःख मत देव, चमा करो।"

उस दुःख की बात को सुन कर पत्थर भी पिघल जाता किन्तु शकुनी का हृदय नही पिघला मुसकिराकर कहनेलगा,—"इसीलिये तीन दिनका दिन लिया था?"

विम।—"मुझ को तुम ने दिन दिया अतएव मैं धन्यवाद करती हूं,—किन्तु मुझ को चमा करो, मुझ को जो कष्ट हो रहा वह तुम नही जानते, मेरा हृदय फटा जाता है। शकुनी मुझ को चमा करो।"

शकु।—"विवाह होने के पहिले सब स्त्रियां ऐसाही करती हैं ससरार जाने के समय सभी रोती हैं किन्तु अब

एक बार चली गयीं तो फिर आने का जी नहीं करता ।"

विम।—"शकुनी, उपहास मत करो, मेरे हृदय में बड़ी पीड़ा होती है,—हँसी अच्छी नहीं लगती ।"

शकुनी ने कुछ क्रोध कर के कहा, "मैं तुझ से हंसी करने नहीं आया हूं । तुमने जो प्रतिज्ञा की है उस पर दृढ़ हो कि नहीं ?"

विमला ने करुणा का स्वर परित्याग गम्भीर स्वर से कहा "मैंने कोई प्रतिज्ञा नहीं की है ।"

शकु।—"प्रतिज्ञा नहीं किया है नहीं सही,—मेरे संग विवाह करने में सम्मत हो कि नहीं ।"

विम।—"जब तक शरीर में प्राण है तब तक तो सम्मत न हूंगी ।"

शकु।—"अब मेरा कुछ दोष नहीं, बल प्रकाश करने के अतिरिक्त और दूसरा उपाय नहीं है ।"

विम।—"यदि मेरे पिता यहां होते तो तुम ऐसा न कहते । पिता के न रहते, रक्षा करने वाले के न रहते अबला के ऊपर अत्याचार करना ब्राह्मण का धर्म नहीं ।"

शकु।—"मैं तुम से ब्राह्मण धर्म सीखने को नहीं आया हूं ।"

विम।—"तब भी मेरी बात को मानो । देखो, मेरे पिता तुमारे ऊपर कितना अनुग्रह करते हैं;—तुम को दरिद्रावस्था से अपने पुत्र के समान पालन पोषण किया है,

अब भी तुम को उसी भांति मानते हैं। उन को कन्या के प्रति अत्याचार करना तुम को उचित नहीं है।"

शकुनी अपने पूर्व कालीन दरिद्र अवस्था की बात सुन कर और भी क्रोधित हुआ और बोला,—

"तुमारा पिता इतना पाप कर के भी आज तक जीता बचा है, यह केवल मेराही अनुग्रह है।"

पिता की निन्दा सुन कर विमला का क्रोध सम्हल नहीं सका, लाल आंखें करके बोली,

"रे पामर, तूने मेरे पिता का सर्वनाश किया और अब उन्हीं का तिरस्कार करता है। भृत्य का वेश धारण कर के तू इस दुर्ग में आया और अब स्वामी बनने की इच्छा करता है। सेवक के संग विवाह करने में विमला कभी सम्मत नहीं होगी।"

शकु।—"तुम जानती हो कि यह बातें किस्से कह रही हो? तुम मुझ को अभी जानती नहीं तुमारा और तुमारे पिता का जीवन मरन मेरे हाथ मे है, जानती हो?"

विम।—"जानती हूं,—सतीश्चन्द्र के सेवक से बात चीत करती हूं, उस दिन जो एक निराश्रय ब्राह्मण का पुत्र उदर पोषणार्थं पिता के शरण में आया था उसी के संग बात करती हूं।"

विमला तो स्वभावतः मानिनी थी, पिता की निन्दा

सुनतेही उस के शरीर में आग लग गयी, आंखों से चिन-गारी निकलने लगी, बाल बिखर कर कपोलों पर से हो कर छाती पर्यन्त लटक रहे थे। उस अपरूप आकृति को देख कर शकुनी को कुछ विस्मय हुआ और कुछ काल चुप रहा; पश्चात पीछे विमला ने कुछ अपने क्रोध को सम्हाल कर धीरे से कहा,—

"शकुनी, मेरा रोष व्यर्थ है, मै जानती हूं कि मै सम्पूर्ण रूप तुमारे आधीन हूं। तुम को जो इतनी बातें कहा वह केवल क्रोध परवश हो कर कहा है, पिता की निन्दा से सुन नहीं सकी,—मेरे सामने पिता की निन्दा मत किया करो।"

शकु।—"मैं तुमारे पिता की निन्दा करने नहीं आया हूं; तुमारे पिता ने मेरे ऊपर जो दया किया है मै उस को भूल नहीं सकता। इस समय जिस काम के लिये आया हूं उस का क्या उत्तर है?"

विम।—"मै जीते जी तुम से विवाह न करूंगी।"

शकु।—"विमला, तुम तो बड़ी बुद्धिमान हो, मेरे हृदय में दया क्रोध, दुःख, नाना प्रकार की प्रवृति उत्तेजित कर २ के मुझ को मेरे मनोकामना से विरत करने की चेष्टा करती हो,—सो नहीं हो सकता। मैंने जिस बात पर कमर बांधी, फिर संसार में मुझ को कोई उस्से विरत न-

हीं कर सक्ता। तुम ने बालिका हो कर जो इतने दिन मुझ को विवाह करने से रोक रक्खा, इस से मैं तुमारी बुद्धि और दृढ़ प्रतिज्ञा की प्रशंसा करता हूं, किन्तु अब चल न-हीं सक्ता। आज ही तुम से विवाह करूंगा, अभीतक मैं ने तुम से कहा नहीं था सारी सामग्री एकत्र हो चुकी है। पुरोहित महाराज नीचे बैठे हैं। दिन में और सब विधि हो रहेगी रात को मेरा तुमारा विवाह कर देंगे। बिमला तुम बुद्धिमान हो, विचार करके देखो, अब निषेध करना व्यर्थ है। यदि बाधा करोगी तो बल प्रकाश करूंगा, फिर क्यों झूठ मूठ बखेड़ा करती हो, आवो, नीचे चलें।"

इन बातों को सुन कर बिमला एक बार ज्ञान शून्य हो गयी, मानो सांप सा डंस गया, उस की दृढ़ प्रतिज्ञा भी एक क्षण भूल गयी, प्राण हीन की भांति रोकर बोली, "हे, पिता इस विपत में सहायता करो।"

अक्।—"पिता तो तुमारे मुंगेर में हैं, यह प्रार्थना वृथा है।"

बिम।—"तो हे जगदीश्वर! तू मेरी सहायता कर।" यह कह कर बिमला हाथ जोड़ कर उन्मत्त की भांति आ-काश की ओर देखने लगी। सिर के बाल बदन मंडल पर से हो कर छाती पर्यन्त फैले थे, शरीर पर के बसन की कुछ सुध न थी; आंखें दोनों जल भरी अलौकिक ज्योति

प्रकाश करती थीं; कंठ प्रायः रुद्ध हो गया था, उन्मत्त की भांति ऊपर दृष्टि कर के बोली,—"हे जगतपिता परमेश्वर, मेरी सहायता कर।"

उस आकृति को देख कर शकुनी चुपचाप खड़ा रहा। एक टक लोचन से उस अपरूप सौन्दर्य राशि की ओर देख रहा था। विमला ने धीरे से उससे कहा,—

"शकुनी, टुक परमेश्वर को डरो, इस जगत में रह कर इतना पाप किया है, कुछ भी तो ईश्वर का डर करो मैं उस का पवित्र नाम ले कर कहती हूं कि तुम मेरे भाई के तुल्य हो, मैं तुम्हारी बहिन की तुल्य हूं, तुम मेरे पुत्र के समान हो और मैं तुम्हारी माता के स्थान पर हूं,— मुझ से विवाह करने की इच्छा न करना।"

ईश्वर का पवित्र नाम सुन कर किस पापी का हृदय नहीं दहलता?—शकुनी से फिर सहा न गया। बोला,—रे हतभागिन! रे निर्बुद्धि! देखूंगा, तेरी कौन सहायता करता है।" यह कह कर बलपूर्वक उसको खींच ले जाने का उपक्रम किया।

विमला ने उत्तर दिया,—

"रे पामर नराधम! इस विपत काल मे भगवान मेरी सहायता करेंगा।" यह कह कर शेष उपाय का अवलम्बन किया। तीन दिन पर्यन्त चिंता करके जिस उपाय को

दृढ़ किया था, उसी का अवलम्बन किया। अंचल के भीतर से एक खरतर छुरी निकाल लिया; बाल रवि की कीर्ण पड़ने से वह छुरी एक बेर बिजुली की भांति चमक उठी। शकुनी, डरपोंक तो थाही, आठ हाथ पीछे हट कर खड़ा हुआ।

विमला गम्भीर स्वर से बोली,—

"मैं प्रण करके कहती हूं, कि तुम अथवा और कोई मुझ से बलपूर्वक विवाह करने की चेष्टा करेगा,—इस मानस से इस कोठ्री के भीतर आवेगा तो मै इसी छुरी से अपना पेट फाड़ कर एक बारगीं इस कष्ट से विमुक्त हूंगी। अवला स्वभावतः अवला है, किन्तु देखूंगी कि मुझ को इस प्रण से कौन विरत करता है।"

शकुनी कुछ सोचने लगा, "इस सिंहिनी के हाथ से छुरी छीन लेना सहज काम नहीं है वरन छीनने के उद्योग करने से 'खून" हो जाने का भय है। अच्छा इस समय न सही,—सोते में विमला को वश करना श्रेयस्कर होगा, और फिर इस शुभ कार्य साधन में एक क्षण भी विलम्ब न करूंगा, आज बच गयी, कल नहीं बचेगी?" इसी प्रकार चिन्ता करते २ शकुनी चला गया।

पञ्चीसवां परिच्छेद ।

निर्व्वासन ।

And shall my life in one sad tenour run,
And end in sorrow as it first begun.

Pope.

यह तो स्थिर हुआ । विमला से आज नहीं तो कल विवाह हो जायगा किन्तु महाश्वेता का मुंह कैसे बन्द होगा? शकुनी ने उसका भी उपाय स्थिर किया था । सरला से भी विवाह करने को स्थिर प्रतिज्ञा किया था, क्योंकि फिर महाश्वेता महाकोपपरवश हो कर भी अपने दामाद को मार प्रतिहिंसा करके अपने एक मात्र कन्या को विधवा करने का साहस न करेगी ।

यह प्रस्ताव सुन कर महाश्वेता बहुत कुपित हुईं किन्तु दुर्बल को क्रोध करना भी अनुचित है । सरला बहुत डरी, किन्तु शकुनी जिस बात की प्रतिज्ञा करता था उस से उस को विरत करने की किसी की सामर्थ नहीं थी । विमला की परामर्श के अनुसार सरलाने कुछ दिन चाहा ; जिस पूर्णिमा तक इन्द्रनाथ से मिलने की आशा थी उसी पूर्णिमा पर्य्यन्त समय प्रार्थना की । शकुनी की इस में कुछ हानि नहीं थी, मन में विचार किया कि कितना ही मि-

चाहे क्यों न हो सिंह के हाथ से मेषशावक का बच जाना किसी प्रकार सम्भव नहीं है।

सन्ध्या हो गयी, विमला चोरी से सरला और महाश्वेता से विदा हो एक नौका पर चढ़ मुंगेर की ओर चल चली। दुर्गस्थित बहुत से कागज पत्र भी ले लिया, गर्गुनी का जीवन मरण उन्हीं कागजों पर निर्भर था।

बुद्धिमती विमला अपने को मुंगेर निवासी पुरुष कह कर पुरुष वेश धारण पूर्वक और २ यात्रियों के संग जा मिली॥

आकाश में अंधेरी छाये थी, आगे पीछे जहां तक दृष्टि जा सकी थी केवल जलही जल देख पड़ता था। झुंड के झुंड मेघों की परछाईं उस नील जल में देख पड़ती थी, मन्द पवन के प्रवाह से नदी का जल हिलकोरा मार रहा था, उसी तरंग और फेन राशि के ऊपर से नौका चली जाती थी। दोनों किनारों पर कहीं २ आम के वृक्ष अमराई में निशाचर श्रेणी की भांति निविड़ अंधकार में खड़े थे और वायु वेग से शाखा शब्द करते थे, कहीं जहां तक श्वेत बालू फैली थी आकाश में दो एक नक्षत्र दिखाई देते थे, मेघ राशि इधर उधर दौड़ते थे, काले २ बादल पश्चिम दिशा में एकट्ठा होने लगे;—नौका कल २ शब्द करती हुई चली जाती थी।

विमला नौका की पतवार की ओर बैठी चतुर्वेष्टित दुर्ग की ओर देखने लगी। देखते २ उस के हृदय में कितने प्रकार की चिन्ता उत्पन्न हुई कौन बता सक्ता है ? जिस दुर्ग में रही, स्नेहमयी माता का जहां देहान्त हुआ, जहां बाल्य अवस्था से यौवन को प्राप्त हुई, आज उस दुर्ग को परित्याग कर विमला संसार सागर में कूद पड़ी। इस सागर का किनारा है कि नहीं, विमला उस किनारे तक पहुंचेगी वा न पहुंचेगी, आश्रय हीन रमणी पिता को पावेगी वा न पावेगी,—क्या फिर यह दुर्ग देखने को मिलेगा ? ऐसी अनेक प्रकार की चिन्ता विमला के मन में होने लगी।

जिस किसी ने कभी अनेक दिन के लिये देश त्यागी होने के मानस से यात्रा किया है, नौका पर चढ़ कर तृष्णाकुल नयनों से अपनी मातृभूमि की ओर देखा है, देख २ कर अनेक प्रकार के सुख दुःख का स्मरण किया है, चिन्ता में मग्न हुआ है, पृथ्वी पर जो कुछ प्रिय और सुखकर है, उससे रो कर विदा हुआ है, आश्रय हीन प्रवासी हो कर अनंत संसार सागर में डूबा है; वही विमला की उस रात की घोर चिन्ता और घोर दुःख का अनुभव कर सक्ता है। अकेली नौका की पतवार की ओर बैठी उस घोर अंधकारमय रात्रि को उस चतुर्वेष्टित दुर्ग की ओर

रोना अनुचित, अवारित और अशान्तिप्रद है। कितनी निर्मल चरित्र अनाथ स्त्रियों का जीवन आजन्ममरण के-वल शोक दुःख से परिपूर्ण है, उस दुःख को कोई जानता नहीं और यदि जानता भी है तो मोचन नहीं करता, उसके समान कोई दूसरी दुःखिनी नहीं, केवल दीर्घायत नदी का जल और अनगिनित वृक्षों की हरहराहट तो निसन्देह साथ देती है। हा! असार जगत! तेरे में कितने पापी, पापपरायण धन से, मान से, गौरव से जीवन अतिवाहित करते हैं और लोक में प्रशंसा भाजन बनते हैं। यदि हमारा चलता तो इस जगत में जन्म ग्रहण न करते!

विमला के मुंगेर में निरापद पहुंच जाने से तो पाठक लोग विज्ञ हैं। जिस दिन पहुंची उसी दिन इन्द्रनाथ का प्राण बचाया, यह पहिले वर्णित हो चुका है।

छब्बीसवां परिच्छेद ।

अपरूपव्यूह ।

Yet though thick the shafts as snow,
Though charging knights like whirlwind go,
Though billmen ply their ghastly blow,
Unbroken was tho ring.
The stubborn spearman still made good,
Their dark impenetrable wood,
Each stepping where his comrade stood,
The moment that bo foll.

Scott.

शत्रु लोग अभी भी मुंगेर घेरे बैठे हैं, टोडर मल्ल अब भी अपूर्व युद्ध कौशल प्रकाश पूर्वक दुर्ग की रक्षा करते थे। इन्द्रनाथ दिन पर दिन ख्याति लाभ करते थे, जब कभी अवसर पाते थे अपने पंचशत अश्वारोहो को लेकर शत्रु को आक्रमण करते थे,—जहां कहीं शत्रु की थोड़ी २ सेना एकत्रित होने का सम्वाद पाते थे महाराज की आज्ञा ले कर तुरन्त उस स्थान पर पहुंच जाते और उन का विध्वंस करते और अधिक शत्रु नहीं आने पाते थे कि दुर्ग से प्रवेश करते थे। बार बार इस प्रकार पीड़ित हो कर शत्रु दल घबड़ा गये,—दुर्ग निवासी नव सेनापति का रण

कौशल, साहस और वीरत्व देख कर प्रशंसा करने लगे, दिन पर दिन उन के वीरत्व का यश फैलने लगा।

एक दिन सूर्यास्त के समय राजा टोडरमल शत्रु का शिविर देखने के लिये दुर्ग छोड़ कर अनुमान शाध कोस आगे निकल गये। शत्रु शिविर वहाँ से बहुत दूर था अतएव कोई शंका नहीं थी। विशेषतः महाराज वेश बदले थे और संग में पंचशत अश्वारोही भी थे। सवार इधर उधर फिरते थे और राजा एक टक शत्रु की ओर देख रहे थे। इतने में चार सवार जंगल से निकल पड़े और राजा पर आक्रमण किया। राजा के साथी पहुंचने नहीं पाये कि एक सवार ने खड्ग उठाया उसी समय निकटवर्ती अमराई से एक अश्वारोही तीर की तरह निकल कर आया और एक हाथ ऐसा मारा कि उस का मस्तक धड़ से जुदा हो गया। सब लोगों ने आंख फेर कर देखा और इन्द्रनाथ को पहिचान लिया, शत्रु सब वेगपूर्वक भागे।

इन्द्रनाथ की वीरता की प्रशंसा करने का समय नहीं मिला क्योंकि सब लोगों ने देखा कि दूर से धूर उड़ रही है और एक सवार राजा की ओर दौड़ा चला आता है,— घोड़ा इस वेग से दौड़ता था कि उस का पेट भूमि स्पर्श करता था। जब वह सवार समीप आया सभों ने उस को चीन्हा; वह महाराज का एक चर था। राजा के समीप

सुनते ही वहीं आन कर उपस्थित हुए। तब इन्द्रनाथ ने राजा से कहा,—

"महाराज! यदि आप की आज्ञा हो तो मैं अपनी अश्वारोही सेना को ले कर इन सवारों को कुछ काल तक रोक रक्खूं इतने में आप लोग स्वच्छन्द दुर्ग में पहुंच जांयगे।"

राजा ने गम्भीर स्वर से उत्तर किया,—

"रे अज्ञान बालक! युद्ध में उपयुक्त समय टोडरमल कभी भागने की चेष्टा नहीं करते। वृथा प्राण नष्ट करना युद्ध नहीं कहलाता वरन केवल नर हत्या है।"

इन्द्रनाथ ने फिर कहा,—

"महाराज! दिल्लीश्वर के पंचशत अश्वारोही विद्रोही के दो सहस्र सेना के तुल्य हैं, इसमें सन्देह नहीं।"

राजा ने रोष कर के उत्तर दिया,—

"सेनापति ने जब एक आज्ञा दे दिया उस पर फिर कुछ कहने से प्राण दंड होता है,—खैर इस बेर मैंने क्षमा किया।" क्षणेक पीछे मृदु स्वर से बोले, "इन्द्रनाथ! हमारे दुर्गस्थ सेनागण बहुत असन्तुष्ट और विद्रोहोन्मुख हैं केवल तुम्हारे अधीन पंचशत अश्वारोही विश्वास के योग्य हैं उन को मैं व्यर्थ युद्ध में नहीं भेज सक्ता।"

इसी प्रकार बातचीत करते २ सब लोग दुर्ग के समीप

पहुंच गये। वहां पहुंच कर क्या देखते हैं कि परिखा के ऊपर का सेतु भग्न हो गया है। सबको विस्मय और भय हुआ। जिस ने शत्रु को सम्वाद दिया था उसी ने सेतु तोड़ डाला था। अश्वारोही वहीं खड़े रहे क्योंकि दुर्ग के भीतर जाने का कोई उपाय नहीं था।

सबोंने चाहा कि तैर कर पार हो जांय। राजा टोडरमल ने शत्रु की ओर उंगली दिखला कर कहा कि जब तक हम लोग पार होंगे तब तक शत्रुदल पहुंच जायगा उस समय सब लोग मारे जायंगे। इस समय वीरता प्रकाश करना उचित है, सन्मुख हो के लड़ो ; अभी दूसरा काठका सेतु बना चाहिये, जब तक सेतु तयार नहीं होता तब तक युद्ध करना चाहिये। इन्द्रनाथ तुम सेनापति हो, इस बेर सेनापति का काम करो।"

"दास से जहांतक बन सकेगा त्रुटि न करेगा।" यह कह कर इन्द्रनाथ व्यूहनिर्माण में तत्पर हुए। मुहूर्त मात्र में व्यूह प्रस्तुत होगया। अर्धचन्द्राकार व्यूह निर्मित होकर पांच श्रेणी में विभक्त हुआ, प्रति श्रेणी में एक शत अश्वारोही थे। एक श्रेणी के पीछे दूसरी श्रेणी खड़ी हुई जिस में यदि एक श्रेणी लड़ने २ थक जाय तो दूसरी श्रेणी के लोग आगे आ खड़े हों। इसी प्रकार दूसरी के पीछे तीसरी श्रेणी और उस के पीछे चौथी श्रेणी के लड़ने से सब को

एक २ बेर विश्राम का भी समय मिलता जायगा। आगे से शत्रु सेना इस प्रकार रोक दी जायगी और पीछे परिखा रहने के कारण उस ओर से आक्रमण की कोई शंका न थी,— उसी परिखा के समीप कई लोग दो चार ताड़ और २ अनेक वृक्षों की डाली इत्यादि काट कर पुल बना रहे थे। बात की बात में शत्रु दल आन पहुंचा, इन्द्रनाथ का हृदय उत्साह से परिपूर्ण हो गया।

किन्तु दोनों दल आज जिस प्रकार से लड़ते थे वैसा कभी देखा नहीं गया था। व्यूह भेद करने ही से टोडरमल की हार होगी यह समझ कर रिपुदल बार बार बड़े पराक्रम के साथ आक्रमण करते थे, किन्तु वह व्यूह काहे को टूट सक्ता था। जैसे पहाड़ी पर टक्कर खा कर समुद्र का पानी पीछे हट जाता है उसी प्रकार शत्रु दल एक २ बेर आक्रमण करते थे और फिर पीछे हट जाते थे। यद्यपि विपक्षी की ओर सेना बहुत थी किन्तु उससे उन का कुछ उपकार नहीं होता था क्योंकि इन्द्रनाथ ने ऐसी व्यूह रचना की थी कि एक बेर एकायत से विशेष शत्रु सेना आक्रमण नहीं कर सक्ती थी, तथापि शत्रु लोग. सिंहनाद करके महा विक्रम प्रकाश करते थे और वीरता के मद से उन्मत्त होकर बार २ उसी व्यूह पर आक्रमण करते थे। इन्द्रनाथ के योद्धा भी साहस हीन नहीं थे। चार पांच महीना इ·

न्द्रनाथ के अधीन रह कर उन लोगों ने जो कुशलता सीखी थी आज एक भी कला प्रकाश करने से शेष नहीं रही विशेषतः टोडरमल के संग रहने से वे लोग और भी साहस और परम विक्रम प्रकाश पूर्वक लड़ते थे। इन्द्रनाथ तीर की भांति इधर उधर अश्वचालन पूर्वक प्रबंध करते फिरते थे। जहां २ देखते थे कि शत्रु विशेष पराक्रम प्रकाश करते हैं उसी स्थान पर विचित्र अस्त्र कौशल प्रकाश पूर्वक उन के दांत खट्टे करते थे और अपने सैनिकों का उत्साह बढ़ाते थे। बीच २ में ललकार२ कर कहते थे, "देखो आज महाराज टोडरमल स्वयं तुम लोगोंके संग रणक्षेत्र में प्रस्तुत हैं, महाराज की रक्षा का भार केवल तुम लोगों के हाथ में है, आज दिल्लीश्वर का नाम और गौरव प्रतिपालन नितान्त तुम्हीं लोगों के हाथ में है।" इस प्रकार की उत्साह जनक बातें सुन कर सेनागण परमोल्लास परिपूर्ण हो कर सिंहनाद करते थे, उस भीषण गर्जन से आकाश फटा पड़ता था और शत्रुदल का हृदय दहलता था।

तथापि दो सहस्र सेना के संग पांच सौ सेना का युद्ध अयोग्य है,—इन्द्रनाथ के योद्धा एक २ करके मरने लगे, शत्रुदल के सिपाही भी अनेक मारे गये किन्तु दो सहस्र में से यदि दो एक सौ मारे भी गये तो उस से विशेष हानि नहीं होती। यह देख कर राजा को कुछ चिन्ता

हुई और उन्हों ने सेतु निर्माण करने वालों को शीघ्र कार्य समाधान करने का आदेश किया और आप भी परम वीरत्व प्रकाश पूर्वक सेना का साहस बढ़ाने लगे। इन्द्रनाथ को एक बेर अपनी ओर बुला कर कहा,—

"इन्द्रनाथ तुमने अपनी सेना को ऐसी उत्तम रीति से शिक्षा दिया है कि आश्चर्य मालूम होता है किन्तु इतने सिपाहियों के मरने से मुझ को शंका होती है कि अन्त में परास्त न हो जायं।"

इन्द्रनाथ का मुंह लाल होगया,—बोले,—

"महाराज, मैंने अपनी सेना को सम्मुख लड़ कर मर जाने की शिक्षा दी है मुंह मोड़ने की शिक्षा नहीं दी है। जब तक एक भी योद्धा बचा रहेगा सम्मुख से हटेगा नहीं।"

राजा ने सन्तुष्ट हो कर वेग पूर्वक घोड़ा दौड़ाया और संपूर्ण सेना को पीछे करके अपना वीरत्व दिखलाने लगे। यह देख कर योद्धाओं को और भी साहस हुआ और द्विगुण बल से लड़ने लगे।

इन्द्रनाथ भी कूद कर आगे जा पड़े और ललकार कर बोले, "आज हमारे उत्सव का दिन है, हमको उचित है कि प्राण पर्यन्त अपने स्वामी की रक्षा करैं जिस में दिल्लीश्वर का नाम और गौरव रहै। वीरों को इस से बढ़ कर आनन्द का विषय और क्या है? हे वीर गण, आगे बढ़ो।"

धीरे २ सन्ध्या होने लगी परंतु वह अपूर्व व्यूह भंग नहीं हुआ। एक सिपाही मरता था तो उस के स्थान पर दूसरा आकर खड़ा होता था, वह मरता था तीसरा आकर उपस्थित होताथा। ज्यों २ सेना क्षीण होतीथी मानो उतनही उत्साह बढ़ता जाता था। इन्द्रनाथ ने यथार्थ ही कहा था कि मेरी सेना ने भागना नहीं सीखा है। सबों ने अपने मन में ठान ली कि राजा की रक्षा हमारे हाथ है और कोई पीछे नहीं देखता था। क्रमशः रात हो चली और अंधेरा छा गया, सम्पूर्ण रण क्षेत्र अंधकार मय हो गया अपना पराया कुछ ज्ञान नहीं पड़ता था, तथापि युद्ध का शेष नहीं हुआ, वह आश्चर्य व्यूह भग्न नहीं हुआ, तब शत्रु दल ने हताश हो कर अन्तिम आक्रमण किया, बड़े भारी गर्जन से जी छोड़ कर टूट पड़े। दो सहस्र सेना के एक स्वर हो कर गर्जन करने से चारों ओर एक कोस तक आतंक हो गया, आकाश के मेघ कांप उठे,—दो सहस्र अश्वों के पद चालन से सम्पूर्ण मेदिनी हिल गयी किन्तु उस शब्द और पद निक्षेप से इन्द्रनाथ का व्यूह कम्पित नहीं हुआ। इधर से उस्से भी विशेष गर्जन का शब्द हुआ और आक्रमणकारी फिर पीछे हटा दिए गये। युद्ध समाप्त नहीं हुआ और न व्यूह टूटा।

अन्त को सेतु बन गया, राजा परिखा के उस पार प-

हुंच गये। उन के निरापद पहुंच जाने का सम्वाद सुन कर इन्द्रनाथ की सेना एक बार और भी बड़े जोर से गर्जी वह गर्जन शत्रु दल में भी पहुंचा, तब उन लोगों ने जाना कि जिस हेतु से दो सहस्र सेना भेजी गयी थी वह कार्य समाधान नहीं हुआ। आक्रमणकारी भग्नाशा हो कर चुप चाप अपनी शिविर को लौट चले। जब राजा टोडरमल पुल पार हो रहे थे इन्द्रनाथ एक दृष्टि से उन की ओर दे-खते थे। जब देखा कि राजा निरापद दुर्ग के भीतर पहुंच गये अपने घोड़े से गिर पड़े। शत्रु के आघात से उन का वक्षस्थल भिन्न हो गया था, सारा शरीर लोहू लोहान हो रहा था। बल शून्य हो कर मूर्छित हो कर पृथ्वी पर गिर पड़े।

इन्द्रनाथ के बहुत से सिपाही भी पुल के पार पहुंच गये थे। शत्रु ने लौटते समय देखा कि इन्द्रनाथ घायल हो गये बड़ी प्रसन्नता पूर्वक उन को भूमि से उठा लिया और अपने शिविर में ले गये। इन्द्रनाथ बन्दी हो गये।

सत्ताईसवाँ परिच्छेद ।

बन्दी ।

The soldier's hope, the patriots zeal,
For ever dimmed, for ever crossed,
Oh ! who shall say what heroes feel,
When all but life and honor's lost.

The last sad hour of freedom's dream,
And valor's task moved slowly by,
While mute they watched till morning's beam,
Should rise and give them light to die.

There's yet a world where souls are free,
Where tyrants taint not nature's bliss,
If death that world's bright opening be,
Oh ! who wolud live a slave in this.

Moore.

जब राजा टोडरमल ने सुना कि इन्द्रनाथ घायल हो कर बन्दी हो गए उन को बड़ा दुःख और क्षोभ हुआ। कहने लगे, "आज निस्संदेह दिल्लीश्वर की पराजय हुई। इन्द्रनाथ, तुम हमारे लिए बंदी हुए? जब तुमारे पिता हम से अपने एक मात्र पुत्र को मांगेंगे उस समय हम क्या

कहेंगे ?" इन्द्रनाथ के लिए सब लोगों को बड़ा दुःख हुआ। गौरव और सम्पत के समय इन्द्रनाथ सब के साथ सदा परख करते थे। सामान्य सिपाही के संग भी वात्सल्य और दया करते थे, सब को अपने तुल्य समझते थे। अतएव आज इन्द्रनाथ की विपत में सब लोग उन के लिए दुःख करने लगे। दो एक राजा के विश्वास पात्र सिपाहियों ने कहा,— महाराज ! अब हम लोगों को दुर्ग के भीतर रहने की कोई आवश्यकता नहीं है, आप आज्ञा दें तो शत्रु पर आक्रमण किया जाय। ऐसा होने से अभी इन्द्रनाथ मिल सक्ते हैं,—अवश्य हम लोगों की जय होगी"।

राजा ने उत्तर दिया, "इन्द्रनाथ के जाने से मुझ को जो शोक हुआ है वह पुत्र विरह से भी नहीं हो सक्ता किन्तु अब युद्ध में जाने से तुमारे ऐसे जो दो चार विश्वासी सेनापति हैं वे भी जाते रहेंगे।"

सेना।— "क्यों' आप हार की शंका क्यों करते हैं ?"

राजा।—"यदि हमारे सिपाही लड़ें तो युद्ध लाभ करने- में कोई सन्देह नहीं, परंतु तुमारे ऐसे विश्वासी सेनापति कितने हैं ? मुझको सन्देह है कि युद्ध क्षेत्र मे जातेही ब- हुत से लोग शत्रु दल में मिल जायंगे ."

सेना।—"आप ऐसी शंका क्यों करते हैं ?"

राजा।—"हे सेनापति ! राजा टोडरमल कभी व्यर्थ शंका

नहीं करते। कल जब हम लोग बाहर गये थे हमारे पीछे सेतु किसने तोड़ डाला? कैसे शत्रु को हमारा गूढ़ विषय का सम्वाद मिला? हम लोग एक पहर तक लड़ते थे क्या कारण है कि कोई दुर्ग से निकल कर परिखा पार हो कर हमारे पास नहीं आया? हमारी सहायता करने को नहीं आया"?

सेना।—"महाराज, हमारे सिपाहियों को मालूम नहीं था नहीं तो अवश्य आप की सहायता करते, वे सब दुर्ग की दूसरी ओर थे, कल एक महोत्सव हुआ था उसी में सब के सब भिड़े थे।"

राजा।—"यह सच बात है कि बहुत से लोग उत्सव में मत्त थे अतएव उन को कुछ मालूम नहीं हुआ किन्तु मैं जानता हूं कि एक सेनापति तीस सहस्र अश्वारोही लिये परिखा के दूसरी ओर खड़ा था। उस दुष्ट ने छिपे छिपे जैसा कुछ विद्रोहाचरण किया है यदि वैसाही करता तो कल हमारे सामनेही विपक्ष दल में जा मिलता। सेनापति, ऐसेही सिपाही लेकर तुम युद्ध में जाने का उपदेश करते हो? ऐसा होने से तो स्वेच्छा पूर्वक शत्रु के हस्तगत होना होगा।"

इन्द्रनाथ के लिये सब ने तो दुःख प्रकाश कियाही किन्तु अभागिन विमला तो एक बार्गी अज्ञान ही हो गयी;

जिस दिन से विमला ने इन्द्रनाथ को नदी से उबारा था उस दिन से इन्द्रनाथ उस को भूलते न थे। सरला को भी इन्द्रनाथ बहुत चाहते थे, छ वर्ष से जिस बालिका को प्यार करते थे उस को भूल जाना सम्भव नहीं है। विशेषतः जब इन्द्रनाथ को सरला का पूर्व गौरव, आधुनिक दारिद्रता और निराश्रयता, सुन्दर वदन मंडल, सरल और कपट हीन अन्तःकरण, रुद्रपुरकुटीनिवास और अगाढ़ प्रेम का ध्यान आता था उस समय उन का लौह वर्म्माच्छादित हृदय भी विदीर्ण होता था, उस समय युद्ध सज्जित होने पर भी इन्द्रनाथ की आँखों से पानी वहा जाता था। युद्धक्षेत्र में भीषण परिश्रम प्रकाश करनेके पीछे रात्रि समय इन्द्रनाथ को उसी प्रशान्त वृक्षमय रुद्रपुर का स्वप्न होता था,—देखते थे कि मानो अभी सरल चित्त बालिका घाट से जल लिये चली आती है, अथवा वृक्ष के तले बैठी चरखा कात रही है, अथवा चाँदनी रात में बैठी सजल नयन उन के संग बात चीत कर रही है। हा! वह अमिय मय सम्भाषण—उस क्षण इन्द्रनाथ को स्वर्ग सुख लाभ होता था। किन्तु स्वप्न में जो सुख मिलता है क्या वह वास्तविक संसार में भी मिल सक्ता है?

यद्यपि सरला के प्रति इन्द्रनाथ का अविचलित प्रेम था तथापि जब से विमला देख पड़ी थी उस समय से

उन के हृदय में नवीन भाव उत्पन्न हुआ था। वह अपूर्व श्री सम्पन्न स्त्री कौन है? महेश्वर के मंदिर में उन्हें एक बेर भेंट हुई थी, उसने अपने को भिखारिन कह के परिचय दिया था। केवल दो ही चार बातों में इन्द्रनाथ के हृदय को आनंदित किया था। फिर सहसा एक दिन उसने अपरूप वेग धारण पूर्वक उन को मृत्यु से बचाया, पहिले प्रेमाकांक्षी बनी और फिर इस प्रेम को तिलांजुलि देने की प्रतिज्ञा की ऐसी यह विलक्षण कन्या कौन है? मनुष्य जान है कि देव कन्या? उज्ज्वल लावण्य के देखने से देव कन्या वा विद्याधरी बोध होती है,—ऐसी अपूर्व रूपराशि तो इन्द्रनाथ ने कभी देखाही नहीं था। सरला का चंचल सौन्दर्य उस की तुलना को नहीं पहुंच सक्ता था।

वहाँ अभागिनी दग्ध हृदया विमला को मुँगेर से अपने पिता के गृह पर क्या दशा थी? यद्यपि उस ने प्रेम की आशा को परित्याग कर दिया था किन्तु प्रेम की चिन्ता का परित्याग करना स्त्री का काम नहीं है। वह चिन्ता घुन की भांति भीतर धीरे २ चाल रही थी। जैसे निराश्रय सरला इन्द्रनाथ के प्रेम पाश में फँसी थी विमला की भी वही दशा हुई किन्तु बाहरी लक्षणों से उन दोनों के प्रेम में विभेद था। सरला वनाश्रम के शान्त वृक्षों के नीचे बैठ कर दिन रात रोया करती थी

और अवसर पा कर अमला और कमला से अपनी दुःख कहानी कह कर कालक्षेप करती थी किन्तु विमला के मुँह से कभी किसी ने प्रेम की बात नहीं सुनी, उस की आंखों से आंसू बहते कभी किसी ने देखा नहीं। यद्यपि चिन्ताग्नि उसके हृदय में भीतर २ जलती थी किन्तु वदन मंडल में उसका प्रतिबिम्ब भी नहीं दीखता था। काम काज में सर्वदा दत्त चित्त धीर और शान्त थी इसी प्रकार दिन के दिन, सप्ताह के सप्ताह, महीना का महीना बीता जाता था किन्तु विमला की आकृति में कोई विलक्षणता नहीं दिखाती थी। केवल चन्द्रानन का रुधिर तो निस्सन्देह सूखा जाता था ओ "जर्दी" छाए जाती थी और आंखों का माधुर्य लोप होता जाता था। इसके व्यतिरिक्त विमला के दास दासी भी कोई विशेष विलक्षणता नहीं देखते थे। विमला के पिता राजा टोडरमल कटक किसी विशेष काम को भेजे गये थे अतएव यह जो विलक्षणता उस के वदन में दिखायी देती थी दास दासियों ने उसी का कारण समझ रक्खा था।

इसी समय विमला ने एक दिन सुना कि इन्द्रनाथ घायल हो कर बन्दी हो गये हैं। यद्यपि स्त्री का हृदय बहुत कुछ सहन कर सक्ता है किन्तु सब का काम यह नहीं है। विमला को सुन कर विज्जुपात के समान चोट लगी,

तथापि उस ने किसी से कहा नहीं वरन अपने मन में रक्खे रही। दो पहर रात को चुप चाप वह सवंह वर्ष की कन्या अकेली अपने पिता के घर से बाहर निकल खड़ी हुई, असार संसार सागर में कूद पड़ी। दूसरे दिन भोर होते दास दासी किसी ने विमला को नहीं देखा। वह क्या हुई? अभागिनी क्या जीती है वा आत्महत्या द्वारा अपने इस असह्य दुःख से विमुक्त हो गयी?—यह बड़ी भारी चिन्ता हुई! हो क्यों न! जिस को इस काल में सुख नहीं, सुख की आशा भी नहीं, जिस को ईश्वर ने इस जगत में केवल दुःख सहन के निमित्त जीवन दान किया है, वह यदि इस जीवन को परित्याग करे,—वह यदि ऐसे जीवन को टथवत समझ कर स्वेच्छा पूर्वक मृत्यु की गोद में जा छिपै, तो उस को पापात्मा और कृतघ्न कौन कह सक्ता है, कौन उस पर दोषारोप कर सक्ता है?

इधर शत्रु लोग इन्द्रनाथ को अचेतनावस्था में बंदी बना कर अपने शिविर में ले गये। कुछ काल पीछे उन को चेत हुआ। उस समय उन्हों ने जो कुछ देखा यदि दूसरा कोई होता तो ऐसी अवस्था में ज्ञानहत हो जाता।

चारों ओर शत्रु लोग बैठे थे, सामने एक ऊंचे सिंहासन पर मासूमी काबुली बैठा था और उस के दोनों ओर बड़े २ "उमरा" और मन्त्री लोग बैठे थे। इन्द्रनाथ ने

उस स्थान पर टोडरमल के विद्रोही सेनापति तर्खन और हुमायूं को भी देखा। पीछे उन के एक शत सेना नंगी तरवार लिये खड़ी थी। इन्द्रनाथ यद्यपि इस समय हीन बल थे किन्तु वैरी उन का विश्वास नहीं करते थे,—घायल सिंह भी अपने मारने वाले पर झपट कर उस का नाश कर सक्ता है, इसी भय से उन की रक्षा कर रहे थे। इन्द्रनाथ के समीप विकट रूप जल्लाद कुठार हाथ में लिये खड़ा था और प्रभु की ओर निमेष शून्य लोचन से देखता था कि आज्ञा अथवा संकेत हो तो ऐसे भयङ्कर वैरी का सिरोच्छेदन करें। इन्द्रनाथ को कुछ भी डर नहीं मालूम हुआ। तीव्र दृष्टि से मासूमी की ओर निहारने लगे। मासूमी ने भी इन्द्रनाथ को चेतनावस्था में देख कर कहा—

"रे काफिर! तू वीर तो है किन्तु विद्रोह आचरण किया है और विद्रोहाचरण का दंड सिरोच्छेदन है!"

इन्द्रनाथ ने भीषण स्वर से उत्तर दिया, "योद्धा लोग मृत्यु की शंका नहीं करते तुमारी जो इच्छा हो करो, मैंने विद्रोहाचरण नहीं किया है।"

इन्द्रनाथ का उग्र भाव देख कर मासूमी क्रोधित नहीं हुआ और बोला,—"क्या टोडरमल के साथी हो कर बङ्ग देश के प्राचीन शासन कर्ता के संग युद्ध करना विद्रोहाचरण नहीं है?"

इन्द्रनाथ ने गर्व पूर्वक उत्तर किया, "मैंने वंग देश के अधिकारी वरन सम्पूर्ण भरतखंड के अधीश्वर महाराज अकबरशाह के लिये विद्रोही पठानों के संग युद्ध किया है।"

सब लोगों ने समझा कि इन्द्रनाथ अपने आप अपनी मृत्यु का आवाहन करते हैं, सब लोगों ने जाना कि अभी मासूमो सिर काट लेने की आज्ञा देगा किन्तु महानुभव बाहवी मासूमी हीनबल "काफिर" को इस प्रकार निर्भय देख कर कुपित नहीं हुआ वरन बहुत प्रसन्न हुआ। धीर भाव से बोला,—

"हे वीर! तूने मेरे संग जैसा आचरण किया है यदि दूसरा कोई होता तो तुझ को उचित दंड देता, मैंने तेरी उग्रता (गुस्ताखी) इस बेर क्षमा की, तेरी वीरता देख कर प्रसन्न हुआ, किन्तु सावधान हो फिर कभी वंग देश के प्राचीन राजवंश को विद्रोही न कहना। जिन लोगों ने चार सौ वर्ष पर्यन्त निरन्तर वंग देश में राज किया है, बख्तियार खिलजी के समय से जिन पठानों ने छत्रपति की भांति हिन्दुओं का शासन किया है, तेरी माता, तेरे परपिता जिस राजवंश के आधीन रहे हैं, क्या वह पठान लोग विद्रोही हैं, अथवा आधुनिक अन्यायचारी दिल्ली के अधीश्वर जिन्होंने धोखा दे कर हमारे प्राचीन साम्राज्य को हम से छीन लिया, वह विद्रोही हैं?"

इन्द्रनाथ ने पूर्ववत गर्व पूर्वक फिर उत्तर दिया,—

"हे पठान राज ! मैं यह नहीं कहता कि आप लोग बंग देश के पुरातन अधिपति नहीं हैं। मैं यह नहीं कहता कि मेरे पूर्व पुरुष आप लोगों के आधीन नहीं थे, किन्तु किसी की जय पराजय चिरस्थायी नहीं है, किसी का सुदिन और दुर्दिन चिरस्थायी नहीं है, उन्नति अवनति कालचक्र के संग परिवर्त्तित हुआ करती है। यदि ऐसा न होता, यदि प्राचीन राजाओं का शासन चिरस्थायी होता तो मुसलमान कहां रहते, तो आर्य देश निवासियों के राज्य का प्रचंड मारतंड अस्त क्यों होता, मैं आज दिल्लीश्वर के लिये युद्ध काहे को करता, अपने चिर स्मरणीय भारतवर्ष के एकाधिपति राजा रामचन्द्र, युधिष्ठिर इत्यादि के लिये न लड़ता ! किन्तु वह प्राचीन आर्य गौरव तो जाता रहा। हे पठान राज ! आप लोगों का गौरव भी घट चला है, विधाता के प्रबंध के विरुद्ध आचरण कर के क्यों इस सुन्दर शुद्ध बंगदेश को अपने रुधिर की नदी से प्लावित करते हो ?"

इन्द्रनाथ की निर्भय बातों को सुन कर सब चुप रहे और सबों को बड़ा विस्मय हुआ और एक टक लोचन से उस हीनबल घायल योद्धा की ओर देखते रहे। मासूमी के वीर अन्तः करण में बड़ी पीड़ा हुई थी। इन्द्रनाथ ने

जब उसके प्रति अपमान प्रकाश किया था तब वह ब-हुत विरक्त नहीं हुआ था किन्तु अपने जाति के गौरव के अस्त होने की बात सुन कर उस के हृदय में शूल सा बिध गया। जिस जाति के पुनरोन्नति की लिये वह रात दिन चिन्ता किया करता था, जिस पठान राज्य के स्थापन के लिये वह महा पराक्रमी दिल्लीश्वर के संग युद्ध करता था उस की निन्दा उससे सही नहीं गयी। उस के हृदय में कोप का संचार हुआ और शरीर का रुधिर उष्ण हो आया तथापि क्रोध न कर के उस ने गम्भीर स्वर से कहा, रे काफिर! तुम सब विधाता के प्रबंध के ऊपर निर्भर करके निश्चेष्ट हो जाते हो, साहसी पठान जीवन रहते निश्चेष्ट नहीं होते, अधीनता स्वीकार नहीं करते। अभी पठान गौरव का सूर्य अस्त नहीं होता है।"

इन्द्रनाथ ने फिर कहा "जिस दिन कटक के महायुद्ध में दाऊद पराजित हुआ उसी दिन से पठान के गौरव का सूर्य अस्त हुआ। जिस दिन सन्धि की बात चीत विस्मृत कर के दाऊद खां फिर युद्ध में प्रवृत्त हुआ उसी दिन से पठान लोगों का विद्रोह आचरण आरम्भ हुआ। दाऊदखां ने अपने रुधिर से उस विद्रोह का प्रायश्चित किया,—उसी दिन से जिन २ पठानो ने उस कर्म को अङ्गीकार किया वे सब उसी प्रकार उस का फल भोग करेंगे।"

मासूमी से फिर सहा न गया और आंखों से आग बरसने लगी। बड़े भयंकर स्वर से बोला,—

"रे काफिर! तेरा जीवन मरण मेरे हाथ में है। क्या तू जीने की लालसा नहीं रखता जो मेरे सन्मुख ऐसी बातें करता है?"

बलहीन इन्द्रनाथ ने फिर उसी प्रकार गर्व पूर्वक उत्तर दिया,—"मेरे जीवन के सुख का पात्र, माया का पात्र, प्रेम का पात्र अभी सब प्रस्तुत है,—किन्तु इन सब के रहते भी यदि मैं तुमारे हस्तगत हुआ हूं तो अब जीवन की लालसा नहीं रखता।"

मासूमी ने पूछा, "क्यों?"

इन्द्रनाथ ने कहा, "साहसी पुरुष शत्रु को क्षमा कर सक्ता है,—जिस को जय का निश्चय रहता है वह शत्रु को क्षमा कर सक्ता है। किन्तु जो आप डरपोंक है, जिन को अपने जय में संशय होता है वे कभी शत्रु को क्षमा नहीं कर सक्ते, मैं पठानों के प्रति क्षमा की आशा नहीं करता।"

देर तक बात चीत करते २ इन्द्रनाथ का बल हीन शरीर सुस्त होने लगा। विशेषतः अन्त में जो बात उन्होंने कहा उससे उन के वक्षस्थल से शोणित की धारा बहने लगी।

मासूमी ने क्रोधान्ध हो कर कहा, "रे पामर! वाक्य पटुता से क्षमा पाने की आशा न करना।"

इन्द्रनाथ ने फिर कहा, "मैं कोई और आशा नहीं करता,—केवल यह आशा तो निसन्देह करता हूं, कि जल्लाद शीघ्र अपना काम पूरा करेगा, मेरा शरीर अवसन्न होता जाता है, विलम्ब करने से यह नहीं जान पड़ेगा कि वीर लोग कैसे प्राण त्याग करते हैं।"

मासूमी ने कहा, "अच्छा वही होगा, जल्लाद, अब विलम्ब करना उचित नहीं।"

किन्तु जल्लाद को परिश्रम करना नहीं पड़ा। इन्द्रनाथ के क्षत (घावों) से क्रमशः रुधिर का प्रवाह विशेष हुआ, शरीर तुरन्त अवसन्न होगया और वे मूर्च्छित होकर पृथ्वी तल पर गिर पड़े।

मासूमी का हृदय स्वभाविक निठुर नहीं था। घायल, बल हीन, अचेतन योद्धा के शिरोच्छेदन की आज्ञा नहीं दिया। बोले, "इस को इस समय कारागार में ले जाव।"

इन्द्रनाथ कारागार में गये।

अट्ठाईसवां परिच्छेद ।

स्त्री का वीरत्व !

The mid-night passed, and to the massy door
A light step came,—it paused—it moved once more;
Slow turns the grating bolt and sullen key,—
'Tis as his heart foreboded—that fair she !
Whate'er her sins to him a guardian saint,
And beauteous still as hermit's hope can paint;

* * * *

" Why shouldst thou seek at outlaws' life, to spare
" And change the sentence I deserve to bear ? "

* * * *

" Why should I seek ?—Hath misery made thee blind,
" To the fond workings of a woman's mind ?
" And must I say ? Albeit may heart rebel
" With all that woman feels but should not tell—

* * * *

" Reply not, tell not now thy tale again,
" Thou lov'st another—and I love in vain;
" Though fond as mine her bosom, form more fair,
" I rush through peril which she would not dare."

Byron.

एक छोटे से अन्धकार मय कारागार में एक वीर पुरुष चटाई (तृण शय्या) पर पड़ा सो रहा है। एक छोटे से झरोखे से प्रात कालीन तरुण अरुण की कीर्ण उस कारागार को प्रकाश कर रही थी। उस कीर्ण शलाका में अनेक छोटे २ पतंग खेलते फिरते थे—कभी ऊपर जाते थे—कभी नीचे जाते थे—कभी उस सूर्यशलाका में दिखायी देते थे कभी अन्धेरे में जाते रहते थे। दो एक छोटे २ पक्षी भी आकर उसी झरोखे में बैठते थे और फिर उड़ जाते थे,—वे तो बन्दी नहीं थे,—पक्ष विस्तार पूर्वक एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर जा सक्ते हैं पृथ्वी और आकाश में भ्रमण कर सक्ते हैं। वीर पुरुष उसी तृण शय्या पर पड़ा एक दृष्टि उसी झरोखे की ओर देख रहा था—अन्धकारस्थित लता पल्लव जैसे बाहु विस्तार कर के आलोक की ओर धावमान होती है उसी प्रकार बन्दी के नयन युगल उसी झरोखे की ओर टंग रहे थे। वह बंधुआ क्या चिन्ता कररहा था ? उस पतंग क्रीड़ा और अपनी अवस्था को देखकर क्या किसी बातका खेद करता था ? पतंग गण एक दिन अथवा एक प्रहर जीवित रहते हैं—क्या बंधुआ भी उसी एक दिन अथवा एक प्रहर के निश्चिन्त जीवन की अभिलाषा करता है ? झरोखे पर जो बैठे हुए पक्षि गण जब पक्ष विस्तार करके उड़ जाते हैं क्या वह

बंधुया भी उन के संग २ मानस पक्षे बिस्तार पूर्वक सु-न्दर जगत संसार और नील आकाश मे पर्यटन करता है ?

इन्द्रनाथ को यह सब चिन्ता नही थी, उन के हृदय मे इस से भी बढ़ कर चिन्ताग्नि सुलग रही थी। उन के जीने की अब कोई आशा न थी,—यदि पठान लोग उन को उसी क्षण मार डालते तो कोई हानि नही थी किन्तु वे दुष्ट उन को कारावास मे रख कर चिन्ताग्नि मे जला-ते थे। इन्द्रनाथ वीर थे,—और वीरों को मृत्यु से भय नही होता। पर उनके मरने से किसी और दूसरे को क्लेश होगा, इसी चिन्ता मे वे व्याकुल हो रहे थे। पुण्यात्मा पिता नगेन्द्रनाथ इस बुढ़ापे मे अपने एक मात्र पुत्र के मृत्यु का सम्वाद सुन कर प्राण त्याग करेंगे। नगेन्द्रनाथ को और कोई नही था, न स्त्री थी, न कन्या थी, न दूसरा कोई पुत्र था, वह वृद्ध केवल इसी एक मात्र पुत्र का मुंह देख कर जीवन अतिवाहित करता था, उस पुत्र की नि-धन वार्त्ता सुन कर उस का घर सूना हो जायगा, हृदय भी शून्य हो जायगा, वृद्ध अवश्य प्राण त्याग करेगा। पिता की दशा का स्मरण करते २ इन्द्रनाथ की आंखों मे पानी भर आया, उस वीर ने आंख पोछ डाली।

और उस अज्ञान बालिका, वह प्रेम व्याकुल सरला, वह सहायहीन, सम्पति हीन, कुटी निवासिनी सरला, उस

की क्या दशा होगी ? आतवीं पूर्णमासी को उससे भेंट क-रने की प्रतिज्ञा कर आये थे,—अब वह पूर्णिमा बीत जा-यगी और उस बालिका की आंख वाट जोहते २ थक जा-यगी, उस का जीवन पुष्प कलिका की भाँति असमय सूख जायगा । इस प्रकार चिन्ता करते २, इन्द्रनाथ का सिर घू-मने लगा, आंखों के आगे अंधेरा हो गया,—बोले, "हे भगवान । तेरी जो इच्छा हो सो कर, विधना के जो मन में हो सो करे, मैं तो अब इस चिन्ता को सहन नहीं कर सका ।"

पठानों के बीच में ऐसा कोई नहीं था जो इन्द्रनाथ की पीड़ा के समय शुश्रूषा करै । कारागार के द्वार पर प-हरे वाले नंगी तरवार लिये दिनरात खड़े रहते थे । समस्त दिन बिता कर सन्ध्या समय एक ब्राह्मण खाद्य द्रव्य ले कर आया करता था,—भोजन करने के पीछे एक दासी आकर घर परिष्कार कर जाती थी, इन के सिवाय और कोई उस घर में आने नहीं पाता था । बीच २ कोई दुष्ट पठान इन्द्रनाथ को इस अवस्था में उपहास करने को आ जाया करता, अथवा यथार्थ साहसी उन्नत चरित्र सेना-पति, शत्रु पक्ष के वीर पुरुष की हीन अवस्था देख कर शोक प्रकाश करने को आ जाया करते थे ! शत्रु कृत कटूपहास से इन्द्रनाथ को कुछ विशेष दुख नहीं होता था—जिनसे

वास्तविक गुण है वे क्या कभी सामान्य लोगों के उपहास से कातर होते हैं ?—किन्तु यदि शत्रु होकर भी कोई इन्द्रनाथ के दुःख को देख कर दुखी होता तो इन्द्रनाथ का हृदय द्रवी भूत हो जाता था ।

पठानों के शिविर में इन्द्रनाथ का केवल एक बन्धु था, जो दासी नित्य प्रति इन्द्रनाथ के कारागार को परिष्कार करने आया करती थी वह उन के दुःख पर दया करती थी । वह स्त्री थी और स्त्री को मोगल पठान का कुछ ज्ञान नहीं था, न शत्रु मित्र का कुछ ज्ञान था, वह पराये दुःख की चिरकाल की दुःखिनी थी । हमारे सुख के समय, सम्पद के समय, आल्हाद के समय स्त्रियां कितना द्वेष करती हैं, कितना क्रोध करती हैं, कितना कलह करती हैं किन्तु जब इस जीवन आकाश में दुःख रूपी मेघ एकत्रित होने लगते हैं, जब आशा रूपी दीप बुझ जाता है और निराशा रूपी अँधकार छा जाता है, जब विशेष क्लेश अथवा शोक से हम लोग व्याकुल होते हैं, उसी समय स्त्री का यथार्थ गुण प्रकाश होता है । उस समय सिवाय उस के और कौन हमारा साथी होता है, कौन हमारी शुश्रूषा करता है, कौन हम को आशा प्रदान कर के शान्त करता है, विपद के समय कौन हम को आश्वासन देता है ? रोगी की शय्या पर बैठ कर दिन रात उस को जल

कौन देता है ? कौन उस को पथ्य देता है ? शोक के समय कौन हमारे रोने में संगी होकर हमारे दुःख का भागी होता है ? संसार में स्त्री रत्न के समान दूसरा रत्न नहीं है। स्वर्ग में और विशेष क्या है ?

इन्द्रनाथ के दुःख में वही दासी उन की समदुखिनी थी। यद्यपि वह नित्य चुप चाप आती थी और चुप चाप चली जाती थी किन्तु उस पुरुष का कष्ट देख कर उस के भी हृदय में कष्ट होता था। निर्दयी पठानों ने बंधुवे को बड़े क्लेश में रक्खा था, सोने के लिये पृथ्वी पर केवल एक चटाई पड़ी थी,—वह दासी इन्द्रनाथ के लिये प्रति दिन उस चटाई पर अपना वस्त्र बिछा जाया करती थी। पठान लोग इन्द्रनाथ को दिन में केवल एक बेर निकृष्ट भोजन देते थे, वह दासी अपना पेट काट कर उन के लिये सुन्दर २ भोजन बना कर लाया करती थी। इन्द्रनाथ को यह सब मालूम नहीं होता था। जब इन्द्रनाथ को पीड़ा होती थी पठानों की ओर से कोई चिकित्सक नियत नहीं होता था, किन्तु जब इन्द्रनाथ सो जाते अथवा पीड़ा के कारण अचेत हो जाते तो वह दासी अपने हाथ से उन के घावों को अच्छे प्रकार से धोकर अपने वस्त्र से पोंछती और फिर ज्यों का त्यों बांध देती थी। इस कारुणिक सेवा से इन्द्रनाथ का घाव अच्छा होता जाता था और दिन पर

दिन उन को आराम होने लगा। यद्यपि इन्द्रनाथ अपनी स्त्री चिन्ता में व्याकुल रहते थे किन्तु बीच बीच में दासी के दुःख का भी ध्यान होता था। अन्धकार के कारण उस को अच्छे प्रकार से देख नहीं सके थे, और जब कभी स्नेह वश होकर उससे कुछ कहने की चेष्टा करते थे तो वह पहरी की ओर संकेत करती थी और इन्द्रनाथ चुप हो जाते थे और फिर अपनी चिन्ता रूपी सागर में गोते खाने लगते थे।

पहरी लोग दासी की यह स्वाभाविक दया देख कर कभी २ उपहास करते थे और कहते थे, "क्यों बीबी, क्या हिन्दू तुमारे संग ब्याह करैगा?" इस का वह कुछ ख्याल नहीं करती थी, कभी उत्तर देती थी और कभी २ उनको कुछ "नशा पानी" के लिये दे दिया करती थी। इससे संपूर्ण पहरी गण उससे सन्तुष्ट रहते थे। रात भर खड़े २ पहरा देने के समय नव कलिका सदृश उसी सुन्दर दासी की बातों का ध्यान किया करते और सो जाने पर स्वप्न में "साकी और मयखाने" का सुख अनुभव करते थे।

आज रात को दासी ने दो पहरे वालों को सुरा पान के लिये कुछ देने को कहा था। रात एक पहर गयी थी, दासी सुरा ले कर उपस्थित हुई, देखते ही दोनों पहरे वाले मारे आनन्द के फूल गये। एक तो "मय" दूसरे "साकी"

पिलाने वाला,—उन पहरे वालों ने कभी किसी से दो एक "बयत" सुन रक्खा था, सुरा देवीके प्रभाव से उस्का स्मरण हो आया। क्रमशः वारुणी ने अपना प्रभाव दिखाना आरंभ किया, आधी रात होते २ दोनों ज्ञान हीन हो कर सो गये और उसी "साक़ी" और "प्याले" का स्वप्न देखने लगे। दासी ने कारागार में प्रवेश किया।

आधी रात हो गयी थी, आकाश में बादल घिरा था। एक तो नील आकाश दूसरे घनघोर घटा, दूर की वस्तु दिखाई नहीं देती थी। कुछ दूर पर गङ्गा नदी कलकल शब्द करती हुई बह रही थी, उस के उस पार वृक्षों की श्रेणी बँध रही थी। जगत में सन्नाटा छा रहा था—केवल वृक्षों के खोंटरों में बैठे उल्लू बीच२में बोल रहे थे या पहरे वाले "जागो जागो" कह कर पहरा दे रहे थे।—सारी पृथ्वी सो रही थी।

घर के भीतर चटाई पर वीर पुरुष सो रहा था। हाय, आज वह इच्छापुर का सुसज्जित पलंग क्या हुआ? पिता का स्नेह, सरला का प्रेम, राजा टोडरमल की वात्सल्यता, आज यह सब कौन काम आती है? इन्द्रनाथ उसी चटाई पर पड़े निश्चम सो रहे थे। संसार उन के पक्ष में अन्धकार में था, जीवन शोक परिपूर्ण, केवल एक निद्रा ही सुख प्रदायिनी थी।

इन्द्रनाथ का ललाट स्वच्छ था और मुंह पर मन्द मुसकान के चिन्ह दिखायी देते थे। इस दुःख सागर में क्या वे स्वप्न देख रहे हैं? हां, देखते हैं कि मानो आज सातवें महीने की पूर्णमासी है,—युद्ध में जयलाभ कर के रुद्रपुर में गये हैं—अपनी प्यारी सरला को बहुत दिन पर पा कर हृदय को शीतल कर रहे हैं—मानो उन की आंसू की धारा के प्रवाह से सरला का कृष्ण केश सिक्त हो रहा है और सरला के आनन्दाश्रु से उन का हृदय तर हो रहा है। रे निर्दयी विधाता! जिस अभागे को आगे पीछे कहीं कुछ नहीं है, संसार में कोई सुख नहीं है उस को क्यों ऐसे स्वप्न से विरत करता है,—क्यों नहीं उसको इस सुख नींद के रहते२ अनन्त निद्रा प्राप्त कराता?

मानो सरला के नयन जल से इन्द्रनाथ का हृदय और भी तर होने लगा, क्रमशः शीतल होने लगा। ठंढा मालूम होने से उनकी आंखें खुल गयीं तो क्या देखते हैं कि वास्तविक भादों की वर्षा की भांति आंसू की धारा प्रवाहित हो रही है,—दासी समीप बैठी आंसू को नहीं बहा रही है।

इन्द्रनाथ चौंक उठे। दासी का प्रेम और दुःख देख कर उन का हृदय द्रवीभूत हो आया और आप भी रोने लगे। बोले, "दासी! मुझ अभागे का दुःख देख कर तुम क्यों

दुःखी होती हो, मेरे लिये मत रोवो, मेरे जीने की कोई आशा नहीं है,—परमेश्वर तुम को सुख से रक्खे। तुम मेरे दुःख को भूल जाव;—मै अपने काराग्रास के एक मात्र बन्धु को जन्मान्तर में भी न भूलंगा।"

दासी ने कुछ उत्तर नहीं दिया,—चुपचाप रोती रही।

इन्द्रनाथ ने अपने को सम्हाल कर फिर कहा, "दासी! मेरे पास ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो तुम को पुरस्कार स्वरूप दे सकूं, जो है वह तुम को देता हूं।" यह कह कर अपनी भुजा पर से सोने की विजायठ उतार कर देने लगे। दासी ने ठंढी सांस ले कर उत्तर दिया,—

"इन्द्रनाथ! मै भिखारिणि तो हूं, किन्तु अर्थ भिक्षा नहीं करती।"

विमला की मधुर वाणी जिस ने एक बेर सुना था वह फिर कभी भूल नहीं सका था। इन्द्रनाथ चौंक उठे और बोले,—

"क्या, भिखारिणि! तुम ने मेरे लिये इतना कष्ट स-हन किया, दासो का वेश धारण किया,—शत्रु के शिविर में आन पहुंचो?"

विमला ने गम्भीर स्वर से कहा, "जगत में ऐसा कौन स्थान है जहां स्त्री अपनी प्रतिज्ञा पालन करने के लिये नहीं जा सक्ती?"

इन्द्रनाथ विस्मित होकर एकटक लोचन से विमला का मुंह देखने लगे।

विमला ने कहा, इन्द्रनाथ, मैंने आप के उद्धार के लिये एक उपाय सोच रक्खा है,—पहरे वाले अचेत हैं,—आप स्त्री का वेश धारण कर के चले जाइये, मार्ग में कोई पूछने वाला नहीं है और यदि कोई पूछे भी तो कह दीजियेगा कि मैं भिखारिणि नाम दासी हूं।"

इन्द्रनाथ ने उत्तर दिया, "मैं शत्रु के हाथ से, मृत्यु के हाथ से, स्त्री वेश धारण कर के नहीं भागूंगा,—यह पुरुषों का काम नहीं है।"

मानवती विमला का मुंह लाल हो गया, और क्रोध को सम्हाल कर बोली—सच है, स्त्री जाति आप की समझ में हीन और घृणा के योग्य है, आप नारी वेश काहे को धारण करेंगे ?

इन्द्रनाथ के मर्मस्थान में चोट लगी और कुछ लज्जित भी हुए, बोले, "भिखारिणि, मुझ को क्षमा करो, मेरा यह तात्पर्य नहीं है। स्त्री तो हमारे प्रेम की पात्र और जीवन की जीवन हैं। विशेषतः तुम ने एक दिन मेरा प्राण बचाया है और आज मेरी रक्षा के लिये दासी कर्म उठाया है, यदि मैं तुम्हारे उस उपकार को भूल जाऊं अथवा तुम्हारी अवज्ञा करूं, तो ईश्वर मुझ को दंड देगा।"

विमला ने धीर स्वर से कहा, "तब फिर स्त्री परिधान धारण करने में संकोच क्यों करते हैं ?"

इन्द्रनाथ ने उत्तर दिया,—

रमणी कोमल, परिमाशक्त और क्लेश सहने में असमर्थ होती हैं। यह सब गुण उन की सुन्दरता को बढ़ाती हैं किन्तु वीरों के पक्ष में अनुचित हैं,—इसी लिये वीरलोग स्त्री वेश धारण करने में संकोच करते हैं।"

विमला का मुंह फिर लाल हो गया,—बोली, इन्द्रनाथ ! आप स्त्री जाति को भली भांति जानते नहीं, स्त्री जाति की सहिष्णुता आपने कभी देखी नहीं। गत कई महीने से आप का यश मुंगेर में फैल रहा है। आपने बन्धु बान्धव को छोड़, आहार निद्रा को परित्याग केवल युद्ध कर्म म सहनशीलता दिखाया है, यह बात सारे बंगदेश में फैल गयी है। किन्तु मैं इसी अन्धकार रात्रि को साक्षी देकर कहती हूं कि इसी मुंगेर में एक स्त्री है जो आप से बढ़ कर दुःख, घोर यातना, और आप से विशेष सहिष्णुता के साथ जीवन वहन करती है,—घायल कबूतरी की भांति अपना दुःख आप सहती है। इन्द्रनाथ ! ईश्वर करे आप चिरंजीवी हों किन्तु विधि की करतूत कोई जानता नहीं। कल यदि आप सिंह पराक्रम प्रकाश पूर्वक विजय लक्ष्मी की गोद में शयन करें और निठुर पठान लोग यह समझ कर कि

में ने आप का उद्धार किया है मुझ को अग्नि में जला कर मार डालें; तो जान लीजियेगा कि आप जिस प्रकार निर्भय और उल्लास परिपूर्ण हृदय वीरोपयुक्त मरण स्वीकार करेंगे, यह अभागिनि उस्से भी बढ़ कर उल्लास के साथ मरने को सम्मत रहेगी और आप का उद्धार किया था यही समझ कर जीवन को सार्थक समझेगी। उस अग्निराशि को देख कर मेरे मस्तक का एक बाल भी भय के कारण कम्पित न होगा, आँखों में एक बिन्दु भी जल नहीं आवैगा। जब तक सम्पूर्ण शरीर जल न जाय वदन मंडल में उल्लास और सहिष्णुता की मन्द मुसकान के चिन्ह लक्षित होंगे,—पठान लोग स्त्री के शरीर को भस्म कर सक्ते हैं किन्तु उस के वीरत्व को जय नहीं कर सक्ते। इन्द्रनाथ! फिर यह न कहना कि नारि जाति में सहिष्णुता नहीं होती,—उन का तो जन्म इसी लिये हुआ है।

यह बात सुन कर इन्द्रनाथ चित्र की भांति "स्तब्ध" हो गये, अनिमेष लोचन से उस वीर स्त्री की ओर देखने लगे। उस की गम्भीर आकृति, उन्नत प्रशस्त ललाट, कुंचित भ्रू युगल, स्वच्छ नयनद्वय, रक्त वर्ण मुख मंडल और कम्पित हृदय को निहारने लगे। देर तक सन्नाटे में रहे,—किन्तु विमला अति मृदु स्वर से फिर कहने लगी, "इन्द्र-

नाथ आप मुझ को क्षमा करें, मैं प्रेम का परिचय देने नहीं आयी हूं, अपना अहंकार प्रकाश करने को भी नहीं आयी हूं, जो कुछ मैने कहा उस को भूल जाइये।"

इन्द्रनाथ ने उत्तर दिया, "भिखारिणि! आज मैने जो कुछ देखा है उस को जन्म भर न भूलूंगा,—अब मैं ऐसा कभी न कहूंगा कि स्त्रियों में वीरता नहीं होती,—अब जो कुछ कर्तव्य हो बतलाओ, मुझ को स्त्री का वेश धारण करना स्वीकृत है,—किन्तु मैं चला जाऊंगा तो तुमारा उद्धार कैसे होगा?

विमला ने कहा, "आप मेरे लिये चिन्ता न करें, मेरे बचने का भी उपाय है,—और यदि न भी हो तो विशेष हानि नहीं है। संसार मे ऐसा कोई नहीं है, जो इस भिखारिणि के लिये चिन्ता करेगा। जैसे अगाध सागर मे एक बिन्दु जल गिरने से लीन हो जाता है एक अभागिनि स्त्री का मरना भी इस अपार संसार मे उसी प्रकार है। भगवान करे जो मेरे स्थान पर आवे वह सुखी रहे।"

इन्द्रनाथ विमला के प्रति तीव्र दृष्टि से देखने लगे। अन्त मे धीर भाव से बोले, "भिखारिणि! तुमने मेरे उद्धार के लिये यत्न किया है मै तुमारा चिरबाधित रहूंगा किन्तु तुम को यहां छोड़ कर मैं कारागार से बाहर नहीं जाऊँगा, अपरोध न करना।"

इस बेर तो बिमला परास्त हुई। बहुतेरा निषेध किया और अनेक कारण दिखलाया किन्तु बीर पुरुष को प्रतिज्ञा से विचलित न कर सकी। इन्द्रनाथ का यही उत्तर था, "जिस ने एक बेर मुझ को प्राणदान दिया है उसको विपद् में छोड़ कर मैं अपना उद्धार नहीं चाहता;—ऐसे उद्धार और ऐसे जीवन से मरना ही अच्छा है।"

विमला परास्त हुई, देर तक चिन्ता करती रही, अंत को बोली,—"इन्द्रनाथ, आप को दुःख देना मेरा मानस नहीं है,—किन्तु दूसरा उपाय भी नहीं है,—मैं और एक कारण बतलाती हूं सुनिये और विचारिये कि अब आप अपना उद्धार चाहते हैं कि नहीं।"

इन्द्रनाथ सुनने लगे,—विमला अनेक क्षण पीछे बड़े कष्ट से बोली,—

"आप की मनोकांक्षिणी सरला चतुर्वेष्ठित दुर्ग में बन्द है। आगामि पुर्णिमा के अनन्तर जो पूर्णमासी आवेगी यदि तब तक आप उसका उद्धार नहीं करेंगे तो अकुनी बलात्कार उससे विवाह कर लेगा।"

इन्द्रनाथ को मानो वज्र सा मार गया। सारा शरीर कांपने लगा,—मस्तक में पसीना निकल आया, आँखों की पलक ऊपर टँग रहीं, नाड़ी सिथिल हो गयी! विमला ने उनको बहुत कुछ समझाया और ढाढ़स दिया। इन्द्रनाथ ने

चुप चाप सुना और हाथ पर गाल को रख कर सिर नीचा कर बैठे। माथा घूमने लगा, नयनों से अग्नि की वर्षा होने लगी और रह रह कर कलेजा धड़कने लगा।

अनेक क्षण पीछे इन्द्रनाथ ने सिर उठा कर कहा,—"भिखारिणि! तुमारी बात रहैगी, अब मैं भागूंगा, किन्तु एक बात की प्रतिज्ञा करो।"

विमला ने पूछा, किस बात की; "

इन्द्रनाथ ने कहा "यदि कल तुमारा उद्धार न हो सकै,—यदि निठुर पठान लोग तुमारे वध की आज्ञा दें तो एक दिन की समय प्रार्थना करना। मैं मालूमी को जानता हूं वह अबला की इस प्रार्थना को अस्वीकार न करैगा एक दिन में बहुत काम हो सक्ता है।"

विमला ने अंगीकार किया॥

फिर विमला ने इन्द्रनाथ को स्त्री वेश धारण करा दिया। इन्द्रनाथ इस अपने नवीन रूप को देख कर बहुत हंसे फिर विमला की ओर देखा,—और वह हंसी जाती रही। आखों में आंसू भर कर उसके दोनो हाथ अपने हाथों में लेकर बोले,—भिखारिणि! तुम ने दो बेर मेरी प्राण रक्षा की मैं तुमारे इस ऋण से उऋण नहीं हूं।" नयनों से आंसू की धारा चलने लगी, विमला के हाथ तर हो गये, इन्द्रनाथ शीघ्र बाहर चले गये। विमला उस समय अवाक हो गयी।

कलेजा धक धक करता था इन्द्रनाथ के मधुर स्वर से उस का कर्ण कुहर परिपूर्ण हो रहा था, इन्द्रनाथ के प्रीत सू- चक नयन जल से उसका हाथ तर हो रहा था,—विमला स्त्री तो थी ही एक क्षण में अपनी वीर प्रतिज्ञा को भूल गई। इन्द्रनाथ को लेकर सुखी हूंगी, यह आशा होने लगी। भूत, भविष्य, वर्तमान का ज्ञान जाता रहा, उस प्रेममय वीर पुरुष को मनमें अपना स्वामी कह के पुकार ने लगी। रे अभागिनि! तेरा स्वामी कौन है? सहसा अपने सुख स्वप्न से जाग उठी,—सिर घूमने लगा, इन्द्रनाथ की ओर देखा, तो वे नहीं थे,—हृदय शून्य हो गया,—मुर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी।

उनतीसवां परिच्छेद।

पुरुष का वीरत्व।

Heard ye the din of battle bray,
Lance to lance and horse to horse.

Grey.

इन्द्रनाथ को एकाएक अपने शिविर में देख कर उन के अधीनस्थ वीर बहुत विस्मित हुये और आनन्दित भी हुए

किन्तु इन्द्रनाथ ने गम्भीर स्वर से कहा "इस समय कुछ पूछ पाछ करने का अवसर नहीं है मेरे पांचों सौ घुड़स-वार और एक सहस्र पदाति सेना इसी क्षण युद्ध के लिये सज्जित हों,—अभी चल कर शत्रु के शिविर पर आक्रमण करेंगे।"

योद्धाओं को आश्चर्य तो हुआ, किन्तु कुछ बोले नहीं और तय्यारी करने लगे।

इन्द्रनाथ अवसर पा कर एक निकटवर्ती शिव के म-न्दिर में चले गये। कुछ देर पूजन कर के दण्डवत किया और बोले, "हे प्रभु, आज के ऐसा साहस का काम मैंने कभी नहीं किया, आज आप प्रसन्न हो कर मुझ को विजय दान दीजिये, विजय हो जाने पर यदि मेरा प्राण जाता भी रहै तो कुछ हानि नहीं,—पिता को कुशल पूर्वक र-खिये,—पिता के नाम के संग उन्हों ने एक नाम और भी लिया,—और एक व्यक्ति की कुशल प्रार्थना की। सब के सब चुपचाप स्कन्धावार से बाहर निकले।

आधी रात हो गयी थी, चन्द्रमा अस्त हो गये थे, चारों ओर निविड़ अन्धकार छाये था। आकाश में दो एक नक्षत्र दृष्टिगोचर होते थे और फिर बादल में छिप जाते थे, बीच २ में उल्लू का भयंकर शब्द और रात की सनस-नाहट सुनायी देती थी और निकटवर्ती गंगा कल्लोल

करती हुई बह रही थी। इसी घनघोर अंधेरी में इन्द्रनाथ की सेना चुपचाप शत्रु दल की ओर चली।

चलते २ दूर से एक ज्योति देख पड़ी, कभी प्रगट दिखायी देती थी और कभी छिप जाती थी। इन्द्रनाथ खड़े हो गये और एक दूत को आगे भेद लेने को भेजा। दूत ने जा कर देखा और फिर लौट आया और बोला, 'वैरी दल के चार सैनिक पहरा दे रहे, अंधेरे में कोई चला न जाय इस लिये अग्नि जला रक्खा है।" इन्द्रनाथ ने दस जन धन्वी को आज्ञा दिया कि आगे जा कर उनको मारो उन चारो में से कोई बचै न, और यदि कोई बच जायगा तो प्राणदण्ड दिया जायगा।" तीरअन्दाजों ने धीरे २ जा कर चारो को मार कर गिरा दिया। इन्द्रनाथ की सेना फिर आगे बढ़ी।

और भी दो तीन स्थानों पर इसी प्रकार पहरा मिला और सब पहरे वाले इसी भांति मारे गये। एक पहरे वाला भागा। इन्द्रनाथ को चिन्ता हुई, आज्ञा दिया कि 'घोड़े दौड़ा कर शीघ्र चलो जिस में वह पहुंचने न पावे और हम लोग पहुच जायं॥"

इन्द्रनाथ थोड़े ही काल में पठानों की सेना में पहुंच गये, सवार उन के सङ्ग साथ थे किन्तु पदचारी सेना पीछे पड़ गयी। परिखा के इस पार तीन चार सहस्र पठानों की सेना सज्जित थी उन से युद्ध होने लगा।

शत्रु दल सामने से तीन श्रेणी बांध कर खड़ा था। आगे की श्रेणी वाले सवारों का पथ रोकने के लिये सामने भाला खड़ा कर के बैठ गये, दूसरी श्रेणीवाले निहुर कर उसी प्रकार भाला खड़ा करके खड़े रहे और तीसरी श्रेणी वाले पूर्ण रूप से खड़े थे। उन को ठवनि देख कर बोध होता था कि यदि कोई पर्वत राशि भी आकर इनपर गिरे तो वे रोकने के लिये प्रस्तुत थे किन्तु इन्द्रनाथ की गति को वे लोग नहीं रोक सके।

इन्द्रनाथ ने आज्ञा दिया कि "यहां युद्ध करने की आवश्यकता नहीं है, आगे चलो।" सवारों ने किसी पर हाथ नहीं छोड़ा और घोड़ा दौड़ाया।

वर्षा काल की नदी जैसे पहाड़ पर से गिरती समय नीचे के वृक्ष, घर, ग्राम सब को बहाये लिये चली जाती है उसी प्रकार पांचो सौ सवार सेना की तीनो श्रेणी के ऊपर आ गये। फिर उन को कौन रोक सक्ता था, नदी की धारा को कोई फेर सक्ता है? तीनो श्रेणी भग्न हो कर छिन्न भिन्न हो गयीं, बहुतेरे घोड़ों के नीचे दब कर मर गये, बहुतेरों को डांक कर घोड़े उस पार निकल गये, कितने घोड़े और सवार भी भालों के घाव से मारे गये, किन्तु इन्द्रनाथ का काम निकल गया, वे उस श्रेणी के पार निकल गये। पठान सब इधर उधर भागे, पीछे से इन्द्रनाथ की पैदल पल्टन ने आकर उन के तम्बू इत्यादिक मे आग लगादी। उस समय इन्द्रनाथ ने एक बेर पीछे ताक कर

देखा तो शत्रु दल का चिन्ह भी नहीं रह गया था । यह अवस्था देख कर उन को कुछ दुःख हुआ । देखा कि पीछे भागने में तो कोई बाधा नहीं है । आगे शत्रु समूह झुंड के झुंड खड़े थे और परिखा की रक्षा कर रहे थे । मन में विचारा, "यहां तक तो हमारी अधिक हानि नहीं हुई है जान पड़ता है कि अश्वारोही और पदातिक मिल कर अनुमान एक सौ के मारे गये होंगे, किन्तु अब, एक सौ अनुमान और सहस्र परिखा के इस पार थे सब मारे गये। आगे बढ़ने से निश्चय विनाश होगा अब यहां से लौट चलना उचित है । किन्तु शिखारिणि! तूने दो बेर मेरी प्राण रक्षा की है, तुझे भी बचाऊंगा अथवा मर जाऊंगा ।" ज्योंही "लौट चलो" कह कर घोड़ा वेग पूर्वक हांका ।

किन्तु कुछ दूर आगे न बढ़ सके, परिखा के उस पार सेना सावधान थी, सवार लोग ऊपर नहीं चढ़ने पाये कि उन सभों ने आ कर रोक दिया, क्षण भर घन घोर युद्ध हुआ, घोड़ों से सवारों के नीचे गिरा दिये गये और बहुतेरे यम लोक को भी सिधारे । चतुर पठान लोग नीचे नहीं आये किन्तु फिर ऊपर जाकर पुनर्वार आक्रमण की प्रतीक्षा करने लगे ।

अश्वारोही गण सिर से पैर तक रुधिर और कीचड़ में भरे थे । धीरे २ फिर ऊपर चढ़े । इन्द्रनाथ ने मन में

स्थिर किया, "कि तो परिखा के पार हो जांयगे कि यहीं प्राण त्याग करेंगे।" दूसरी बेर अपूर्व साहस पूर्वक सवारों ने परिखा पार जाने की चेष्टा की, फिर घोर युद्ध हुआ और फिर भी वे लोग हटा दिये गये। कुछ हानि नहीं, तीसरी बार और भी साहस प्रकाश पूर्वक घोड़े दौड़े, इस बेर वीरों के मस्तक के ऊपर से हो कर पार निकल गये। इन्द्रनाथ ने ईश्वर का धन्यवाद किया। उस समय पांच सौ में से केवल तीन सौ योद्धा बच रहे थे, शेष दो सौ उस खांई में मारे गये।

इन्द्रनाथ के सवार और पैदल परिखा पार तो हो गये किन्तु सामने पठानों की कई सहस्र सेना खड़ी थी, उस समय इन्द्रनाथ कुछ सम्हले। इतने में युद्ध होने लगा। उस महा युद्ध का वर्णन कौन कर सक्ता है। चारों ओर अंधेरी छा रही थी, जल के इल बादल वायु वेग से आका-श में इधर से उधर फिर रहे थे, उससे भी भयंकर दल सेना का इन्द्रनाथ के चारों ओर फिर रहाथा। इधर वीर लोग यह तो जानते ही न थे कि भय किस को कहते हैं चारों ओर उमड़े फिरते थे और इन्द्रनाथ के रहते जय लाभ करने में सन्देह भी नहीं था। उन की वीरता का वर्णन करना बड़ा कठिन है। आंखों की पलक गिरती न थी, अस्त्र चालन में किसी का हाथ मुहूर्त मात्र भी रुकता न-

ही था, सहस्त्रों योद्धा चारों ओर से मारते थे और अना-यासही प्रतिहत हो कर गिर पड़ते थे किन्तु इन्द्रनाथ की सेना लहराते हुए समुद्र के बीच में पहाड़ और प्रचंड वायु वेग में लोहस्तम्भ की भांति अकड़ी हुई अचल और अटल खड़ी थी। एक मरा, दो मरे, दश मरे,—कुछ चिन्ता न-हीं,—चारो ओर "अल्लाह व अकबर" पुकार पुकार सेना आक्रमण करती थी,—कुछ चिन्ता नहीं,—धीरे २ शत्रु सेना बढ़ती जाती थी, वर्षाकाल के मेघ की भांति दल बांधती जाती थी और उसी प्रकार घोर शब्द भी करती थी,—तथापि कुछ चिन्ता नहीं वंग देशीय योद्धा निश्चंक चित्त युद्ध कर रहे थे। धन्य तेरा युद्ध कौशल धन्य तेरी वीरता !

राक्षसों की भांति अलौकिक बलिष्ठ और भयंकर शत्रु दल अपूर्व साहस के साथ आक्रमण करता था,—इधर कुछ भी चिन्ता न थी। पठान लोग असुरों की भांति ढेर के ढेर आ कर मारते थे और देव तुल्य अस्वारोही उन को मार गिराते थे। क्षण भर में इन्द्रनाथ के चारों ओर मुर्दों की दीवार खड़ी हो गयी किन्तु वीरों का साहस न्यून नहीं हुआ। धन्य पराक्रम !

एका एक सहस्त्र विद्युत्पात के समान शब्द हुआ, पठानों के तम्बू इत्यादिक में जो आग लगीथी बढते २ "मैग-

मीन" मे जा पहुंची और सैकड़ों मन बारूद एक दम से जल उठी। अष्ट हद्दन घर जिस मे बारूद रक्खी थी उड़ कर न जाने कहाँ चला गया, पृथ्वी कांप उठी, आकाश पाताल आलोक मय हो गया। उस अलौकिक प्रकाश और भयंकर शब्द के आगे सेना का कोलाहल मन्द हो गया, सहसा युद्ध भी थक्ह गया, सब लोग एक दृष्टि से उसी ओर देखने लगे। इसी समय अवसर पाय इन्द्रनाथ केवल पाँच विश्वासी अश्वारोही संग ले कर तीर के समान एक ओर घुस पड़े। पठान लोगों ने उन के रोंकने की चेष्टा न की वरन सन्मुखस्थ सहस्त्र मोगल पदातिक और सवारों के साथ लड़ते रहे।

इन्द्रनाथ एक सांस मे दौड़ कर कारागार के समीप पहुंचे और तीन चार सैनिकों ने भालों से मार२ कर लोहे के केवाड़ों को तोड डाला, इन्द्रनाथ झपट घर के भीतर घुस गये। "भिखारिणि"! "भिखारिणि" कर के तीन चार बेर पुकारा परन्तु वह तो वहां थी ही नहीं। इन्द्रनाथ का कलेजा धलकने लगा और सहसा शरीर शिथिल हो गया।

उसी क्षण स्मरण किया कि स्त्रियों के लिये दूसरा कारागार है और उसी ओर दौड़े। आशा और भय से हृदय आगे पीछे करता था और दम फूल रहा था और क-

लेजा इस वेग से धड़कता था कि अस्थि चर्म और लोहे की भिन्न भिन्न इत्यादि तोड़ कर बाहर निकल पड़ेगा।

स्त्री लोगों के कारागार का भी केवाड़ खुला, इन्द्रनाथ ने भीतर जाकर पुकारा, 'भिखारिणि!' 'ए भिखारिणि,'—कोई बोला नहीं, इन्द्रनाथ का मुंह सूख गया और सिर नीचे कर लिया, दोनो हाथों से आंख बन्दकर लिया, भृकुटी और सारे बदन मंडल की आकृति पलटगयी कुछ काल पीछे लम्बी सांस ले कर आकाश की ओर देख कर बोले, "हा बिधाता! क्या तेरे मन मे यही था, मेरा सारा परिश्रम निष्फल हुआ!"

सहसा एक बात मन मे आयी और नंगी तरवारि ले कर कारागार के रक्षक को जाकर पकड़ा और कहा, "जो स्त्री इन्द्रनाथ के कारागार में मिली थी वह क्या हुई? शीघ्र बताओ, नहीं तो सिर काट लेता हूं।"

रक्षक ने डर कर कहा, 'बधस्थली' मारे डर के उस का शरीर अवसन्न हो गया और पूरी बात मुंह से नहीं निकली।

उसी क्षण पांचों जन अश्वारोही तीर की भांति दौड़ बधस्थली में पहुंचे। इन्द्रनाथ ने देखा कि चारो ओर पठान सेना एकत्रित हो रही है। उन का कलेजा तो आगा और भय के मारे धड़क रहा था, जाकर देखा कि चारो

ओर निविड़ अन्धकार छाये है। एक वेर, दो वेर, तीन वेर "भिखारिणि!" भिखारिणि!" कर के पुकारा, किन्तु किसी ने कुछ उत्तर नहीं दिया। रोष और खेद से इन्द्रनाथ ज्ञान शून्य हुए, लोह मंडित हाथ से अपना माथा ठोका, एक वेर झनझंना शब्द हुआ और रुधिर की धारा बह निकली

फिर पुकारा, "भिखारिणि!" भिखारिणि!" किसी ने उत्तर नहीं दिया, एक ओर देखा तो अग्नि राशि निर्वाण प्राय: हो रही थी। क्या निठुर पठानों ने भिखारिणि को फूंक दिया? इन्द्रनाथ का हृदय कांप उठा और पृथ्वी पर गिर पड़े। आकाश की ओर देख कर एक लम्बी सांस लिया इतने में एक निकटवर्त्ती वृक्ष के खोंडरे से मानो वह दीर्घ निश्वास प्रति ध्वनित हुआ।

इन्द्रनाथ झट उठ खड़े हुए, जा कर उस खोंडरे को देखा पर उस में क्या था। केवल पवन एक २ बार झकोरा मार कर चल रहा था और दूर से समर शब्द कर्णगोचर होता था, चारों ओर निविड़ अन्धकार के बीच २ रह २ के अग्नि शिखा दिखाई देती थी,—इन्द्रनाथ हताश हो कर फिर भूमि पर गिर पड़े और उसी स्थान पर प्राण विसर्जन करने की प्रतिज्ञा किया,—भिखारिणि की दशा सोच कर एक वेर और लम्बी सांस लिया। फिर वह निश्वास प्रतिध्वनित हुआ। इन्द्रनाथ को विस्मय हुआ

और फिर चारों ओर देखने लगे, एकाएक मनुष्य की आकृति देख पड़ी,—राम राम ! क्या यही भिखारिणि है ?।

उस समय की भिखारिणि की दशा देख कर पाहन हृदय भी द्रवीभूत होता था। विमला खड़ी तो थी किन्तु सिर से पैर तक बंधी थी। हाथ दोनों पीछे फेर कर वृच में बाँध दिये गये थे, पैर भी उसी वृच में खींच कर बांध दिये गये थे, कमर और छाती की रस्सी इस प्रकार कस के बाँधी गयी थी कि शरीर कट कर रुधिर की धारा बह रही थी, केश भी उस के उसी वृच से बंधे थे, केवल छोटे छोटे बाल इधर उधर लटक रहे थे। मुंह के ऊपर एक वस्त्र बंधा था, बोलने का उपाय नहीं था। कमर में एक लँगोटी छोड़ कर सारा शरीर सिर से पैर तक नंगा था, केवल निविड़ केशराशि से तो निसन्देह कुछ पर्दा था। विमला स्वर्ग की ओर एक दृष्टि से देख रही थी, लौकिक वस्तु का उस को कुछ ध्यान नहीं था, परमेश्वर के पवित्र नाम का जप कर रही थी, न तो उस को कुछ क्लेश ज्ञान पड़ता था और न कुछ खेद था, न भय था, न लज्जा थी, केवल शान्ति उस के चेहरे पर विराज मान थी।

वह दशा देख कर इन्द्रनाथ के नयनों में शूल सा बेधने लगा। बोले, हे भगवान ! आज पठानों का दुःख देख कर मुझ को एक बेर दया हुई थी,—किन्तु वास्तविक के

इया के पात्र नहीं हैं, "नरक में भी उन का उपयुक्त दंड नहीं हो सक्ता।"

चुपचाप त्रिमला के शरीर की रस्सी सब काट डाला। थोड़ी देर में उस्को चेत हुआ,—उसने इन्द्रनाथ को चीन्हा और कहा, "इन्द्रनाथ आप क्यों मेरे उद्धार के लिये आये मेरे जीवन का कार्य हो चुका, मैं परमेश्वर की इच्छानुसार जान देने को प्रस्तुत हूं।" यह कह कर फिर अचेत हो गयी।

उस समय का उस का स्वर सुनकर इन्द्रनाथ को ठगी सी लग गयी, अति क्षीण, मृदु, पवित्र स्वर सुन कर इन्द्रनाथ को बड़ी वेदना हुई। धीरे २ बोले, "भिखारिणि! इस समय बात करने का अवसर नहीं है, अब यहां दूसरा कोई वस्त्र तो मिल नहीं सक्ता, जैसे मैंने एक बेर तुमारा परिधान धारण किया था आज तुम मेरा वस्त्र पहिनो।" यह कह कर इन्द्रनाथ अपने शरीर से लोहवर्म उतार कर उस को पहिनाने लगे। त्रिमला तो अचेत थी, यह ज्ञान नहीं था कि मैं नंगी हूं, अथवा कुछ पहिने हूं इन्द्रनाथ ने जो जैसे पहिनाया चुपचाप पहिन लिया।

सम्पूर्ण लोहवर्म त्रिमला को पहिना कर इन्द्रनाथ अपना साधारण वस्त्र जो पहिने थे उसी को पहिने हुए चले। उन की आज्ञा से एक सवार ने त्रिमला को अपने पीछे

घोड़े पर बैठा लिया और एक पेटी से उस को अपने कमर में बांध लिया जिस में कहीं गिर न जाय।—पांचो सवार जिधर युद्ध होता था उसी ओर दौड़े ! विमला को अभी भी ज्ञान नहीं था।

इन्द्रनाथ को यह नहीं सूझता था कि इस पठान सेना समुद्र को पार कर के कैसे पार जाऊंगा, केवल ईश्वर और अपने खड्ग के ऊपर विश्वास कर के उस सेना श्रेणी में घुसे। सेनापति को देख मोगल सेना ने एक बेर फिर जयध्वनि किया, उस जय जय कार का शब्द आकाश तक पहुंचा।

बारूद में जो आग लग गयी थी उसी से आज इन्द्रनाथ का प्राण बचा और पठानो का सर्वनाश हुआ। वह अग्नि बुझी नहीं वरन और भी बढ़ती गयी और क्रमशः सम्पूर्ण तम्बू इत्यादिक जो बचे बचाये थे जल कर भस्म हो गये। पठान लोग अचेत हो कर लड़ते थे इसी से एक सहस्र मोगल सेना अभी तक उन से लड़ती रही। अग्नि धीरे २ उस स्थान पर पहुंची जहां पठानों की स्त्रियां रहती थीं। यह देख कर वह सब बड़े व्याकुल हुए। इसी अवसर पर इन्द्रनाथ के पहुंच जाने से मोगल सेना ने जय ध्वनि किया था। पठानों ने भयातुर हो कर जाना कि मोगलों की और सेना आयी और सबों का पैर उठ गया और भागे।

इन्द्रनाथ ने आज्ञा दिया और मोगल सेना परिखा पार कर अपने शिविर की ओर चली। और जो आया,— इन्द्रनाथ ने सोचा, "यदि अभी भी शत्रु को मालूम हो जाय कि हम लोग केवल एक सहस्र सेना ले कर आये हैं तो फिर लौट आ कर युद्ध करके हमारा नाश करेंगे, अब विलम्ब करना न चाहिये।"

इन्द्रनाथ ने पठान शिविर के एक अंग को भेद कर के विमला का प्राण बचाया था उस में आठ दश सहस्र सेना थी। अब जो देखा तो सम्पूर्ण पठान सेना सोते से उठ कर लड़ने को चली आती है। अनुमान पचास सहस्र तरंग उससे भी अधिक पैदल और अश्वारोही पीछे से दौड़े चले आते थे। इन्द्रनाथ वेग पूर्वक दुर्ग की ओर भागे और सेना पहुंच ने नहीं पायी कि सुगेर में पहुंच गये।

सम्पूर्ण स्कन्धावार में जय जय कार होने लगा। इन्द्रनाथ कारागार से निकल आये,—निकल कर शत्रु पर आक्रमण किया। मोगलदल की एक सहस्र सेना ने पठानों की परिखा के पार उतर कर उनका सर्वनाश किया, इस ओर के केवल पांचसौ वीर मारे गये किन्तु पठानों के पांच सहस्र से अधिक नाश प्राप्त हुए और अनेक तम्बू बारूद और खाद्य द्रव्य जला दी गयीं। "यह सब सम्वाद सुन कर मोगल सेना फूली नहीं समाती थी। टोडरमल्ल ने स्नेह

पूर्वक इन्द्रनाथ को आलिंगन किया,—इस बात का अवसर किसी को नहीं मिला कि उन के उद्धार की बात पूछता।

केवल थोड़े से अश्वारोहियों के व्यतिरिक्त विमला को छाया और कोई नहीं जानता था। विमला ने रातही को अपना वस्त्र पहिन कर धीरे २ पिता के घर की ओर प्रस्थान किया।

तीसवां परिच्छेद।

पाप का प्रायश्चित्त।

Out ! Out ! brief candle !

Shakespeare.

उपरोक्त घटना के दो तीन दिन पीछे एक दिन सन्ध्या समय राजा टोडरमल व इन्द्रनाथ दोनों गढ़ दुर्ग के प्राचीर के ऊपर टहल रहे थे। दोनो जने परस्पर अनेक प्रकार की बात चीत करते थे। राजा ने कहा—

"तुम बालक हो कर ऐसा कहते हो, समर मे केवल साहस से काम नहीं चलता रणकौशल भी अवश्य चाहिये।"

इन्द्रनाथ ने उत्तर दिया, "किन्तु आप क्या समझते हैं, यदि हम लोग दुर्ग छोड़ कर सन्मुख हो कर लड़ैं, तो क्या परास्त हो जायगे !"

राजा।—"युद्ध करने से परास्त नहीं होंगे, परन्तु कितने लोग युद्ध करेंगे?"

इन्द्रनाथ विस्मित हुए। क्षणेक पीछे बोले, "महाराज! तब हम लोग कितने दिन इस प्रकार दुर्ग के भीतर पड़े रहेंगे!"

राजा।—"अब बहुत दिन नहीं है। वही जो एक डोंगी आती है, उस पर का चढ़ने वाला अभी हम लोगों को समझावेगा कि अब बहुत थोड़े ही दिनों में शत्रु का नाश होगा,—हम लोग बे युद्ध किये विजयी होंगे।"

इन्द्रनाथ और भी विस्मित हुए, बोले,—

"महाराज! आप का युद्धकौशल तो जगत विख्यात है, किन्तु यह मैं नहीं जानता था कि आप मन्त्र के बल से भविष्य की बातें भी बता सक्ते हैं।"

डोंगी समीप आयी और दीवान जी सतीशचन्द्र उसमें से बाहर आये। इन्द्रनाथ उन को देख कर और भी विस्मयापन्न हुए।

सतीशचन्द्र और राजा टोडरमल से जो २ बातें हुईं उन का सविस्तर वर्णन करना आवश्यक नहीं है। सारांश यह है कि राजा ने उन को निकटवर्ती अनेक बंग देशीय प्रधान हिन्दू जमींदारों के पास भेजा था। सतीशचन्द्र कार्य में दक्ष, बातचीत में चतुर और बुद्धिमान थे। उन्हों ने स-

म्पूर्ण जमीदारों को इधर उधर की अनेक बातें समझा कर पठानों से विरत कर के अपनी ओर मिला लिया था। पठान लोग चार सौ वर्ष से हिन्दुओं पर अत्याचार कर रहे हैं, किन्तु अकबरशाह हिन्दुओं के बन्धु हैं जितने अनुचित कर लिये जाते हैं सब उठा दिये हैं, हिन्दुओं के शास्त्र की आलोचना करते हैं, हिन्दू स्त्री के संग विवाह किया है, हिन्दुओं के आचार विचार के अनुसार चलते हैं और बंगदेश में जातिविभेद मिटाने के लिये हिन्दू सेनापति और शासनकरता प्रेरण किया है; विजय लक्ष्मी मानों उन की स्त्री स्वरूप हो रही है, कभी उन को छोड़ती नहीं; उन्हों ने दो बेर बंगदेश जय किया है और इस बेर भी अवश्य करेंगे; जय कर के विद्रोही जमीदारों की शान्ति करेंगे। किन्तु इस समय जो कोई उन की सहायता करैगा, क्षत्रियकुलतिलक कभी उस को भूलैंगे नहीं इत्यादि नाना प्रकार भय और लोभ दिखा कर सतीशचन्द्र ने अनेक जमीदारों को अपनी ओर कर लिया था। उन जमीदारों ने प्रतिज्ञा किया था कि अब पठान सेना को "रसद" इत्यादिक न देंगे। सुतरां अब पांच सात दिन में पठान सेना पराजित होगी इस में सन्देह नहीं।

राजा ने सतीशचन्द्र को बड़े सन्मान के साथ बिदा किया और इन्द्रनाथ की ओर देख कर कहा, "इन्द्रनाथ, मेरी बात सत्य है वा नहीं?"

इन्द्र।—"महाशय, मैंने आज हे जाना कि आप भविष्यद्वक्ता भी हैं। किन्तु,—"

राजा।—"किन्तु क्या ?"

इन्द्र।—"मैं किसी की निन्दा करना नहीं चाहता किन्तु एक बात कहता हूं क्षमा कीजियेगा,—सतीशचन्द्र की सम्पूर्ण बातों को आप सत्य न समझें।"

राजा।—"तुम क्या मुझ को राजनीति सिखाया चाहते हो ? क्या तुम मुझ से विशेष जानते हो कि किस का विश्वास करना चाहिये और किस का न करना चाहिये ?"

इन्द्र।—"महाराज! आप अप्रसन्न न हों, सम्भव है कि सतीशचन्द्र के विषय में आप जो कुछ जानते हैं मैं उससे विशेष जानता हूं।"

राजा।—"यह भी सम्भव है कि जितना तुम जानते हो उतना मैं भी जानता हूं,—यह भी सम्भव है कि इस समय तुमारे मन में जिस बात की चिन्ता हो रही है, मैं उस को जानता हूं।"

इन्द्रनाथ को आश्चर्य हुआ और चुप हो कर राजा का मुंह देखने लगे। राजा ने मुस्किरा कर कहा, "तुमारे मन में यही चिन्ता है न कि सतीशचन्द्र ने राजा समरसिंह की हत्या की है !"

इन्द्रनाथ के शरीर का रुधिर सूख गया, बोले, "महाराज ! क्षमा कीजिये, आप अन्तर्यामी हैं।"

राजा ने गम्भीर स्वर से कहा, "तात, ऐसा तुम को कहना उचित नहीं है, अन्तर्यामी केवल ईश्वर है ; किन्तु दिल्लीश्वर का सेनापति बिना भली भांति समझे बूझे किसी काम में प्रवृत्त नहीं होता। यही मैं तुम को दिखलाया चाहता था।

इन्द्रनाथ चुप रहे।

राजा ने फिर कहा,—

"मैं तुम से कहता हूं कि मैं केवल सतीशचन्द्र की बातों के भरोसे पर नहीं रहता, जैसे उन को भेजा था इसी प्रकार और भी दस व्यक्तियों को भेजा था। सभों ने आ कर ऐसी ही बातें कही हैं, इस से सन्देह नहीं रहा। इसी से सतीशचन्द्र की डोली देख कर मैंने पहिले से कह दिया कि उस की कामना सिद्ध हुई। इन्द्रनाथ ! मैं भविष्यद्वक्ता नहीं हूं और न अन्तर्यामी ही हूं, किन्तु इसी युद्ध व्यवसाय में मेरा केश स्वेत हो गया, ईश्वर की कृपा से कुछ थोड़ी भी युद्धविद्या सीख लिया है।"

इन्द्रनाथ ने कुछ काल चुप रह कर फिर पूछा,—

"महाराज ! मेरा एक और निवेदन है;—क्या आप ने समरसिंह के हत्याकारी को क्षमा कर दिया ?"

राजा ने गम्भीर स्वर से उत्तर दिया, "यदि कोई मेरे पुत्र को मार डालता तो मैं उस को क्षमा कर सक्ता किन्तु राजा समरसिंह के हत्याकारी को कदापि क्षमा नहीं कर सक्ता—वह अपराध क्षमा करने के योग्य नहीं है। समरसिंह! हा समरसिंह! मैंने तुमारे ऐसा वीर इस अपने जीवन में कहीं देखा नहीं। बाल्य काल में केवल एक जन को देखा था। उस का भी शरीर समरसिंह के ऐसा विशाल था, उस का भी पराक्रम समरसिंह के समान दुर्दमनीय था और वैसा ही तेज भी था 'हा! तिलकसिंह राठौर को अब काहे को देखूंगा!" टोडरमल क्षणेक मौन हो गये।

इन्द्र।—"क्या वे भी आप की नाईं सम्राट के आधीन किसी देश का शासन करते हैं?"

टोडरमल का मुंह लाल हो आया; उन्हों ने धीरे से कहा, "तिलकसिंह ने अकबरशाह की अधीनता स्वीकार नहीं की; शाह के विरुद्ध चित्तौरगढ़ की रक्षा में मारे गये।"

चुपचाप चिन्ता करते टोडरमल शिविर की ओर पहुंचे; इन्द्रनाथ गंगा तीर की ओर चले गये।

रात्रि समय सतीशचन्द्र गङ्गा के तीर पर टहल रहे थे। आज राजा ने उन का सन्मान किया था,—उन का हृदय मारे आनन्द के फूला नहीं समाता था,—मायाकारी आशा

उन के कान में कहती थी, "तुमने एक दिन पाप के दण्ड पाने का भय किया था—उस पाप को किसने जाना ? वह दण्ड कहां है ? दिन पर दिन तुमारे सन्मान की वृद्धि हो, पदवी बढ़े ।" सूर्यास्त होने तक माया इसी प्रकार उन के कान में सान्त्वना की बातें कहती रही,—किन्तु वह फिर कर उदय नहीं होने पाया कि सतीशचन्द्र ने जान लिया कि माया केवल मायाविनी है, कुट्टिनी है, मिथ्यावादिनी है।

आधी रात को चांदिनी के प्रकाश में सतीशचंद्र को एक भयङ्कर आकृति देख पड़ी । देखते २ वही आकृति कटारी हाथ में लिए उन की ओर दौड़ कर आई । सतीशचन्द्र ने चिल्ला कर भागने की चेष्टा की किन्तु वह श्रम उन का निष्फल हुआ, वह हत्याकारी खड्ग हाथ में लिये आही तो पहुंचा ।

उसी क्षण एक वृक्ष की आड़ में से एक सैनिक पुरुष ने आ कर सतीशचन्द्र को बचा लिया । दूर से नङ्गी तरवार लिए आया और एक ही हाथ में उस को मार कर पृथ्वी पर गिरा दिया ।

उस समय सतीशचन्द्र सैकड़ों धन्यवाद देते हुए उस पुरुष को आलिंगन करने को गये । सैनिक अपना दोनों हाथ छाती पर रक्खे धीरे २ पीछे हटा ।

सतीशचंद्र ने विस्मित होकर कहा, "आपने मेरा इतना उपकार किया है, अब कोप क्यों करते हैं ?"

सैनिक ने उत्तर दिया, "मैं तुमारा उपकार करने को नहीं आया हूं। चोरों को मारना हमारा धर्म है, उसी धर्म पालन के लिए आया था। वह चोर मारा गया,—अब मैं जाता हूं।"

सतीशचन्द्र ने और भी विस्मित हो कर कहा, "आप कौन हैं?—आप का उद्देश जो कुछ हो, पर आपने मुझ को प्राणदान दिया।"

सैनिक ने उत्तर दिया, "मैं राजा समरसिंह की विधवा और उन की अनाथ कन्या का बंधु हूं। चोर के हाथ से तुम को मैंने इसलिये बचाया है कि 'विचार' द्वारा तुमारा प्राणदण्ड हो, मेरा यही मानस है।"

यह कह कर इन्द्रनाथ तुरन्त चल दिए।

सतीशचन्द्र के ऊपर वज्र गिर पड़ा,—एकबार्गी चैतन्य शून्य हो गए, चारों ओर सिवाय अंधेरे के और कुछ दिखाई नहीं देता था, मारे डर के एक बेर आकाश की ओर दृष्टिपात किया। वह चोर जो घायल पड़ा था बोला,—

"सतीशचन्द्र अब तुमारी मौत बहुत समीप है।"

तब सतीशचन्द्र के मुंह से बात निकली,—बोले, "रे नराधम! भगवान ने मुझ को बचा लिया,—तेरे मारने से बहुत थोड़ा सा रक्त गया है।"

चोर ने कहा, "उसी थोड़े से रुधिर के बहने से तुमारा

प्राणनाथ होगा,—मेरी छुरी विष की बुझाई है। प्रभो; आप क्या मुझ को जानते नहीं?"

सतीशचन्द्र ने अपने पुराने सेवक को पहिचाना, बोले, "रे दुष्ट क्या तूने ऐसी ही प्रभु भक्ति सीखी थी?"

सेवक ने अति क्षीण स्वर से उत्तर दिया, "पा—पा—पापिष्ट शकुनी।"

सतीशचन्द्र मारे क्रोध के अधीर हो कर बोले, "मैं भी समझता था कि उसी दुष्ट का यह काम है। उससे बढ़ कर इस पृथ्वी पर दूसरा कोई पापी नहीं है,—नरक में भी न होगा। किन्तु तू तो मेरा पुराना सेवक है तूने भी मेरे मारने का संकल्प किया? सेवक ने और भी धीमे स्वर से कहा, "श—श—शकुनी ने बहुत कुछ लोभ दिया था,—लो—लोभ-पर-परवश हो कर ज्ञान नहीं रहता, लोभ वश मैं ने पाप किया, अपना प्राण दिया, प्र—प्र—प्रभु क्षमा कीजिये।"

और बात उस के मुंह से नहीं निकली—प्राण शरीर को छोड़ गया; दोनों ओंठ फरफराते २ शिथिल हो गये; आंखें निकल आईं। चांदनी रात में वह आकृति भयंकर बोध होने लगी, विशेषतः सतीशचन्द्र का हृदय तो वैसे ही डर के मारे कांप रहा था, वह दशा उन से देखी नहीं गई, मुर्दे की ओर देख कर बोले, "सेवक तुझ से भी बढ़ कर ज्ञानी लोग लोभ में पड़ कर अज्ञान हो गये हैं,—

तुझ से भी बढ़ कर लोगों ने पाप किया है,—तेरे ऐसे प्राण देने में भी विलम्ब नहीं। परमेश्वर तुझ को क्षमा करें,—मेरे पाप की क्षमा नहीं हो सकती।"

और होते २ राजा के पास सम्बाद आया कि सतीशचन्द्र मरण सेज पर पड़े हैं। राजा तुरंत दिवानजी के घर गये, इन्द्रनाथ भी साथ २ थे।

आ कर देखा कि सतीशचन्द्र पलंग पर पड़े हैं, चारों ओर भिषक लोग बैठे हैं, किन्तु विष ऐसा शरीर में बिंध गया था कि बचने की कोई आशा न थी। राजा ने इस अद्भुत घटना का कारण पूछा, निकटवर्ती सेवकों ने सब कुछ सुनाया। सतीशचन्द्र ने बड़े धीमे स्वर से कहा, "महाराज! मैं पापी हूं, मुझ को क्षमा कीजिये।"

उन का कातर स्वर सुन कर राजा से रहा नहीं गया, बोले, "राजा समरसिंह के हत्याकारी को क्षमा करने की मेरी कभी इच्छा न थी, किन्तु परमेश्वर की आज्ञा ऐसी है, जाव मैंने क्षमा किया, अब तुमारा जीवन क्षणकालीन है, गदाधर का नाम लेव, वह दया के सागर हैं, मरते मरते भी जो कोई उन का नाम लेता है, उस का जन्म भर का पाप छूट जाता है।"

सतीशचन्द्र ने जगत जनक का पवित्र नाम स्मरण किया, पापी के दोनों आंखों से आंसू की धारा बहने लगी। सब लोग सन्नाटे में खड़े थे।

कुछ काल पीछे सतीशचन्द्र ने फिर राजा की ओर देख कर कहा, "महाराज ! क्या आप को समरसिंह के मरने की सविस्तर कथा मालूम है ?"

राजा ने कहा, "हां, है।"

सतीशचन्द्र को विस्मय हुआ,—फिर चुप हो रहे।

कुछ देर के अनन्तर फिर बोले, "महाराज ! मुझ को कुछ और निवेदन करना है। मैं पापी तो हूं, किन्तु जन्मावधि पापी नहीं था, जवानी में मेरा जीवन पवित्र था, ऊंची मति थी, ऊंची आशय थी, और ऊंची प्रवृत्ति थी। लोभ में पड़ कर वह सब जाती रही, जीवन पाप मय हो गया और उसी के कारण आज प्राण भी जाता है—"

सतीशचन्द्र का स्वर क्रमशः क्षीण होता जाता था,—आगे मुंह से बात नहीं निकली। राजा ने दया कर के मुंह में एक बूंद दूध डाल दिया। सतीशचन्द्र का कण्ठ सूख गया था फिर कुछ तर हो गया और बोले, "मैं तो पापी हई हूं किन्तु मुझ से भी बढ़ कर पापी है। महाराज ! यथार्थ में मेरे सेवक शकुनी ने समरसिंह को बध किया,—उसी ने आज मेरा भी प्राण लिया।" फिर कण्ठा रूंधन हो गया।

मारे क्रोध के राजा की आंखें लाल हो गयीं। किन्तु उन्हों ने क्रोध सम्हाल कर धीरे २ कहा, "कुछ चिन्ता नहीं, जगदीश्वर पापी को दंड देगा।"

फिर कुछ काल तक सब चुपचाप रहे। सतीशचन्द्र की घड़ी समीप चली आती थी, कुछ कालान्तर बड़े क्षीण और कातर स्वर से बोले, "मेरी कन्या,—स्ने—स्नेहमयी धर्मपरायण कन्या" —फिर बोल बन्द हो गई।

राजा ने फिर एक बूंद दूध मुंह में डाल दिया। कुछ काल पीछे फिर बोलने लगे,—"हतभागिनी कन्या,—तुमारी मा—मा—माता नहीं है"—इसी समय एक निकटस्थ कोठरी में से स्त्री के हृदय विदारक रोने का शब्द सुन पड़ा। उसको सुन कर सतीशचन्द्र की आंखों में पानी भर आया। इसी क्षण विमला दौड़ कर पिता के समीप आई,—घर में आदमी खचाखच भरे थे, किन्तु ऐसो समय कौन स्त्री इस का विचार करती है?

इन्द्रनाथ यह नहीं जानते थे कि उन को पूर्व परिचित भिखारिणी सतीशचन्द्र की कन्या विमलाही है,—आज उस को देख कर बड़े विस्मयापन्न हुए।

सतीशचन्द्र ने कन्या को देख कर कहा, "आलिंगन।—तुम को परमेश्वर" —और आगे बात नहीं निकली।

बिमला ने पिता के गले से लग कर उन का चरण छूआ। ऐसा जान पड़ा कि उस के गले में लगते ही उन का उद्वेग दूर हो गया, मुख मंडल पर शान्ति छा गई, और आंखें दोनो सर्वदा के लिये बन्द हो गयीं।

विमला बारम्बार उसी मृतक शरीर के गले में लिपटती थी और चिल्ला २ कर रोती थी । आज उसके आंखों की ज्योति जाती रही, चारों दिशा अन्धकारमय हो गई, कलेजा फटने लगा, जगत संसार शून्य दिखाई देने लगा ।

यह दुःखकर घटना देख कर राजा ने अपनी आंखें छिपा लिया और घर से बाहर चले गये । इन्द्रनाथ तरवार पर भार दिये स्त्रियों की भांति बुलुक २ रोने लगे ।

*　*　*　*　*　*

इतिहास में लिखा है कि बंग देश के जमीदारों ने टोडरमल से मेल कर के विद्रोही पठानों को रसद देना बन्द कर दिया । इससे और और २ कारणों से विद्रोही सेना अन्त को मुंगेर छोड़ कर इधर उधर भाग गयी । उन के सेनापतियों में से अरब बहादुर पटना हस्तगत करने की इच्छा से वहां आ पहुंचा । किन्तु टोडरमल ने उसका आगमन जान कर उस नगर की रक्षा करने के लिये पहिले ही से बहुत सी सेना वहां भेज दिया था, अतएव उस का मनोर्थ सिद्ध नहीं हुआ । मासूमी काबुली नाम पठान वीर ने बिहार देश पर आक्रमण किया किन्तु टोडरमल ने स्वयं सादिक खां को संग ले कर वहां जा कर उस को परास्त किया । मासूमी ने मोगल लोगों की आधीनता

राजा।—"हां, तुमारे लिये किसी बात का इनकार नहीं है।"

इन्द्र।—"आप मकानों के पकड़ने के लिये चतुर्वेष्ठित दुर्ग में आदमी भेजते हैं,—आज्ञा कीजिये तो मैं ही इस काम को पूरा करूं।"

राजा।—"क्यों, क्या तुम दूसरे सिपाही का विश्वास नहीं करते?"

इन्द्र।—"नहीं महाराज, यह बात नहीं है, इसका दूसरा कारण है।" यह कह कर इन्द्रनाथ ने लज्जा से मुंह नीचे कर लिया।

राजा।—"मैं तो कोई बात तुम से छिपाता नहीं, तुम क्यों छिपाते हो?"

इन्द्रनाथ और भी लज्जित हुए और बोले, "जब मैं मुंगेर को आता था पूर्णिमा तिथि को एक मित्र से विदा हो कर आया और यह प्रतिज्ञा किया था कि आज से सातवीं पूर्णमासी को फिर आकर भेंट करूंगा। वह मिती पहुंच गयी, इसी लिये मैं आप से यह प्रार्थना करता हूं।"

राजा।—"किससे ऐसी प्रतिज्ञा किया है जो इतना व्याकुल हो रहे हो?"

इन्द्रनाथ और भी लज्जित हुए और सिर नीचे कर लिया। राजा ने हंस कर कहा, "अच्छा जाव किन्तु मैं

अकबरशाह को लिख भेजूंगा कि हमारा एक नवीन सेनापति विद्रोही हो गया,—दिल्लीश्वर का काम छोड़ कर अपने हृदयेश्वरी के काम मे प्रवृत्त हुआ है।"

इन्द्रनाथ ने आज्ञा पाते ही उसी दिन मुँगेर परित्याग किया और उसी अपने पूर्व परिचित नाविक की नौका पर चढ़ कर चले। इन्द्रनाथ के कहने के अनुसार वह अनाथ आश्रमहीन विमला भी एक दूसरी नौका पर चढ़ कर उन के संग २ चतुर्वेष्ठित दुर्ग की ओर चली।

अब वह विमला न थी। उसका वदन मंडल रक्तशून्य और पीत हो गया था, आंखें धुस गयीं थी तथापि उन की पुतली अलौकिक उज्ज्वलता पूर्वक धक २ जलती थी। उस का स्वर सुन कर इन्द्रनाथ चौंक उठे, श्मशान के निशि-पवायु की भांति भयंकर और निराशा प्रकाशक! विमला के हृदय की आशा भरोसा सब भस्म होगयीं,—इन्द्रनाथ के प्रति जो उस का अनुराग था वह भी उस सन्तापाग्नि की आहुति हुआ, हृदय महान दग्ध श्मशान हुआ। इस अपार संसार मे कितनी अभागिनीयों की सम्पूर्ण वस्तु इसी प्रकार एक २ कर के काल कवर होती है,—कितनी अभागिनियों का हृदय शून्य श्मशान की भांति हो जाता है, यह कौन बता सका है?"

एकतीसवां परिच्छेद ।

सातवीं पूर्णमासी ।

If after every tempest come such calms,
May the winds blow till they have wakened death.

Shakespeare.

आज पूर्णिमा तो है किन्तु आकाश को देख कर कौन कह सक्ता है कि आज पूर्णिमा है ? काले २ बादल से गगन मण्डल आच्छन्न है, सम्पूर्ण जगत में सघन अन्धेरी छाये है । कभीं २ बिजुली की चमक से कुछ २ प्रकाश हो जाता है और फिर वैसी ही अन्धेरी छा जाती है । आशा की क्षणकालीन ज्योति के लीन हो जाने पर अभागे के पक्ष में संसार जैसे पूर्वापेक्षा घोरतर अन्धकार मय बोध होता है, विद्युत प्रकाश के पीछे जगत उसी प्रकार अधिकतर अन्धकाराच्छन्न देख पड़ता था । मूसल धार वृष्टि होने से खेत, बाग, पथ, घाट, सब जलामय हो रहा था । वह वृष्टि क्रमशः हर क्षण में बढ़ती ही जाती थी । पवन रह २ के झकोरें लेता था, नदी में कितनी नौकावों के रस्से टूट गये और वे डूब रही थीं और कितनी भवँर में पड़ कर चक्कर खा रही थीं ।

छूट खा रही थीं; वृक्षों की शाखा, घरों के छप्पर पतंग के समान उड़ते थे। एक तो पवन का भयंकर शब्द दूसरे मेघ के घनघोर गर्जन से वसुमती कांप रही थी और जीव जन्तु मारे डर के जहां के तहां ठिठके पड़े थे।

ऐसे घोर आन्धी पानी में सरला अकेली चतुर्वेष्टित दुर्ग के अन्धकार मय उद्यान के बीच में एक सूनसान कुटी में बैठी थी, क्यों? क्या उस को डर नहीं लगता, इस अन्धकार और इस घोरतर मेघ गर्जन से उस को कुछ शंका नहीं होती?

नहीं, आज अब उस को कुछ भय नहीं है, आज उस को किसी का कुछ डर नहीं लगता। सुख की आशा, जीवन की आशा आज शेष हुई और जिस को आशा नहीं उस को भय काहे का? आकाश में जिस भयंकर दामिनि को देख कर आंख चमकती है, सरला स्थिर दृष्टि से उसी की ओर देख रही थी। उस पर जो भयंकर मेघ गर्जन होता था उस को भी स्थिर भाव से बैठी सुन रही थी। आज उस भयभीत बालिका का सम्पूर्ण भय जाता रहा क्योंकि अब उस को इस जीवन में किसी बात की आशा वा भरोसा तो था ही नहीं, आज सातवीं पूर्णिमा है, इन्द्रनाथ अभी तक आये नहीं, सरला के जीवन की अवधि आज पूरी हो गयी।

बाल्य अवस्था की बातों का स्मरण हुआ। राजा अमर सिंह की एक मात्र दुहिता इसी प्रशस्त दुर्ग के इसी उद्यान में फिरती थी, पिता की गोद में चढ़ कर वृक्षों के फल को तोड़ती थी, माता की गोदी में चढ़ कर एक दिन एक तितली पकड़ने को झुकी किंतु वह उड़ गयी और बालिका रोने लगी। उस समय उस अबोध को यह ज्ञान नहीं था कि जीवन की आशा और भरोसा भी इसी तितली की भांति एक २ कर के उड़ जांयगी।

उस के अनन्तर छ वर्ष रुद्रपुर में बीता। उस छोटे से ग्राम की एक दरिद्र कुटी में छ वर्ष बीत गया,—किन्तु क्या धन ही से सुख थोड़ही होता है और न दरिद्रता ही में दुःख है। सरला का वह छ वर्ष का दिन बड़े आनन्द से कटा। प्राणप्यारी अमला! क्या फिर देखने को मिलेगी। भोर होते उस के संग जल भरने को जाती थी, सन्ध्या को बैठ कर अनेक प्रकार कथोपकथन करती थी सुख के समय अमला के संग में रहने से वह सुख द्विगुण ज्ञान पड़ता था और दुःख के समय उसकी बातों से शान्ति होती थी। आज वह अमला कहां है? वह सोन चिरैया कहां उड़ गयी?

और इन्द्रनाथ! जिस की चिन्ता में छ महीने से सरला का हृदय विदीर्ण हो रहा है, जिस की आशा केवल सरला

इतने दिन तक जीती है, वह प्राणप्यारा इन्द्रनाथ कहां है? बाल्य अवस्था में इच्छामती के तीरपर जिस को गोद में बैठ कर सरला बातें सुना करती थी, बात सुनते २ उस के मुंह की ओर निहारने लगती थी; यौवन के आरम्भ में जिस के सुन्दर मुंह की बातें सदा भाती थीं, भाते २ फिर उसी मुह को ओर देख कर हृदय को शीतल करती थी हा! वह इन्द्रनाथ कहां हैं? तद्रपुर की कुटी के समीप उस चांदिनी रात में जो विदा हुए थे उसी दिन से जिन की चिन्ता रात दिन सरला के मन में लगी रहती थी वह इन्द्रनाथ कहां हैं? हाय! क्या वे भी उसी तितली की भांति उड़ गये, अनन्त संसार रूपी आकाश में भ्रमण करते हैं!

सरला सोचते २ ज्ञानहत होगयी। सिर घूमने लगा किन्तु आंखों से आंसू नहीं निकलता था। प्राण की यातना उस को हो रही थी वह कौन जान सक्ता है। जबतक जीवन में एक भी आशा रहती है तब तक वह जीवन सहने योग्य रहता है, किन्तु सरला की तो एक २ करके सब आशा जाती रही। संसार सूना हो गया पृथ्वी अन्धकार मय हो गयी। एक २ करके नाट्यशाला के सब दीप बुझ गये, सरला ने भी धीरे २ प्रस्थान करने का उद्योग किया।

"आज तो प्रीतम के आने का दिन है किन्तु वे अभी

न्धकार में कुछ दिखाई न दिया। दूसरा दिन होता तो सरला डर जाती, किन्तु आज तो उसका हृदय भय रहित हो रहा था,—अभागिनि का और क्या हो सकता है? जो हो ना हो सो हो।

इतने में एक बेर बिजुली चमकी। उस के प्रकाश द्वारा सरला ने क्या देखा? प्राणवल्लभ इन्द्रनाथ!

दोनों की चार आंखें हुईं और दोनों एक दूसरे से लिपट गये।

देर तक दोनों कुछ बोले नहीं, उस समय उनके हृदय में जो भाव उदय हुआ था, हम उस का वर्णन नहीं कर सकते, यदि किसी की सामर्थ्य हो अनुमान करले। उस समय उन को तीनो त्रिलोक का कुछ ध्यान नहीं था; वृष्टि वायु, मेघ गर्जन सब भूल गया; स्थान और काल भी भूल गया। केवल परस्पर आलिंगन सुख के अतिरिक्त उन को संसार में और कुछ ज्ञान नहीं पड़ता था।

इन्द्रनाथ बारम्बार सरला के अश्रुप्लावित कपोलों को चूमते थे, ललाट और मुख का चुम्बन करते थे। सरला चाशून्य हो कर वृक्ष के ऊपर लता की भांति इन्द्रनाथ के शरीर पर पड़ी थी।

उस के सुख का वर्णन करना असम्भव है। इस संसार में ऐसी सुख की घड़ी काहे को कभी आती है,—यदि एक

ऐर ऐसा आनन्द किसी को मिल जाय तो उस्से बढ़ कर दूसरा धन्य नहीं है। क्या बराबर थोड़को ऐसा सुख किसी को मिलता है।

कुछ काल के अनन्तर इन्द्रनाथ बोले, "सरला मैं तेरे लिये बड़ी चिन्ता किया करता था।"

सरला उत्तर नहीं दे सकी, उस की आंखों में पानी भर आया। उस अश्रुपूर्णलोचन को चूम कर इन्द्रनाथ ने फिर कहा, "सरला तुझको मेरा कभी ध्यान होता था वा नहीं?"

इस का सरला क्या उत्तर दे सक्ती थी? मन में विचार किया, ध्यान होता था वा नही ईश्वर ही जानता है। प्रगट कुछ कह नही सकी। फिर आंसू की धारा सारे मुह पर से हो कर बह चली।

बहुत कहने की बात नही थी, किन्तु उन दोनों के हृदय का यथार्थ भाव उसी परस्पर के अश्रु प्रवाह से बोध होता था।

फिर कुछ काल तक दोनों चुपचाप रहे। इन्द्रनाथ ने फिर कहा, 'सरला, छ महीना तुमारे बिन देखे कैसे कटा है उस के ध्यान करने से छाती फटती है। युद्ध के समय, विश्राम के समय, काम के समय, सोते बैठते तेरी विमल मूर्ति सर्वदा सामने खड़ी रहती थी।"

सरला ने उत्तर दिया,—"इन्द्रनाथ"—

आप से आप बोलबन्द हो गया। छः महीने के बाद इन्द्रनाथ से उसने पहिले पहिल यही बात कहा, एक शब्द कहतेही बोल बन्द हो गया! भीतर से बात उमड़ती थी ओठ काँपते थे किन्तु बाहर शब्द नहीं निकलते थे, लज्जा के मारे मुंह नीचा कर लिया।

उस अमिय मय पूर्व परिचित स्वर को सुन कर इन्द्रनाथ गद्गद हो गये। छः महीने के अनन्तर "इन्द्रनाथ" शब्द सरला के मुंह से सुन कर मारे आनन्द के इन्द्रनाथ की आंखों में आंसू भर आये। धीरे से उसका मुंह उठा कर मन माना चूमने लगे।

उस आनन्दमयी रजनी में कोई सोया नहीं। रात भर उसी कोठी में बैठे दोनों बातचीत करते रहे। सरला अपने अनेक दुःख की कहानी कहती थी—अपने माता की भग्नता, भरोसा की निराश्रिता, चिन्ताका दुःख, यही सब बातें कहती रही। वह राम कहानी क्या तमाम थोड़ोही होती थी,—जगत में जिस किसी को जो कोई अपने हृदय की स्पर्शमणि समझता है, उस के सामने जब मन का कपाट खुल जाता है और मन की बातें कहना आरम्भ होती हैं, फिर क्या वह बातें कभी तमाम होती हैं? इन्द्रनाथ भी उस अनन्त कहानी को सुनने लगे, सरला के उस भोले मुंह

को देखने लगे,—बारंबार देखते थे किन्तु तृप्ति नहीं होती थी।

प्रातःकाल इन्द्रनाथ ने अपनी नौका पर से कई सैनिकों को बुलवा भेजा और राजा टोडरमल की आज्ञानुसार शकुनी को बन्दी करके इच्छापुर की ओर चले। महाश्वेता, सरला और विमला एक दूसरी नौका पर चढ़ कर चलीं और सब लोग सन्ध्या होते २ इच्छापुर पहुंच गये। इन्द्रनाथ ने पिता की चरण वन्दना कर के उन की चिन्ता को दूर किया।

बत्तीसवाँ परिच्छेद।

पुनर्मिलन।

When wild war's deadly blast was blown,
And gentle peace returning
With many a sweet babe fatherless,
And many a widow mourning,
I left the lines and tented field,
Where long I'd been a lodger

Burns

बहुत दिन पीछे परस्पर भेंट होने से दोनों को जो किस आनन्द प्राप्त हुआ उस का वर्णन नहीं हो सक्ता। नगेन्द्र ने बहुत दिनों के पीछे अपने पुत्र को पा कर बड़ा सुखलाभ किया। बार बार आलिंगन करते थे और सहस्त्रों आशीर्वाद देते थे।

चन्द्रशेखर भी वनाश्रम से अपनी कन्याको लेकर इच्छा पुर चले आये। अमला भी अपने वृद्ध स्वामी को ले कर वहीं पहुची। राजा टोडरमल का शुभागमन सुन कर सबलोग चारो ओर से आकर वहीं एकत्रित हुए।

सब लोगों को विदित हो गया कि इन्द्रनाथ नगेन्द्र नाथ जमीदार का पुत्र है। सरला ने एक दिन चुपके से इ-न्द्रनाथसे कहा "मैं तुम को दरिद्र ब्राह्मण समझ कर तुम से प्रीत करती थी यदि जमीदार पुत्र जानती तो मारे डर के बात भी न कर सकती।"

इन्द्रनाथ ने हँसकर कहा, दोहाई धर्मकी। इस लिये पुरानी प्रीत को छोड़ न देना। "

सरला ने कहा, "कैसे छोड़ सकूंगी?" और तुरन्त वहां से भाग गयी।

अमला और भी लज्जित हुई। रुद्रपुर में इन्द्रनाथ को दरिद्र ब्राह्मण समझ कर अनेक प्रकार हास विलास करती थी और अब उन को जमीदार पुत्र जानकर बात नहीं कर

सकी थी, किन्तु इन्द्रनाथ कब के मानने वाले थे। एक दिन वे कुछ कहे सुने नवीनदास के घर में घुसगये। अमला ने उन को देख कर झट हाथ का घूंघट काढ लिया। इन्द्रनाथ ने हंस के कहा, "क्यों न हो, यही प्राचीन प्रीत का चिन्ह है?

अमला लज्जित तो हुई, किन्तु परिहास नही छोड़ा, घूंघट के भीतर से बोली,—

"आप पराये घर में घुस कर इसी प्रकार स्त्रियों से हंसी करते हैं, अच्छा अब मैं सरला से कहूंगी।"

इन्द्रनाथ ने कहा, अमला तुम मुझ को पराया समझती हो—मैं तुम को परायी नही समझता; इस पर अमला कुछ खिसीयानी सी हुई। घूंघट हटा कर बोली" इन्द्र— सुरेन्द्रनाथ क्षमा करो, अब मैं तुम से लज्जा न करूंगी। तभी से उनकी लज्जा छूट गयी।

महाश्वेता को राजा समरसिंह की विधवा जान कर लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। अब वह दरिद्र महाश्वेता नही थी, राजा टोडरमल की आज्ञानुसार राजा समरसिंह का विस्तीर्ण अधिकार अब उस विधवा को मिल गया अत- एवं अब महाश्वेता सुरेन्द्रनाथ से अपनी कन्या का विवाह कर देने में असम्मत न थी।

एक दिन अमला ने आ कर सरला से कहा, 'सखी, अब तो तू बड़ी आदमी हो गयी, अब मुझ को भूल जायगी?

सरला की आंखोंमें जल भर आया, और बोली, "सखी, मै इस जीवन मे तो तुम को भूल नहीं सक्ती।" अमला सरला की आंखों की आंसू पोंछ कर बोली, "जाव सखी, हंसी की बात नहीं समझती हो, मै तो केवल हंसती थी, इतनेही मे तू रोने लगी?" मै जानती हूं कि तू मुझ को न भूलेगी,—किन्तु इस पृथ्वी तल पर कितने ऐसे लोग हैं जो धनी हो जाने पर अपने प्राचीन बन्धुवों को नहीं भूलते। कुल स्त्रियां यदि सरलाही की सी होतीं और सब पुरुष यदि सुरेन्द्र नाथ के ऐसे होते तो यह संसार स्वर्ग न हो जाता!"

सब को सुखी देखकर विमला भी कुछ २ अपना दुख भूल गयी। सरला को वह बहुत चाहती थी, आज वह सरला विस्तीर्ण जमीदारी की अधिकारिणी हुई, नराधम शकुनी बन्दी हुआ, इन्ही सब बातों को सोच २ कर विमला की अन्तः पीड़ा कुछ २ भूल गयी।

चिन्ता शील कमला भी उन्ही सभों के संग रहती थी किन्तु वह सर्वदा पूर्ववत चिन्तासागर में डूबी रहती थी, उस की सार गर्भ बातों को सुन कर लोग बहुत प्रसन्न होते थे और एकाग्रचित्त होकर और सुनने की इच्छा रखते थे। इसी प्रकार चार जोड़ा स्त्री सुख से काल याप न करता थीं।

पाठक महाशय ! अब यह उपन्यास हमारा शेष होता है। यदि आप सन्तुष्ट नहीं हुए तो आइये हम आप यहीं से विदा हों। और यदि कुछ रस आप को मिला है तो हम को एक बात तो बतलाइये; हम इस बातको आप के कान में पूछेंगे और आप भी कान ही में उत्तर दीजिये जिस में और कोई न सुने। बताइये तो इन चारों स्त्रियों में से आप किस को चाहते हैं?

सुन्दरता में तो विमला सब से श्रेष्ठ है, उस उज्वल रूप राशि को देख कर बोध होता है कि कोई २ पाठक उसी को चाहेंगे। विशेष करके विमला तेजस्विनी, उन्नत चरित्रा, धर्मपरायण और वीर पुरुषों के योग्य वीरांगना है। पर नहीं! बहुत लोग उस्से अप्रसन्न हैं। बहुत लोग कहेंगे "हम को वीरांगना नहीं चाहिये, रूप नहीं चाहिये, तेज नहीं चाहिये, एक ही स्त्री के झगड़े में प्राण व्याकुल है, तिस पर तेज! अन्त में यही होगा कि दोनों खींचा खांची कर के प्राण ले लेंगी! नहीं बाबा! तुम अपनी स्त्री को रक्खो, नहीं किसी और को दे दो।"

अच्छा, कमला को लीजियेगा? वह सुन्दर है, शान्त है, और चिन्ता शील है! ग्रीष्म काल में दिनभर के अन्त में शीतल सन्ध्या जैसी शान्त और निस्तब्ध और सुख मय चिन्ता उत्तेजक होती है, कमला उसी प्रकार शान्त,

गम्भीर, सुखप्रदायिनी और चिन्ताशील है। हृदय में किसी प्रकार की चंचलता नहीं, आंखें दोनों बड़ी २ शान्त और कृष्णवर्ण, लट भी भंवरा की सी काली, प्रायः पीठ पर फैली रहती और कभी छाती पर्यन्त लटकी रहती है। हम तो समझते हैं कि ऐसी नायिका पाने को बहुत लोग इच्छा करेंगे। किन्तु कोई २ कहेंगे, 'न, रात दिन चिन्ता करने से तो काम नहीं चलसक्ता। गृहस्थ की स्त्री को घर का काम काज करना चाहिये, चिन्ता करने से कैसे चलेगा? तवा पर रोटी डाल कर यदि वह बैठ कर चिन्ता करने लगेगी तो नित्य जली ही रोटी खाने को मिलेगी। यह नहीं चल सक्ता। चन्द्रशेखर योगी हैं, उनको खाने पीने में कुछ उत्तम अधम का विचार नहीं है किन्तु हम को तो यदि अच्छा भोजन न मिलै तो मरण होजाय ऐसी स्त्री का हमारे यहां काम नहींहै और कहीं पूछो।

सरल स्वभाव और प्रेमाकुल सरला को हम जानते हैं बहुत लोग इच्छा करेंगे। हमारी तो इच्छा होती है, किन्तु पाठक महाशय कम सम्मत होतेहैं। वे कहेंगे, नहीं महाराज! ऐसी पिन २, भिन २, करने वाली स्त्री हम को न चाहिये। उपन्यास में पढ़ने के लिये तो बहुत अच्छी है, किन्तु घर के काम की नहीं। कुछ बुद्धि शुद्धि चाहिये, तनिक चतुर हो चालाक हो, कुछ हसती खेलती भी हो,

घाभी मान भी कर बैठे, ऐसी स्त्री घर के लिये चाहिये। नहीं तो मुंह फुलाये बैठी रहे, न कुछ मान करे, न चीन करे, ऐसी स्त्री लेकर क्या करना है ?"

जान पड़ता है कि चंचला, मखर नयना, चतुर, रूप लावण्य सम्पन्न ममता को पाठक महाशय अवश्य अंगीकार करेंगे। किन्तु केवटिन समझ कर कोई २ घृणा भी करेंगे और उस का बूढ़ा स्वामी भी तो जीता है। यदि विधवा होती तो विद्यासागर महाशय को बुला कर कोई यत्न किया भी जाता। बूढ़ा मरता ही नहीं।

यह तो कुछ नहीं हुआ। पाठक महाशय! आप के भाग्य ही में नहीं है! हमारा कुछ दोष नहीं। और उपन्यासों में एकही नायिका रखने की रीत है, हमने आप के चित्त विनोदार्थ चार २ एकट्ठी कीं। तब भी यदि आप को भाती नहीं तो हमारा क्या दोष है ? "यत्ने कृते-यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः ?"

तैंतीसवाँ परिच्छेद।

अपूर्व पुनर्मिलन।

She gazed—she reddened like a rose,
Sine pale like ony lily
She sank within my arms and cried,
"Art thou my ain dear willie ?"
" By Him who made yon, sun and sky,
By whom true love's regarded;
I am the man; and thus may still
True lovers be rewarded."

Burns.

सन्ध्या हो गयी। कमला अकेली टहलती २ पुष्कापुर से कुछ दूर निकल गयी। अकेली यमुना के तीर पर बैठी प्रकृति के निस्तब्ध भाव को देख रही थी। सघन वृक्ष शाला के बीच में झुंड के झुंड जुगनू घूमते फिरते थे। उसी को देख रही थी। नील वर्ण आकाश में कहीं २ दो एक खण्ड श्वेत बादल देख पड़ते थे, उसी को निहार रही थी। प्रशान्त नदी के ऊपर एक छोटी सी नौका चली जाती थी, उसी को देख रही थी। जल में दो एक तारा की परछांई देख पड़ती थी और दूरस्थ ग्राम के दो एक दीप भी दृष्टि गोचर होते थे।

कमला वास्तविक चिन्ता शील थी, किन्तु आज बोध होता था कि किसी विशेष चिन्ता में निमग्न थी। नदी के तीर पर बैठी नयनों को उठा कर आकाश की ओर देख रही थी। तारावों की शान्त ज्योति उसके नयन द्वय और वदन मण्डल पर पड़ती थी। बिखरे हुए केश पीठ पर लटक रहे थे, अथवा मुंह पर से हो कर छाती पर्यन्त लटक रहे थे। हथेली पर गाल रक्खे बैठी थी। ऐसी अवस्था में बैठी वह क्या चिन्ता करती है ?

कमला आज पूर्व कालीन बातों का स्मरण कर रही थी। स्वामी के मरने की बात तो उसको स्मरण नहीं थी, किन्तु उस के पीछे पीड़ा के समय जो स्वप्न देखा था उसी का स्मरण कर रही थी। स्वप्न में देखा था मानो नील आकाश में एक शुभ्र मेघ देख पड़ता है,—आंख उठा कर देखा तो यथार्थ ही आज नील आकाश में उसी प्रकार एक शुभ्रमेघ देख पड़ता था। स्वप्न में यह भी देखा था कि उसी मेघ के ऊपर एक देव मूर्ति हाथ में डांड़ा लिये मानो उसी मेघ को चला रही है। इस समय में उस मेघ के ऊपर तो कोई पुरुष नहीं देखा किन्तु नदी में उसी आकृति का एक पुरुष एक छोटी नौका चला रहा था। स्वप्न में उस पुरुष के गले में जनेऊ भी देखा था, उस नाव चलाने वाले के भी गले में यज्ञोपवीत पड़ा था। पाठक महाशय को स्मर्ण

होगा यह वही प्राचीन मुंगेर का नाविक है।

कमला बारम्बार उसी की ओर देखने लगी। हृदय में उसके अनेक प्रकार की चिन्ता होने लगी। "यह नाविक कौन है? क्या जात का ब्राह्मण है कर्म नाविक का करता है। मैंने जिस देव पुरुष को स्वप्न में देखा था, इसका शरीर भी तो वैसा ही है। वैसही डांड़ हाथ में लिये है! उसी प्रकार चिन्ता करता है! क्या उसी देव पुरुष ने इस लोक में आ कर जन्म ग्रहण किया है?"

इतने में चांदिनी निकल आयी। चन्द्रमा के प्रकाश में नाविक का मुख मण्डल स्पष्ट दिखायी देने लगा। देखते ही पूर्व स्मृति ने प्रबल सागर तरङ्ग की भांति उसके हृदय में प्रवेश किया। कमला कुछ काल तक उन्मत्त की भांति उसी के मुंह की ओर देखती रही। फिर चिल्ला कर "उपेन्द्रनाथ" का नाम ले कर मुर्छित हो कर पानी में गिर पड़ी।

नाविक भी देर तक उसी स्त्री की ओर देख रहा था, एकाएकी उसी चांदिनी के प्रकाश से उस ने उस का मुंह देख लिया था। देखने के साथ ही मानो उस के हृदय पर वज्र सा गिर पड़ा। उस को डूबते देख तुरन्त नौका पर से कूद पड़ा। "प्यारी कमला! क्या तुम से भेट हुई, अ-

यथा स्वप्न देख रहा हूं।" यह कह कर कमला के चेतन रहित शरीर को निकाल कर बाहर ले आया।

उसी चान्दिनी में, उस जन शून्य नदी के तीर, उस सघन वृक्षावली के समीप बैठ कर वह नाविक कमला को चैतन्य करने का यथा साध्य यत्न करने लगा। एकटक लोचन से उस मनोहर मुंह को देखने लगा। वही सुन्दर ललाट, वही निविड़ कृष्ण भ्रू युगल, वही स्नेह पूर्ण चिंता प्रकाशक नेत्र, वही सु मधुर अष्टद्वय, वही घूंघर वाले बाल, वही उन्नत हृदय और वही सुगठित बाहु युगल, सब वही थे।

उपेन्द्रनाथ देखते २ उन्मत्त प्राय हो कर बार बार उस मोहनी मूर्ति का चुम्बन करने लगा। जब कमला को फिर चेत हुआ आंख खोल कर देखा तो स्वामी के अंक में लगी थी, स्वामी के ओठ से ओठ और छाती से छाती चिपटी थी।

बहुत दिन विरह दुःख सहन करनेके अनन्तर प्रेमियों के परस्पर सम्मिलन से जो आनन्द होता है, उसका वर्णन लेखनी द्वारा नहीं हो सका। एक दूसरे का मुंह देख कर बहु कालीन प्रेम तृष्णा निवारण कर के वे दोनों जिस अपरिसीम सुख का भोग कर रहे थे उस का वर्णन कोई कैसे कर सका है। ऐसा सुख जगत में दुर्लभ है, स्वर्ग में भी अप्राप्य है।

क्षणेक पीछे उपेन्द्रनाथ ने कहा, "कुंज निवासिनि कमला ! मैं मरा तो नहीं किन्तु तेरे पुनर्मिलन की मुझ को कोई आशा न थी। ग्रामवासियों ने मुझ से कहा था कि तू पीड़ा के मारे मर गयी।"

कमला ने कहा, "प्राणेश्वर, ! मुझ को पीड़ा तो बहुत हुई थी किन्तु शीघ्र हो निस्तार भी हो गया।"

जिस समय मुझ को निस्तार हुआ मैं वनाश्रम में थी। किन्तु तुम जिस नौका पर गये थे लोगों ने मुझ से कहा कि वह नौका अन्धड़ में पड़ कर डूब गयी और उस पर के सब चढ़ने वाले मर गये।"

उपे।—सब तो मर गये किन्तु मेरे ऊपर ईश्वर ने दया की, इसी आज के पुनर्मिलन के लिए मैं जीता बच गया। प्राण तो बचा किन्तु और कुछ नहीं बचा, पहिनने को वस्त्र भी मेरे पास नहीं था। मांगते खाते कुछ दिन में मुंगेर पहुंचा। वहां पहुंच कर तेरा जो कुछ समाचार सुना, इससे तो मन में यही आया कि नौका स्थित और लोगों के संग यदि मैं भी मर गया होता तो अच्छा था।"

कम।—भगवान की कैसी विचित्र लीला है। बहुत दिन हुआ तुम एक बेर मूर्छित हो गए थे, जब चेत हुआ मुझ को पा कर मेरे संग विवाह किया। आज मैंने मूर्छा से चेतन हो कर तुम को पाया।"

इसी प्रकार बातचीत करते २ दोनों इच्छापुर की ओर चले। दोनों पूर्व कालीन बातें करते जाते थे उस बात के कहते कमला के बचपन की बात भी स्मरण होने लगी। जल्दी से चन्द्र शेखर के समीप जा कर कमला अपना मुंह उन की गोद में डाल रोदन करने लगी। चन्द्रशेखर को विस्मय हुआ और कुशल पूछने लगे। कमला ने कहा,—

"तात, यद्यपि इतने दिन से मैं आप को अपना पिता कहती थी और आप भी मेरे ऊपर कन्या से भी अधिक स्नेह करते थे किन्तु आज मुझ को मालूम हुआ कि यथार्थ में आपही मेरे जन्म दाता हैं।"

सब लोगों को बड़ा विस्मय हुआ। चन्द्रशेखर कमला को गोद में लेकर चूमने लगे और सविशेष बातें पूछने लगे।

कमला ने किसी प्रकार आंसू सम्हाल कर कहा, "आप ने कई बेर मुझ से कहा था कि मैंने अपनी कन्या को बचपने ही में गंगा में विसर्जन कर दिया,—वहां से उस को कौन ले गया, नहीं जानते हैं?

चन्द्र। "नव द्वीप निवासी हरीदास भट्टाचार्य।"

कमला। "अब कुछ सन्देह नहीं, मैं ही वह नवद्वीप निवासी हरिदास प्रतिपालित आप की कन्या हूं। वे भी

"हरीदास भट्टाचार्य ने मुझ को पाने के कुछ दिन पीछे सब परिवार को लेकर देश त्याग कर के काशी यात्रा की और वहीं रहने लगे। जब मेरा वयक्रम आठ नौ वर्ष का हुआ हरीदास को एक पुत्र उत्पन्न हुआ। इतने दिन कोई सन्तान न रहने के कारण मुझको, को यत्न पूर्वक अपनी कन्या के समान लालन पालन करते थे। वृद्धावस्था में पुत्र होने से उन के आनन्द की सीमा न थी।

"पुत्र जन्म के कई महीना पीछे हरीदास की गृहिणी को परलोक हुआ अतएव उस पुत्र के पालन पोषण का भार मेरे ही सिर पर पड़ा। मैं उस अपनी छोटी अवस्था में यथा शक्ति उस का भरण पोषण करती थी, दिन रात उस को कनियाँ लिए रहती थी, अपने भाई से बढ़ कर उसकी सेवा करती थी।

"उस बालक के प्रति मेरा इतना स्नेह देख कर पहिले तो हरीदास मुझ से बहुत संतुष्ट रहते किंतु ज्यों २ वह बड़ा होने लगा उन का प्रेम मेरी ओर से कम होने लगा। अंत को मैं दासी की भांति उन के घर में रहने लगी। घर की दासी छुड़ा दी गयी, सब काम मैं ही करने लगी; हरीदास और उन के पुत्र मुझ को दासी ही कह कर पुकारते भी थे।

"मुझ को बड़ा क्लेश होने लगा, अकेली बैठ कर रोया

सती। कभी मुझ को मारते न थे,—जब तक कोई ऐसी ही बात न हो गाली भी नहीं देते थे और यदि देते भी थे तो फिर उसी घड़ी हँस कर दो एक बात कह कर शांत हो जाते थे। यद्यपि यह सब दोष उन में थे तथापि मैं उन को अपना प्रभु समझ कर उन का आदर करती थी, मन में सोचती थी कि वे चाहे कैसेही क्यों न हों किन्तु मैं तो दासी ही न हूं जब तक खाने को पाऊंगी सेवा करूंगी।

"अभागिनि की आशा वृथा है। एक दिन सम्पूर्ण घर का काम काज कर मैं आधी रात को अपनी कोठड़ी में सोती थी, देखती क्या हूं,—हे पिता, आप के सामने मुझे सब बातें कहते लज्जा आती है,—संक्षेप यह कि उस पामर हरीदास ने मेरे सतीत्व नाश करने की इच्छा की; उस समय मुझ को मालूम हुआ कि वह क्यों इन दिनों दया प्रकाश करते थे और क्यों मुझ को देख कर हंसते थे। मैं चिन्ता कर घर से बाहर भागी। उसी दिन, उसी आधी रात को, तरुण अवस्था में सहायहीन मैं संसार रूपी सागर में कूद पड़ी।

"हे तात, आप ने जिस गंगासागर में मुझ को फेंका था उस का तो किनारा है, किन्तु मैं जिस संसार सागर में कूदी उस का किनारा नहीं। कुछ दिन, देश २ भीख मांग खाती थी, अन्त को—"

फल भोग चुका। तुमारे जाने के अनन्तर मेरा घर सूना हो गया, माता तुमारी उसी दुःख से मर गयी। हा अभागीनि। यदि आज जीती होती तो अपने दोनों अश्विनी कुमार के समान पुत्रों को गले मे लगा कर छाती ठंढी करती!" यह कह कर वह बूढ़ा फिर रोने लगा। उपेन्द्रनाथ को भी माता का स्मरण करके बड़ा शोक हुआ।

आज इच्छापुर नगर आनन्द मय हो गया। प्रजा रंजक जमीदार के ज्येष्ट पुत्र लौट आये, चन्द्रशेखर ने अपनी कन्या को फिर पाया, उस कन्या से उस ज्येष्ट पुत्र से विवाह हो गया था। वह आनन्द मय सम्बाद उसी रात को सारे इच्छापुर में फैल गया। चारो ओर घर २ मंगल वाद्य बजने लगा, पुरवासी लोग नगेन्द्रनाथ और उन के पुत्र के ऊपर फूल को वर्षा करने लगे,—पथ, घाट, चारो ओर आनन्द फैल गया और प्रभात होते २ यह सम्बाद नगेन्द्रनाथ की सारी जमीदारी भर मे फैल गया।

प्रातः काल सुरेन्द्रनाथ ने अपने बड़े भाई का चरण छू कर जल भरी आंखों से कहा, "हे तात, आप के अज्ञातवास में मैने आप का अनेक निरादर किया है, उस को क्षमा कीजिये,—मै जानता नही था।"

उपेन्द्रनाथ ने उत्तर दिया, "सुरेन्द्रनाथ। तुम को क्षमा प्रार्थना करने की कोई आवश्यकता नही है, इस संसार

विस्तृत चन्दवा टंगा था, जिस्में चारो ओर "ज़री" का काम बना था और किनारे २ मोतियों की झालर टकी थी। उस के ऊपर फूल-पत्तियों के तोरण और बन्दनवार भूमि पर्यन्त लटक रहे थे, स्वेत, रक्त, नील, पीत इत्यादि नाना प्रकार के सुगन्ध मय फूल मह मह कर रहे थे। उस चंदवे के नीचे रक्त वर्ण "काशानी" मखमल बिछा था जिस में अनेक प्रकार के 'कारचोबी' काम के सोने चांदी के फूल पत्ती और बेल बूटे बने थे जिस को देख कर सहसा लोगों को पैर रखने का साहस नहीं होता था। बीच में एक हाथी दांत का रत्न जड़ित मनोहर सिंहासन रक्खा था। उस के किनारे २ ममता और धन सम्पन्न योद्धा और जमींदार लोग बैठे थे। बीच २ में सुगंध मय फूलों के गुच्छे जहां तहां धरे थे और सेवक लोग उत्तमोत्तम वस्त्र पहिने कोई चामर, कोई चमर, कोई छत्र इत्यादि लिये स्थिर भाव से खड़े थे। जमींदार और योद्धा लोग भी यथा साध्य सुंदर और उत्तम से उत्तम वस्त्र पहिने थे।

उस सभा मंडप के तीन पार्श्व में पैदल पलटन भली भांति सजे सजाये खड़ी थी और उस के पीछे सवारों की श्रेणी नंगी तरवारि लिये मूर्ति मान थी,—उन के पीछे हाथियों का झुण्ड था। इस प्रकार तीन ओर तो सेना खड़ी थी और आगे राजा के आने के लिये एक विस्तीर्ण पथ बना

उसी प्रकार सेना थी। सेना हस्तगत अस्त्र शस्त्र के ऊपर तरुण अरुण की किर्णों के पड़ने से सहस्त्रों विद्युत प्रकाश की शोभा देख पड़ती थी। उसी प्रात कालीन शीतल पवन से अति उच्च पताका फरफरा रहा था। जो पताका कि सहस्त्रों बड़े बड़े रण क्षेत्रों मे गड़ा था आज इच्छापुर नगर मे फहरा रहा था। इस अनुपम शोभा को देख कर तन्नगर निवासियों का हृदय आनन्द से पूर्ण हो रहा था।

सूर्य देव के उदय होतेही राजा टोडरमल का दर्बार मे शुभागमन हुआ; उन का दर्शन पाते ही सभासदों ने "महाराज की जय हो" ऐसा कह कर आदर किया। उन के पीछे सैनिकों ने भी क्रमान्वय उसी प्रकार जय ध्वनि की। वह जयनाद चारो ओर गांवभर मे फैल गया। ऐसा ज्ञान पड़ा कि भयंकर मेघ गर्जन बार २ गिरि गुहा मे प्रति ध्वनित होता है।

राजा धीरे २ उस सभा मंडप की ओर चले आते थे। उन की दहिनी ओर नगेन्द्रनाथ और उपेन्द्रनाथ और बायीं ओर सुरेन्द्रनाथ सादिक खां और तरगन खां विराजमान थे। पीछे ओर बहुत से प्रसिद्ध २ जमीदार और सैनिक पुरुष चले आते थे। राजा धीरे २ आकर उसी सिंहासन पर विराजमान हुए।

उस समय एक साथ सहस्त्रों ढोल और डंका निशान आदि मारु बाजे बजने लगे;—उन का भयंकर शब्द चतुर्दिक गांव २ सुनाई देने लगा वरन आकाश में भी गूंजने लगा। घोड़े हाथी सब कूदने फांदने लगे, सैनिकों को रण क्षेत्र का स्मरण हो आया और झना झन तरवारि म्यान से निकल पड़ीं।

वह बाजा बन्द हुआ और अनेक प्रकार का दर्शन प्रदर्शित होने लगा कि जिस के वर्णन करने में लेखनी असमर्थ है। आज दिल्लीश्वर के प्रधान सेनापति और प्रतिनिधि सम्पूर्ण बंग देश जीत कर इच्छापुर में शोभायमान हुए हैं,—आज कई सौ वर्ष के अनन्तर एक आर्य्य देश निवासी राजा बंगदेश शासन कर ने को आये हैं अतएवं उस देश में जिस २ स्थान पर जो वस्तु आश्चर्य जनक थीं राजा के सन्मुख उपस्थित की गयीं। दूर २ देश के वाद्य यन्त्र बजाने वाले उस सभा में उपस्थित हो कर अपनी २ कला दिखा कर राजा और सभासद लोगों को सन्तुष्ट करते थे, देश २ के गवैये एकत्रित हो कर अपनी मनोहर गानपटुता प्रकाश कर के सब को प्रसन्न करते थे। नाचने वालियां एक से एक बढ कर सुन्दर २ रूप बना कर और नाना प्रकार के भाव बता २ कर सुललित कंठ ध्वनि से लोगों को वशी भूत करती थीं। इन्द्रजाल करने वाले वि·

कठिन था कि सब से श्रेष्ट कौन है। किन्तु सभासदों ने एक मत हो कर दो जन को श्रेष्ट ठहराया, एक युवा और एक वृद्ध। किन्तु उन दोनों में से कौन नीच बताने में सब लोग असमर्थ हुए। अन्त को राजा टोडरमल्ल ने आज्ञा दिया, "आप लोग एक बेर और अपनी २ कविता का पाठ कीजिये।" युवा ने एक पार्वती की स्तुति पाठ किया, वह स्तुति कैसी अपूर्व और भक्ति रस परिपूर्ण थी! सुनते २ सभासद लोग जगत संसार को भूल गये, लौकिक वासना विस्मृत हो गयी, संसार की माया से चित्त विरक्त हो गया,—आपाद मस्तक पर्यंत भक्तिरस बिध गया। रह २ कर जब कवि "मा" शब्द कह कर डांटता था ऐसा जान पड़ता था मानो जगत विमोहिनी अन्नपूर्णा जगत माता दुर्गा आकर साक्षात सामने खड़ी हो जाती थी। वह अपनी कविता पढ़ कर चुप भी हो गया तथापि श्रोता लोगों के कान में उस की प्रतिध्वनि गूंज रही थी।

राजा टोडरमल्ल को आर्य धर्म में बड़ी भक्ति थी, इस भक्तिरस पूर्ण कविता को सुन कर उन के हृदय में आनन्द रस का कितना आविर्भाव हुआ वर्णन नहीं हो सक्ता। कुछ काल चुप रह कर बोले, "आप का जन्म सफल है, निश्चय सरस्वती आप के हृदय में विराजमान हैं। हम लोग वृथा माया के जाल में फंसे हैं, इच्छा तो होती है

रामचन्द्र के विरह से राजा दशरथ का मरण वर्णन करने लगा। पाठ आरम्भ करने के पहिले ही लोगों ने समझ रक्खा था कि मुकुन्दराम की जय होगी, किन्तु उस वृद्ध कवि ने गम्भीर स्वर से आँखें डबडबा कर उस हृदय विदारक शोक जनक कथा को ऐसे प्रकार से वर्णन किया कि सब लोगों के कान खड़े होगये। मानो भाषा सागर को मथन कर के श्रेष्ठ रत्न की कड़ी पिरोने लगा, जिस पर से जब अपनी अपूर्व संगीत और मधुर धुनि से प्राण प्रिय राम लक्ष्मण के विरह से राजा दशरथ के शोक को वर्णन करने लगा, उस सभा में ऐसा कोई नहीं रह गया जिस के आँखों में आंसू न आ गया हो। कवि के निरानन्द शुष्क मूर्त्ति, शीर्णबाहु, शीर्णकलेवर और स्वेत केश अथ च ज्योति मय नयनद्वय देख कर सब लोगों का हृदय पानी पानी हो गया। नगेन्द्र नाथ ने अपने दोनों पुत्र के विरह से जो दुःख सहन किया था सम्पूर्ण स्मरण किया और पुक्का फाड़ कर रोने लगे। उनको रोते देख सारी सभा रोने लगी। राजा टोडरमल से भी रहा नहीं गया, बोले, "म-हाशय, अब बस कीजिये, आप दोनो जन समान हैं, दोनो जन आप २ को बढ़ कर हैं। आपका नाम क्या है?" यह कह कर अपने हाथ से स्वर्ण कंकण उतार कर कवि के हाथ में पहिना दिया। कवि ने उत्तर दिया, "मै नवद्वीप

उस वीर पुरुष के हत्या का विचार चाहता हूं।" यह कह कर सुरेन्द्रनाथ ने बहुत सा पत्र राजा के हाथ में दे दिया। विमला जिस समय चतुर्वेष्ठित दुर्ग से नौका द्वारा भागी थी इन कागजों को लेती गयी थी।

शकुनी के दोष के लिये कोई प्रमाण ढूंढ़ने की आवश्यकता नहीं थी। शकुनी ने जो सब जाल बनाया था वह राजा के हाथ ही में था। उस को पढ़ कर राजा ने देखा कि सब पत्र अमरसिंह के नाम से पठान सेनापति के पास भेजे गये थे और इसी प्रकार धोखा दे कर अमरसिंह मरवाया गया। किन्तु उन सब कागजों पर शकुनी के हस्ताक्षर थे और अमरसिंह की मोहर थी। उस मोहर की एक नकल शकुनी के घर में मिली थी, वह भी विमला लेती गयी थी।

फिर दस छः वर्ष पर्यन्त महाश्वेता जैसे रही, शकुनी के सेवकों पर जैसे उस को एक गांव से दूसरे गांव में भगाते फिरते थे, अन्त में उस को और उस की कन्या को जैसे चतुर्वेष्ठित दुर्ग में बांध के रक्खा था, इन सब बातों के लिये कोई प्रमाण ढूंढ़ने की आवश्यकता नहीं रही। और सतीशचन्द्र की हत्या की कथा तो राजा आपही जानते थे।

राजा ने सिंह के समान गरज के कहा, "दुष्ट! तेरा ... समय है। अब भी परमेश्वर से प्रार्थना कर स-

स्त्री और म्लेच्छ हैं, तथापि मैं जानता हूं कि इनमें से भी किसी ने आजतक ब्राह्मण का वध नहीं किया है। ईश्वर की दया से आज इस देश का शासन कर्त्ता एक आर्य धर्मावलम्बी परम धार्मिक राजा है। शास्त्र विरुद्ध कर्म करना, ब्राह्मण का वध करना क्या उसी के समय में आरम्भ होगा? महाराज! विचारिये। आज यदि आप कोई पुण्य कर्म करेंगे, चिरकाल तक आप का यश रहेगा, यदि कोई पाप कर्म कीजियेगा, युग युगान्तर तक अपयश रह जायगा। मैं तो आश्रय हीन बन्दी हूं, मुझ को वध करना क्षण भर का काम है किन्तु राजा टोडरमल के स्वच्छ यश रूपी अकलंक चन्द्र में कलंक लग जायगा,—राजा टोडरमल के जीवन चरित में यह एक कालिमा लग जायगी। सम्पूर्ण भारतवर्ष में यह चरचा फैल जायगी;—मेरे मर जाने के पीछे मेरे पुत्र और उन के पीछे मेरे पौत्र इस बात को स्मरण रक्खेंगे,—सहस्त्र वर्ष के पीछे भी बालक लोग इतिहासों में पढ़ेंगे कि राजा टोडरमल ने बंग देश में आकर एक ब्राह्मण के पुत्र की हत्या की। सहस्त्र वर्ष पीछे वृद्ध लोग बैठ कर परस्पर कहेंगे कि जो कर्म मु[illegible] के समय में नहीं हुआ राजा टोडरमल के शा[illegible] हुआ— ब्राह्मण मारा गया। महाराज! कि[illegible] को दंड देना सहज है किन्तु देश देशान्तर

युग युगान्तर यह कलंक मिटाना सहज नहीं है, ब्रह्महत्या के पाप से छूटना सहज नहीं है।"

शकुनी चुप हो गया। उस की बातों को सुन कर राजा सोचने लगे और सिर नीचे कर लिया। शकुनी ने देखा। यदि उस समय कोई उस का मुंह भली भांति देखता तो ओठों के ऊपर कुछ हंसी की झलक सी मालूम होती, वह अपने मन मगन होता था।

"जैसे को तैसाही चाहिये। बालक को मिठाई देकर फुसलाना चाहिये, युवतियों को रूप दिखा कर लोभाना चाहिये, महावीर धर्मपरायण राजा को आज मैं ने अपयश और अधर्म का भय दिखा कर वश किया। ऐसा मोह जाल फैलाया है कि इससे छूट जाना कठिन है। चातुर्य की सर्वदा जय होती है।"

राजा टोडरमल आर्य धर्म के परम भक्त थे। "ब्राह्मण अवध्य है" ये शब्द धर्मशास्त्र के प्रति पृष्ठ में लिखे हैं। शास्त्र विरुद्ध काम करने में राजा टोडरमल असमर्थ थे। मौन धारण पूर्वक सिर नीचे कर के सोचने लगे।

सादिक खां ने कहा, "महाराज! आप ऐसा धर्म न छोड़िये, आप शासन करता हैं। शास्त्र धर्म अवलम्बन कीजिये, दोषी को दंड दें।"

राजा ने धीरे से कहा, "ब्राह्मण अवध्य है।"

सुरेन्द्रनाथ ने कहा, "इस विधवा और अनाथ कन्या को आप के अतिरिक्त और कोई नहीं है, इनकी ओर देखिये और दोषी को दंड दीजिये।"

राजा ने धीरे से कहा, "ब्राह्मण अवध्य है।"

सभास्थित लोगों ने कहा, "महाराज! आप को उचित है कि शिष्टों का पालन कीजिये और दुष्टों को दंड दीजिये, यदि आप न देंगे तो फिर इस महा पापी को कौन दंड देगा।"

राजा ने धीरे से कहा, "ब्राह्मण तो अवध्य है।"

इसी समय सभा से कुछ दूर पर कुछ गोलमाल हुआ। देखते २ एक लम्बी तहंगी, दुबली पतली कोयल सी काली, मैला कुचैला वस्त्र पहिने एक पागल स्त्री दौड़ती हुई आकर सभा में पहुंच गयी। चिल्ला कर पृथ्वी पर गिर पड़ी। यह वही विश्वेश्वरी पगली थी।

शकुनी अभी तक तो स्थिर भाव से खड़ा था, जब उस के मारने की आज्ञा हुई थी तब भी स्थिर था, किन्तु इसे देखते ही कांपने लगा। कहने लगा, "मैं दोषी हूं मुझ को मरवा डालिये किन्तु इस पगली

सब को बड़ा विस्मय हुआ। पगली खड़ी हो कर कहने लगी,—

महाराज! क्षमा कीजिये, इस दुष्ट ने मेरी माता को मार डाला है, मैंने अपनी आंखों से देखा है, मेरी माता की विकट आकृति अभी तक मेरी आंखों के सामने नाच रही है, वह देखिये, उसका भयङ्कर रूप, वह देखिये, उस की लाल लाल आंखें, वह"—आगे मुंह से बात नहीं निकली। शकुनी की ओर देखते ही वह चिल्ला कर गिर पड़ी।

सब लोग बड़े विस्मित हुए। राजा की आज्ञा से उस पर बहुत सा जल इत्यादि छिड़का गया वह फिर सचेत हुई। तब उससे उस का सविस्तार वृत्तान्त पूछा गया और वह कहने लगी। किन्तु जैसा उस ने कहा उसी प्रकार वर्णन करने में बहुत विलम्ब होगा अतएव हम संक्षेप से कहते हैं।

पगली ग्वाले की बेटी थी, उस की माता बड़ी सुन्दर थी। स्वामी के मर जाने पर उस विधवा ग्वालिन को देख कर एक ब्राह्मण उस पर आसक्त हुआ। उन दोनों के सम्भोग से शकुनी का जन्म हुआ।

शकुनी का बाप जब तक जीता था तब तक ... का लिन के पूर्व पति के संयोग से जो एक ... उत्पन्न हुई थी उस का लालन पालन ...

मरने के पीछे उस के पास जो कुछ थोड़ा बहुत धन था सब उसी शकुनी को मिला। सब लोग उसको जारज कहते थे इसलिये शकुनी को पीड़ा होती थी। एक दिन मारे क्रोध के अपनी माता को विष दे कर मार डाला। विश्वेश्वरी भागी, किन्तु उस हत्या को देख कर पागल हो गयी। इस पाप कर्म करने के अनन्तर शकुनी देशत्याग कर भागा और सतीशचन्द्र के घर में आकर ब्राह्मण पुत्र बन कर रहने लगा।

विश्वेश्वरी प्राण भय से कुछ दिन देश देशान्तर में छिपी २ फिरती थी। अन्त को जिस दिन वनाश्रम से महाश्वेता और सरला चतुर्वेष्ठित दुर्ग में बन्दी हो कर आयीं, उसी दिन पगली भी पकड़ गयी और उसी दुर्ग में रक्खी गयी। ऐसा न हो कि वह शकुनी की बात किसी से कहे पगली उस दुर्ग के बीच में एक अंधकार मय कारागार में रक्खी गयी।

जब शकुनी बन्दी हो गया वह किसी प्रकार से छूट गयी, किन्तु कारागार में वह ऐसी यातना के साथ [illegible] गयी थी कि उस के शरीर में केवल हड्डी बच रही [illegible] अपना वृत्तान्त कहते २ उसकी आँखें ऊपर [illegible] लाल हो गयीं। ललाट में बली पड़ [illegible] एक सैनिक के हाथ से एक कटारी

छीन कर यत्न पूर्वक शकुनी के छाती में पेल दिया। कटे वृक्ष की भांति शकुनी का मृतक शरीर पृथ्वी पर गिर पड़ा।

"समरसिंह के मृत्यु की प्रतिहिंसा हो गयी" "मनोचन्द्र के मृत्यु की प्रतिहिंसा हो गयी" "माता की हत्या करने वाले का उचित दण्ड हुआ" 'कपटाचरण का समुचित फल मिला।" इसी भांति नाना प्रकार की बातें कह कर सब लोगों ने बड़ा कोलाहल मचाया।

विश्वेश्वरी के जीवन का उद्देश्य आज पूरा हुआ,—उस शीर्ण देह से प्राण धीरे २ पयान कर गया। भाई के मृत शरीर की ओर देखते २ हंसते २ अभागिनि पगली का देहान्त हो गया।

पैंतीसवाँ परिच्छेद।

प्रतिमा विसर्जन।

Why let the stricken deer go weep,
The hart ungalled play,
While some must watch, while some my
Thus runs the world away.

उपरोक्त घटना के कुछ दिन पीछे राजा टोडरमल इच्छापुर से पलट गये। नगेन्द्रनाथ ने चाहा कि अपनी जमीदारी का भार अपने दोनोंपुत्रों को दें किन्तु किसी ने अंगीकार नहीं किया। उपेन्द्रनाथ ने कहा, "मुझ को जमीदारी लेने की आवश्यकता नहीं है, जमीदारी का झंझट मुझ को अच्छा नहीं लगेगा,—मैं आश्रम में जा कर एकान्त में रहने की इच्छा करता हूं, मुझ को और किसी बात में सुख नहीं मिलेगा।" बड़े भाई की अनिच्छा देख कर सुरेन्द्रनाथ ने भी इनकार किया किन्तु अन्त को पिता के बहुत कहने सुनने से स्वीकार किया।

उपेन्द्रनाथ कमला को ले कर वनाश्रम में वास करने लगे। कौतुक वश उन्हों ने वहां एक नौका रक्खा और सदा कमला को उस में बैठा कर अपने हाथ से खेया करते थे—एक दूसरे के प्रति प्रेम प्रकाश पूर्वक सुख से कालयापन करने लगे। संसार में अपने से बढ़ कर सुखी और निश्चिंत दूसरे किसी को नहीं समझते थे।

नगेन्द्रनाथ सुचित हो कर इच्छापुर में रहने लगे और बुढ़ापे में अपने गुणवान् पुत्र का मुंह देख कर पर-
...ते थे।

...र से विवाह कर के दो बड़ी २ जमी-
...न्तु पूर्वकालीन प्रजावात्सल्य और

मातृभक्ति अब भी उनके चित्त में विराजमान थी। अब भी वे वेश बना कर गांव २ फिरा करते और प्रजा वर्गों के सुख दुःख का परिचय लिया करते थे और यथाशक्ति उनकी सहायता करने को प्रतिक्षण में प्रस्तुत रहते थे।

सुरेंद्रनाथ ने अपने प्राचीन मित्र नवीन दास को अपना दिवान बनालिया,—रुद्रपुर से पगली ने अमला का हाथ देखकर कहा था कि यह दिवान की स्त्री होगी आज वह बात सच हुई—अमला दिवान की पत्नी हुई। अमला सरला को वैसाही भगिनि की भांति प्यार करती थी और अपने प्राचीन बन्धु "इन्द्रनाथ" से उसी प्रकार हंसी दिल्लगी किया करती थी, वह कभी सुरेन्द्रनाथ को सुरेन्द्रनाथ नहीं कहती थी, सर्वदा "इन्द्रनाथ" कहके पुकारा करती थी, सुरेन्द्र भी इसी में प्रसन्न रहते थे।

हमारी इच्छा होती है कि इस उपन्यास को यहीं समाप्त करें किन्तु संसार में सब लोगों सुख होता ही नहीं। किसी को सुख मिलता है तो किसी को दुःख भी मिलता है—दो एक बात दुःख की मैं कहे समाप्त नहीं कर सके

पाठक महाशय को स्मरण होगा कि प्रतिहिंसा [illegible] श्वेता के जीवन की ग्रन्थि स्वरूप थी। [illegible] चिन्ता मे छः वर्ष का दिन व्यतीत [illegible] उसके स्वभाव का एक अंग हो ग[illegible]